वे आँखें

विमल मित्र

अपने पाठकों को…

कहानी कहने के तौर-तरीके कितने ही प्रकार के हैं। तमाम लेखकों की कहानियाँ जिस तरह एक ही तरह की नहीं होतीं, उसी तरह सवके लेखन की पद्धतियाँ अलग-अलग तरह की होती हैं। चूँकि सवके लेखन के तौर-तरीके अलग-अलग तरह के होते हैं, इसीलिए साहित्य का इतिहास भी इतनी विचित्रताओं से भरा है। लेखक जिस तरह अलग-अलग कोटि के होते हैं, पाठक भी उसी तरह अलग-अलग प्रकार के होते हैं। तरह-तरह के पाठकों की तरह-तरह की रुचियों के कारण ही साहित्य में इतनी विचित्रताएँ मिलती हैं। यही वजह है कि साहित्य की दुनिया कभी पुरानी नहीं पड़ती।

यह सव मेरी नहीं, वल्कि अविनाशदा की वातें हैं। वचपन में जव मैं स्कूल में पढ़ता था तो अविनाशदा मेरे पड़ोसी मित्र कार्त्तिक को पढ़ाने आया करते थे। मैं वीच-वीच में वहाँ जाकर वैठा करता था और पढ़ने-पढ़ाने के वीच जो समय मिलता, उनसे वातचीत करता था। वातचीत करने का कारण यही था कि अविनाशदा भी लिखते-पढ़ते रहते थे।

अविनाशदा के पास कविता की एक कापी थी। कार्त्तिक को पढ़ाना जव खत्म हो जाता तो हम कहते थे, "एकाध कविता सुनाइए, अविनाशदा।"

हम कविता सुनना चाहते तो अविनाशदा वहुत ही खुश होते थे। कहते, "सुनना चाहते हो?"

"हाँ-हाँ, सुनना जरूर चाहते हैं।" मैं कहता।

उस समय अविनाशदा वैग से कविता की कापी वाहर निकालते थे। चौड़ी, मढ़ी हुई कापी। वड़े-वड़े अक्षरों में एक-एक कविता सजी हुई।

अविनाशदा कापी का पन्ना उलट भक्ति-भाव के साथ कविता-पाठ करते थे। हम भी उस तरह वैठे रहते जैसे देवता के सामने वैठे हुए हों।

जव वे एक कविता का पाठ कर लेते तो मैं कहता, "एक और कविता सुनाइए, अविनाशदा।"

कहानी कहने के तौर-तरीके कितने ही प्रकार के हैं। तमाम लेखकों की कहानियाँ जिस तरह एक ही तरह की नहीं होतीं, उसी तरह सबके लेखन की पद्धतियाँ अलग-अलग तरह की होती हैं। चूंकि सबके लेखन के तौर-तरीके अलग-अलग तरह के होते हैं, इसीलिए साहित्य का इतिहास भी इतनी विचित्रताओं से भरा है। लेखक जिस तरह अलग-अलग कोटि के होते हैं, पाठक भी उसी तरह अलग-अलग प्रकार के होते हैं। तरह-तरह के पाठकों की तरह-तरह की रुचियों के कारण ही साहित्य में इतनी विचित्रताएँ मिलती हैं। यही वजह है कि साहित्य की दुनिया कभी पुरानी नहीं पड़ती।

यह सब मेरी नहीं, बल्कि अविनाशदा की बातें हैं। बचपन में जब मैं स्कूल में पढ़ता था तो अविनाशदा मेरे पड़ोसी मित्र कार्त्तिक को पढ़ाने आया करते थे। मैं बीच-बीच में वहाँ जाकर बैठा करता था और पढ़ने-पढ़ाने के बीच जो समय मिलता, उनसे बातचीत करता था। बातचीत करने का कारण यही था कि अविनाशदा भी लिखते-पढ़ते रहते थे।

अविनाशदा के पास कविता की एक कापी थी। कार्त्तिक को पढ़ाना जब खत्म हो जाता तो हम कहते थे, "एकाध कविता सुनाइए, अविनाशदा।"

हम कविता सुनना चाहते तो अविनाशदा बहुत ही खुश होते थे। कहते, "सुनना चाहते हो?"

"हाँ-हाँ, सुनना जरूर चाहते हैं।" मैं कहता।

उस समय अविनाशदा बैग से कविता की कापी बाहर निकाल[illegible]
चौड़ी, मढ़ी हुई कापी। बड़े-बड़े अक्षरों में एक-एक कविता [illegible]

अविनाशदा कापी का पन्ना उलट भक्ति-भाव के साथ [illegible]
करते थे। हम भी उस तरह बैठे रहते जैसे देवता के [illegible]

जब वे एक कविता का पाठ कर लेते
कविता सुनाइए, अविनाशदा।"

अविनाशदा को और भी अधिक प्रसन्नता होती। वे फिर से सस्वर पाठ करने लगते।

उसके बाद वे एक-एक कविता का पाठ करते जाते और बीच-बीच में हम लोगों की ओर ताक लिया करते थे। हमारे चेहरे की भंगिमा का निरीक्षण करते थे। यानी वे जानना चाहते थे कि हमें उनकी कविता कैसी लगी।

हम दोनों एक ही साथ कहते, "बहुत ही अच्छी।"

अविनाशदा कहते, "तुम लोग भी लिखने की कोशिश करो। लिखना कोई खास कठिन नहीं है। थोड़ी-सी कोशिश करोगे तो लिख लेना आसान है। अगर कोई गलती होगी तो मैं सुधार दूँगा।"

अविनाशदा हमें अत्यन्त स्नेह की दृष्टि से देखा करते थे। कहते, "दुनिया में जितने भी आदमी हैं, कवि ही उनके बीच सर्वश्रेष्ठ हुआ करते हैं। जो कविता का रसास्वादन नहीं कर पाता वह आदमी है ही नहीं, वह आदमी की हत्या कर सकता है।"

अविनाशदा के कहे अनुसार मैंने एक कापी मढ़वा ली थी। कापी के ऊपर सुनहरे अक्षरों में अपना नाम लिखा लिया था। दो-चार कविताएँ भी लिखी थीं। मगर अविनाशदा को दिखाने में एक तरह की लाज धर दबा लेती थी। पहली बार कविता पढ़ने के बाद सोचा था, अविनाशदा मुँह बनाने लगेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बल्कि अविनाशदा ने कहा, "अच्छी ही है, लिखते जाओ। सफलता जरूर हासिल होगी।"

अविनाशदा मुझे इतना प्रोत्साहित करेंगे, शुरू में यह बात समझा ही नहीं था। छुटपन में ज्यादातर आदमी निरुत्साहित ही करते हैं और हर काम में अड़चन डालते हैं। उन लोगों को छोटे बच्चों के हर काम में अन्याय ही अन्याय दिखायी पड़ता है। लेकिन मेरी तकदीर अच्छी थी कि मैं अविनाशदा जैसे आदमी के संसर्ग में आया था।

आज इतने दिनों के बाद अविनाशदा के बारे में सोचने पर लगता है कि वे अविनाशदा कहाँ चले गये। अविनाशदा की वैसी परिणति न होती तो विधाता की मनोकामना क्या पूरी न होती ?

कहानी शुरू से ही बता रहा हूँ।

इस दुनिया में कोई भी आदमी छाती पर हाथ रखकर यह नहीं कह सकता कि मैं सुखी हूँ। 'सुख' नामक चीज दरअसल मन की गलती है। जो आदमी कहता है, वह सुखी है, वह या तो झूठ कहता है या समस्त बोध-शक्ति से रहित है। आदमी के इसी बोध पर संभवतः उसका सुख-दुःख निर्भर करता है।

पड़ोस के कार्त्तिक के मास्टर साहब से परिचित होने की जरूरत ही क्या थी ? छुटपन में जीवन का कोई अर्थ समझ में नहीं आता है, इसीलिए हर कोई अच्छा लगता है, सभी को प्यार करने की इच्छा होती है। लगता है, इसी वजह से उन दिनों मैं अविनाशदा को प्रेम की दृष्टि से देखा करता था।

बाद में अविनाशदा कार्त्तिक के बनिस्बत मुझे ही ज्यादा प्यार करने लगे।

अविनाशदा कहते, "अच्छा लिखने पर पैसा नहीं कमा पाओगे भाई।"

"मुझे रुपये की जरूरत नहीं, मैं सिर्फ लिखना चाहता हूँ।" मैं कहता।

"वाह, बहुत ही अच्छी बात है !"

उसके बाद जरा रुक कर कहते, "पैसे से ज्यादा नफरत मत करना, दुनिया में अच्छी तरह जीवन जीने के लिए पैसे की भी जरूरत पड़ती है। इसलिए पैसा-कौड़ी तिरस्कार की वस्तु नहीं है। उस तरफ भी जरा ध्यान रखना।"

अविनाशदा मुझे बहुत-कुछ समझाते थे। कहते, "यही लो न, मैं कवि हूँ, लेकिन मुझे घर-घर जाकर ट्यूशन करना पड़ता है। क्यों ? पैसे के लिए ! इस पैसे के चलते ही दुनिया में इतनी अशान्ति है।"

अविनाशदा की बातें सुन मुझे वास्तव में बहुत दुःख होता था। इतनी अच्छी कविताएँ लिखते हैं परन्तु जिस समय उन्हें कविता लिखनी चाहिए उस समय उन्हें ट्यूशन करना पड़ता है। अच्छे कपड़े-लत्ते खरीदने लायक पैसे भी उनके पास नहीं रहते हैं। उन दिनों अगर मेरे पास रुपया-पैसा होता तो मैं अविनाशदा को ढेर सारा रुपया-पैसा दे देता ताकि अविनाशदा को ट्यूशन न करना पड़े।

लेकिन मेरी इच्छा की कीमत ही क्या थी ? कौन तब

पर ध्यान देता ? मुझमें ही कौन-सी वैसी सामर्थ्य थी ? मैं खुद भी उन दिनों पराधीन था। मन ही मन यही सोचता कि मैं भी अविनाशदा की तरह कवि बनूंगा। दुनिया में कितनी ही तरह के पेशे हैं। कोई डॉक्टर बनता है, कोई वकील। कोई बैरिस्टर तो कोई व्यवसायी। कविता लिखना कोई धंधा है ही नहीं। आम लोगों की निगाह में कविता लिखना पागलपन है। उससे न तो रुपया-पैसा मिलता है और न ही ख्याति की प्राप्ति होती है। इतने धंधों के रहने के बावजूद मेरा मन क्यों कविता की ओर ही खिंचा था, कौन जाने ! मुझे पता था, यथार्थ की दुनिया में कविता की कोई उपयोगिता नहीं है। लेकिन फिर भी कविता में मुझे जैसे एक प्रकार का आनन्द मिलता था और यह आनन्द क्यों मिलता था, यह बात मैं किसी को समझाकर नहीं कह पाता था। या अगर समझाता भी तो कोई समझ नहीं सकता।

कार्त्तिक को पढ़ाने के बाद अविनाश बाबू जब डेरे की ओर रवाना होते तो अकसर मैं उनके साथ रहता था। सड़क पर चलते हुए हम कविता के बारे में चर्चा-परिचर्चा करते। उस समय हम दोनों इस शहर, इस अशान्ति और लोगों की इस तरह की भीड़-भाड़ को भूल जाते। लगता, कविता के अतिरिक्त इस दुनिया में किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। जीवन के लिए कविता ही एकमात्र सत्य और तथ्य है।

हम चहल-कदमी करते हुए बहुत दूर निकल जाते। किसी-किसी दिन गंगा के बिलकुल निकट। गंगा के घाट पर जाकर बैठ जाते। वहाँ बैठकर गप करते-करते ध्यान ही नहीं रहता कि वक्त कैसे बीतता जा रहा है। जब बात ध्यान में आती तो रात के बारह बज चुके होते थे।

अविनाशदा चौंक पड़ते थे। कहते, "लो, इतनी रात हो गयी, सभी खा-पीकर सो चुके होंगे।"

अविनाशदा मेस में रहते थे। मेस पुराना था। अविनाशदा के बड़े भाई दिल्ली में मोटी तनख्वाह की नौकरी पर थे। वे अपने छोटे भाई के रहने-खाने और पढ़ने का खर्च भेजते थे। उसी खर्च से अविनाशदा निर्वाह करते थे।

मेस का खर्च उन दिनों साधारण ही था। तीस रुपये माहवार में अविनाशदा का सारा खर्च चल जाता था। अलग से जो खर्च होता था, उसके लिए उन्हें ट्यूशन करना पड़ता था।

एक दिन मैंने अविनाशदा से पूछा था, "आप जब बी० ए० पास कर

लीजिएगा तव क्या कीजिएगा, अविनाशदा ? उस समय आपके भैया क्या पैसा भेजेंगे ?"

अविनाशदा कहते, "तव क्या होगा, अभी मैं उसके वारे में सोच नहीं पाता। तव कोई नौकरी कर लूंगा।"

उन दिनों नौकरी मिलना उतना आसान नहीं था। यह वात अविनाशदा और मुझे दोनों को मालूम थी। अविनाशदा के मेस में जाने पर देखा था, वहाँ की हालत अत्यन्त शोचनीय है, दीवारें टूट गई हैं, सीढ़ियों की भी वैसी ही हालत है और छत से पानी टपकता है। वैसी स्थिति में एक ही कमरे में दो आदमी रहते हैं। फर्श पर विस्तरों की कतार लगी रहती है। कोई दुकानदार है तो कोई वेकार, कोई छात्र है तो कोई वीकल-पैसेंजर। सभी के धन्धे एक ही हैं। पैसा। रुपया कमाने के लिए ही सभी उस मेस में आकर रह रहे हैं। सवेरे वे जल्दी-जल्दी दो कौर भात खाकर सड़क पर निकल पड़ते हैं। दिन-भर कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते हैं, कोई नहीं कह सकता। उसके वाद जव रात आती है और रुपया कमाने के तमाम दरवाजे वन्द हो जाते हैं तो वे इस कोटर में प्रवेश करते हैं और वंडल-वँधे विस्तर को विछाकर लेट जाते हैं। "आह !" उनके मुँह से आवाज निकलती है।

जीवन में मात्र एक वही मेस मैंने देखा है। लेकिन मुझे लगता है, शायद कलकत्ते में उससे वदतर कोई जगह नहीं होगी।

अविनाशदा की जगह दीवार के एक कोने में मुकर्रर थी। उसी के पास एक खिड़की थी। खिड़की को खोलते ही कलकत्ते का आकाश दिखाई देता था। दूर जूट मिल की कई चिमनियाँ। उन चिमनियों से रात-दिन धुआँ निकलता रहता है। लेकिन सो रहे, फिर भी गंगा की एक झाँकी मिल जाती है। वीच-वीच में गंगा में नाव और जहाज तिरते हुए दिखते थे। कभी-कभी पूरव के एक तीन मंजिले मकान को छूता हुआ नारियल के पेड़ का ऊपरी हिस्सा हिलता-डुलता रहता था। एक पतंग आकर पेड़ पर अटक जाती। उसके वाद दो दिन वीतते न वीतते पतंग फटकर चिन्दी-चिन्दी हो जाती और उसका कंकाल झूलता रहता।

अविनाशदा खिड़की खोल उदास दृष्टि से ताकते रहते। कहते, "उस नारियल के पेड़ और गंगा की वजह से ही इस मेस में रह रहा हूँ। जव मन उदास हो जाता है तो उस ओर देखने पर वहुत
है।"

जब मुझे घर लौटने में देर हो जाती तो झिड़कियाँ सुननी पड़ती थीं।

माँ कहती, "इतनी रात तक कहाँ रहता है? क्या करता है?"

मैं कहता, "अविनाशदा से गपशप कर रहा था। वे कार्त्तिक के मास्टर साहब हैं।"

"इतनी रात तक उनसे क्या बातचीत करता है?"

"पढ़ने-लिखने के बारे में बातचीत चलती है।" मैं कहता।

"बातचीत का सिलसिला खत्म नहीं होता? इतनी रात तक बाहर रहेगा तो तेरी सेहत खराब हो जायेगी।"

कविता की चर्चा-परिचर्चा के बारे में माँ को नहीं बताता था। उस बात को छिपा लेता था। क्योंकि माँ औरत है न, कविता की मर्यादा उनकी समझ में नहीं आयेगी।

उसके बाद जब मैं नींद में खो जाता तो सपना देखता, मैंने भी कविता की एक बड़ी पुस्तक लिखी है। मेरी कविताएँ सबको पसन्द आयी हैं। मेरी कविता की धूम मच गयी है। गले में फूलों का हार डालकर लोग-बाग मेरा अभिनन्दन कर रहे हैं। और, मैं सम्मान और प्रतिष्ठा की ऊष्णता से अभिभूत हो गया हूँ।

यह सब बहुत दिन पहले की बात है। तब अविनाशदा और मैं दोनों और ही तरह के थे। आज सोचता हूँ, वे दिन कहाँ चले गये?

अविनाशदा दोपहर के वक्त कॉलेज जाते थे। वहाँ से वापस आते ही मेस के टुटहे मकान में घुसकर बिस्तर पर लम्बा होकर पड़ जाते थे। उसके बाद कार्त्तिक के मुहल्ले की ओर जाते थे। कार्त्तिक भी वैसा ही छात्र था। लिखने-पढ़ने के बनिस्बत गप्प लड़ाने में ही उसका मन ज्यादा लगता था। कार्त्तिक बड़े आदमी का लड़का था। लड़का पढ़ रहा है या नहीं, इसके लिए अभिभावकगण माथापच्ची नहीं करते थे। जब उम्र थोड़ी अधिक हो गयी तो कार्त्तिक लिखाई-पढ़ाई से नाता तोड़कर पैतृक कारोबार में घुस पड़ा। साथ ही साथ अविनाशदा की नौकरी भी चली गयी।

मैंने अविनाशदा से मिलना-जुलना वन्द नहीं किया। पूछता, "अव क्या कीजिएगा, अविनाशदा ?"

अविनाशदा कहते, "भाग्य में जो होगा वही होगा। उस पर ही सोचता रहूँ तो कुछ नहीं कर पाऊँगा।"

वात तो सही है। सोचने से कोई लाभ नहीं होता। भाई के द्वारा दिल्ली से भेजे गये तीस रुपये से ही अविनाशदा ने फिर से संसार के सागर में अपनी नौका वहा दी।

तीस रुपया! सस्ती के उस जमाने में भी तीस रुपया कोई ज्यादा रकम न थी। अविनाशदा को वहुत कठिनाई से जीविका का निर्वाह करना पड़ता था। खाने-पीने में कमी की जा सकती है, मगर साफ-सुथरा कपड़ा तो पहनना ही होगा। गन्दे मेस की तरह गन्दा कपड़ा-लत्ता पहनने से तो काम नहीं चल सकता।

तव मैं पहले की तरह अविनाशदा के पास लगातार नहीं जा पा रहा था। लेकिन जव कभी जाता तो कोई न कोई वहाना वनाकर थोड़ी-वहुत खाद्य-सामग्री साथ ले जाता था।

अविनाशदा पूछते, "यह क्या? खाने-पीने की चीजें क्यों ले आये?"

मैं झूठ वोल जाता था। कहता, "भैया के ससुराल से संदेश आया है। इसीलिए आपके लिए ले आया।"

अविनाशदा खाद्य-पदार्थ अकेले नहीं खाते थे। मेस के दूसरे-दूसरे जो सदस्य वहाँ उपस्थित रहते, उन्हें भी देते थे। कहते, "अनादि वावू, संदेश खाइएगा?"

"संदेश?"

अनादि वावू मध्यवयस्क आदमी थे। पूरा सप्ताह मेस में गुजारकर शनिवार को देस जाते थे। जितना भी पैसा हो सके, विना खाये-पिये जुगोकर रखते थे। सवेरे भीगा चना गुड़ के साथ खाते थे। अपने हाथ से सावुन से धोती-कमीज धोते थे और इस्तिरी कर पहनते थे। उस समय अनादि वावू चित लेटकर वदन का पसीना सुखा रहे थे। संदेश का नाम सुनते ही झटपट उठकर वैठ गये।

आँखों को फैलाकर वोले, "सन्देश? सन्देश किसने दिया?"

अविनाशदा ने कहा, "पैसे लगाकर खरीदना नहीं पड़ा है। उसके लिए डरने की कोई वात नहीं। मुफ्त में मिल गया है।"

"तो फिर दो, भैया," अनादि वावू ने कहा, "म[illegible] ला है तो

वाबू की कविता की तरह। रवि ठाकुर की तरह तुम्हें भी नॉवेल प्राइज मिलेगा न ?"

अविनाशदा बोले, "आप क्या यह सोचते हैं कि मैं पैसे के लिए कविता लिखता हूँ ?

हेरम्ब बाबू की कैनिंग स्ट्रीट में दीवार में लगी स्टेशनरी की दुकान थी। बोले, "माना, आज तुम्हें पैसे की जरूरत नहीं है। तुम्हारे बड़े भैया दिल्ली से तुम्हें पैसा भेजते हैं। मगर हमेशा तो पैसा भेजते नहीं रहेंगे। दूसरी बात है, तुम हमेशा मेस में रहने नहीं जा रहे हो। वैसी हालत में तुम्हें नौकरी करके पैसा कमाना होगा, शादी-विवाह कर गृहस्थी बसानी होगी। तब ? कविता लिखने से तब रोजी-रोटी चलेगी ?"

उनकी बातें मुझे बहुत बुरी लगीं। सोचा कि कहूँ, आप लोगों में से कुछ लोग मनिहारी की दुकान खोलकर रोजी-रोटी चला रहे हैं, कुछ लोग किरानीगीरी कर पेट पालते हैं, ऐसी हालत में आप लोग कविता का मर्म क्या समझिएगा ?

लेकिन मेरे मुँह से अप्रिय बात नहीं निकली। अविनाशदा बोले, "आप क्या यही सोचते हैं कि मैं किसी दिन गृहस्थी बसाऊँगा ?"

हेरम्ब बाबू अविनाशदा की बातें सुन हैरत में आ गये। बोले, "तुम शादी नहीं करोगे ?"

अविनाशदा ने हँसते हुए कहा, "नहीं।"

हेरम्ब बाबू बोले, "लड़के-बच्चे ऐसी ही बातें करते हैं जी। अन्त में जल्दी-जल्दी विवाह-शादी कर लेते हैं। ऐसे बहुतेरे भीष्मों को देख चुका हूँ।"

इस तरह की बातें सुनने पर भी अविनाशदा को गुस्सा नहीं आता था। कहते, "लेकिन मैं उस तरह का नहीं हूँ, हेरम्ब बाबू। मैं जो कहता हूँ, वही करता हूँ।

हेरम्ब बाबू कहते, "मगर पैसा ?"

"आदमी के जीवन की सिर्फ पैसा ही समस्या नहीं है, हेरम्ब बाबू। आप लोगों के लिए पैसा ही सब कुछ है। लेकिन दुनिया के सभी आदमी आप जैसे नहीं हैं। दुनिया में बहुत से ऐसे आदमी हैं जो अर्थ को अनर्थ समझते हैं।" अविनाशदा कहते।

अनादि बाबू, हेरम्ब बाबू, कन्हाई बाबू सभी अविनाशदा की बातें सुनकर हँसते थे। इस तरह की बातें पहले भी बहुतों से सुन चुके हैं।

वे लोग इतना ही कहते, "अच्छी बात है, पैसे का अभाव न होना तो अच्छी बात है। हम लोग हाय पैसा, हाय पैसा करके मारे-मारे फिर रहे हैं और तुम शङ्कराचार्य होकर संन्यासी बनने की बात सोच रहे हो। यह बात सुनने में अच्छी लगती है और कहने में भी।"

इसी तरह अविनाशदा के दिन बीत रहे थे। उसके बाद बी० ए० फाइनल की परीक्षा आ गयी। उस समय भी अविनाशदा के चेहरे पर चिन्ता की कोई छाप नहीं दीख पड़ती थी।

एक दिन अविनाशदा ने कहा, "अब थोड़ा पढ़ना-लिखना होगा।"

उन्होंने जबान से कहा तो जरूर परन्तु कविता की अड्डेबाजी खत्म नहीं हुई।

मैंने कहा, "फिर मैं कुछ दिनों के लिए आना-जाना बन्द कर देता हूँ, अविनाशदा। आपका वक्त बर्बाद करना नहीं चाहता।"

अविनाशदा ने कहा, "तुम आते रहना, मैं रात में जगकर पढ़ा करूँगा।"

सचमुच अविनाशदा रात में ही जगकर पढ़ने लगे। मेस की छत पर एक अटारी थी, वहीं अविनाशदा लालटेन जलाकर पढ़ने लगे। जैसे ही नींद आने लगती, आँखों में थोड़ा-सा सरसों का तेल लगा लेते थे और नींद तत्क्षण दूर भाग जाती थी।

अविनाशदा के उस द्रविड़ प्राणायाम को आँखों से देखे बिना उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। खाना-पीना सोना, घूमना-फिरना सब बन्द हो गया। जीवन में प्रतिष्ठित होने के लिए आदमी को किस तरह अथक परिश्रम करना पड़ता है, अविनाशदा उसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

लेकिन वैसे स्थिति से भी मैं अगर नहीं जाता तो अविनाशदा बुरा मान लेते थे। कहते, "क्यों जी, कल तुम नहीं आये ?"

"मैं कहता, "आपको पढ़ना-लिखना है, इसीलिए नहीं आया।"

"नहीं, पढ़ना-लिखना रहे या न रहे, तुम रोज आया करो। तीसरे पहर एक-दो घण्टे तक गपशप नहीं करूँगा तो फिर जिन्दा कैसे रहूँगा ?"

लेकिन एक-दो घण्टा कहने से ही क्या एक-दो घण्टे में गप का सिलसिला खत्म होता है ? कविता की चर्चा-परिचर्चा का कोई अन्त है भला ? कविता के बारे में चर्चा की जाये तो समय का कोई हिसाब रहता है ?

तीसरे पहर ठीक पाँच बजे मैं अविनाशदा के मेस में पहुँच जाता और घड़ी जैसे ही सात बजाती, उठकर खड़ा हो जाता। कहता, "चलूँ, अविनाशदा, आप पढ़ने बैठिए।"

लेकिन अविनाशदा रोक लेते। मेरा हाथ पकड़ कर खींच लेते और कहते, "बैठो-बैठो, अभी तो सात ही बजे हैं, और कुछ देर तक ठहर जाओ। आठ बजे घर चले जाना।"

लेकिन आठ बजने पर भी अविनाशदा क्या मुझे आने देते थे ? आठ बजे कहते, "बैठो-बैठो, और थोड़ी देर बैठ जाओ, नौ बजने पर तुम्हें छोड़ दूँगा।"

इसी तरह मैं अविनाशदा का ढेर सारा वक्त बर्बाद कर देता था। फिर भी अविनाशदा छोड़ने का नाम नहीं लेते थे। उसी बीच अविनाशदा नयी कविता लिखते और मुझे सुननी पड़ती थी।

मैं कहता, "अभी अगर कविता न लिखें तो अच्छा रहे, अविनाशदा।"

अविनाशदा कहते, "धत्त, कविता मुझे लिखनी है। कविता नहीं लिखूंगा तो मैं जिन्दा नहीं रह पाऊँगा।"

आश्चर्य है, उतने झमेलों के बीच उन दिनों अविनाशदा कैसे कविता लिखते थे। यह बात मेरे समझ में नहीं आती थी।

अन्त में अविनाशदा की फाइनल परीक्षा का दिन आ गया। मैंने पूछा, "कैसे तैयारियाँ हुई हैं, अविनाशदा ?"

"अच्छी नहीं हो पायी है। फेल हो जाऊँगा।"

अविनाशदा बेहिचक यह सब बात कह गये। लेकिन सुनकर मुझे डर लगने लगा। अविनाशदा अगर परीक्षा में फेल हो जाते हैं तो फिर क्या होगा ? उनके भैया पैसा भेजना बन्द कर देंगे। फिर अविनाशदा का खर्च कैसे चलेगा ?

मैं ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि अविनाशदा परीक्षा में पास हो जायें।

अविनाशदा जिस दिन परीक्षा देने गये, मैं भी उनके साथ हो लिया। रात में जगकर पढ़ते-पढ़ते अविनाशदा की सेहत खराब हो गयी थी, इसलिए एक आदमी का साथ रहना जरूरी था। टिफिन के वक्त मैं फाटक के सामने ही खड़ा था। पूछा, "कैसा हुआ ?"

अविनाशदा बोले, "अच्छा नहीं हुआ।"

"क्यों ? सवाल बहुत ही कठिन थे ?"

अविनाशदा बोले, "सवाल कठिन नहीं थे, लेकिन सर में दर्द है।"

जब तक परीक्षा चलती रही, अविनाशदा सर दर्द से परेशान रहे। सिर में असह्य दर्द रहता था। तीसरे पहर में मेस जाकर अविनाशदा का सिर दबा देता था। लेकिन चाहे सिर में दर्द रहे या कुछ और, अविनाशदा ने रात में जगकर पढ़ने की आदत नहीं छोड़ी। मैं शाम के वक्त घर लौट आता था। दूसरे दिन जाने पर देखता, दोनों हाथों से माथा दबाये अविनाशदा अपने पढ़ने का काम जारी रखे हुए हैं। अविनाशदा ने कविता लिख-लिखकर पूरा साल गुजार दिया है इसलिए उन्हें परीक्षा के समय रात में जगना पड़ रहा है।

अविनाशदा के धीरज की कोई सीमा नहीं। उस तरह के मेस में दो आदमियों के साथ एक ही साथ रहकर कविता लिखना और उसके साथ ही बी० ए० की परीक्षा देना! और मात्र तीस रुपये पर गुजारा करना!

मैं कहता, "परीक्षा खत्म होने के बाद आप कहीं आबोहवा बदलने चले जाइए, अविनाशदा। आपकी सेहत खराब हो गयी है। कम से कम दिल्ली तो भैया के पास जरूर ही चले जाइए।

अविनाशदा कहते, "अन्त में वहीं जाना होगा।"

मैं कहता, "दिल्ली में आपके कौन-कौन हैं ?"

अविनाशदा कहते, "भैया, भाभी, भतीजे-भतीजियाँ वगैरह।"

"माँ और बाबू जी ?"

"माँ और बाबू जी नहीं हैं। वे मेरे छुटपन में ही मर चुके हैं। भैया जब कलकत्ते में नौकरी करते थे तो आराम से था। भैया का तबादला हो जाने के कारण ही इस मेस में ठहरना पड़ा।"

अविनाशदा से उनके घर की सारी कहानी सुनता था। अविनाशदा छुटपन से एक अलग ही प्रकृति के आदमी हैं। उसी समय से उन पर कविता लिखने की झोंक सवार हुई है। तभी से उनकी इच्छा है कि बड़े होने पर वे कवि होंगे।

जिस दिन परीक्षा समाप्त हो गयी मैं गेट के बाहर खड़ा था। अविनाशदा के चेहरे पर आँखें जाते ही मैं दंग रह गया। देखा, अविनाशदा दोनों हाथ से अपना सिर दबाये हुए हैं। "क्या हुआ ? सिर में क्या बहुत ज्यादा दर्द है ?" मैंने पूछा।

उस समय अविनाशदा में उतनी भी ताकत न थी कि बातचीत कर सकें। वे दयनीय आँखों से मेरी ओर ताकने लगे। बोले, "अब खड़ा रहा नहीं जाता।"

"फिर टैक्सी बुला लाता हूँ।" यह कहकर मैं दौड़ता हुआ गया और रास्ते से एक टैक्सी ले आया। अविनाशदा को पकड़ कर टैक्सी में बिठाया। टैक्सी के अन्दर जाते ही अविनाशदा लेट गये। मैं उनकी बगल में बैठकर उनका सिर दबाने लगा। उसके बाद उन्हें उठाकर जब मेस के कमरे में बिस्तर पर लिटा दिया तो अविनाशदा दर्द से छटपटा रहे थे।

अनादि बाबू कमरे में आते ही अवाक् हो गये। पूछा, "क्या हुआ है?"

मैंने कहा, "सिर में दर्द है।"

"डॉक्टर को दिखा चुके हो?"

"नहीं।" मैंने कहा।

"सेरिडन की एक टिकिया खिला दो। अभी तुरन्त ठीक हो जायेगा।"

उनकी बात सुनकर मुझे ढाढ़स मिला। मैं बाहर सड़क पर निकल आया और दवाखाने से सेरिडन ले आया। उसके बाद अविनाशदा को पकड़कर बिठाया और उन्हें सेरिडन की एक टिकिया खिला दी।

थोड़ी देर के बाद अविनाशदा को जरा शान्ति मिली। आँखें बन्द-कर उन्होंने करवट ली और सो गये। देखने पर लगा, थोड़ी-सी राहत मिली है।

हेरम्ब बाबू वगैरह भी एक-एक कर ऑफिस से आये।

सभी के जबान पर एक ही बात थी, "क्या हुआ है? एकाएक सिर में दर्द क्यों हो गया?"

अनादि बाबू बोले, "रात-रात भर जगकर पढ़ता रहा है। मैंने कहा था, इससे तबीयत खराब होगी। उस समय कवि जी ने मेरी बात नहीं मानी। साल भर तो कविता लिखता रहा और अन्त में परीक्षा के समय इतनी रात तक जगकर पढ़ता रहा। भला यह कहीं बरदाश्त हो सकता है?"

हेरम्ब बाबू बोले, "इसके अलावा एक बात और [illegible] फायदा ही क्या है? क्या उससे पैसा मिलता है?"

पैसा नहीं मिलता है, यह जानता हूँ । अविनाशदा को भी यह मालूम है । उस दिन उन लोगों की बात सुनकर मुझे बेहद हँसी आयी थी । वे लोग कविता का मर्म क्या समझेंगे ? वे तो सिर्फ पैसे का मर्म समझते हैं । पैसे के अलावा और कुछ जानते ही नहीं । अविनाशदा का मर्म समझ नहीं पायेंगे और यही वजह है कि मैंने कोई विरोध प्रकट नहीं किया ।

जब देखा कि अविनाशदा नींद में खो गये हैं, मैं धीरे-धीरे बिस्तर छोड़कर खड़ा हो गया । अनादि बाबू से कह आया, "अविनाशदा पर जरा नजर रखिएगा, मैं कल सवेरे फिर आऊँगा ।"

घर आने पर रात में मैं सो नहीं सका । एक तरह से जगकर ही रात गुजार दी । सिर्फ यही सोचता रहा कि अविनाशदा के सिर का दर्द अगर कम न हुआ तो फिर क्या होगा ? अगर अविनाशदा सचमुच ही कोई विपत्ति में फँस जायें तो फिर क्या होगा ?

अविनाशदा के बारे में किससे बातचीत करूँ ? किससे सलाह-मशविरा करूँ ? अविनाशदा बहुत दूर के आदमी हैं, उनके लिए कौन माथा-पच्ची करेगा ? इस तरह के कितने ही आदमी इस दुनिया में हैं । कौन किसके लिए सोचता है ! अगर कोई पूछे कि अविनाशदा तुम्हारे कौन होते हैं तो मैं इसका क्या उत्तर दूँगा ? और अगर कहूँ, कवि हैं तो कहेगा : मैंने इसका नाम कहाँ सुना है ? उसकी कौन-कौन-सी कविता की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं ?

आज इतने दिनों के बाद सोच रहा हूँ कि उस दिन मैं अविनाशदा के लिए क्यों इतना व्याकुल हो उठा था । अविनाशदा से मेरा कौन-सा रिश्ता था ? अविनाशदा तो मेरे कोई नहीं हैं । उनका परिचय तो इतना ही है कि वे कवि हैं । उनकी कविताएँ पढ़ने में मुझे अच्छी लगती थीं । लेकिन अब तो कलकत्ते में कितने ही कवि हैं । उनकी कविताएँ जब पत्र पत्रिकाओं में छपें तो पढ़ लेने से ही काम चल जायेगा । उनसे घुलने-मिलने की जरूरत ही क्या थी ?

उन दिनों कार्तिक कलकत्ते में नहीं था कि उससे चर्चा करता । तब वह अपने पैतृक कारोबार के सिलसिले में कलकत्ते से बाहर गया हुआ था । उसके पिता ने बाहर का कारोबार सँभालने के लिए उसे कलकत्ते से बाहर भेज दिया था ।

उस दिन सवेरे नींद टूटते ही मैं घर से बाहर जा रहा था । माँ

बोली, "इतने तड़के कहाँ जा रहा है ?" मैंने कहा, "अविनाशदा के पास। अविनाशदा को बीमार देख आया था।"

माँ ने कहा, "अविनाश बीमार है तो तेरा क्या आता-जाता है ? बीमारी में तू क्या कर लेगा ?"

मैंने कहा, "एक आदमी मुसीबत में है तो मैं उसे देखने न जाऊँ ?" माँ हँसकर बोली, "अपने घर पर कोई बीमार पड़ता है तो तुझे कोई चिन्ता ही नहीं रहती। वह बीमार है तो तेरा अता-पता ही नहीं चलता।"

तब माँ की उन फिजूल की बातों पर ध्यान देने का वक्त मेरे पास नहीं था। मैं उस समय सड़क पर निकल आया था और दौड़ना शुरू कर दिया था। कहाँ बाग बाजार का मोड़ ! मोड़ के पास एक पतली गली। गली जहाँ खत्म होती है उसके मुहाने पर ही अविनाशदा का मेस है। मेस के आँगन ही में मेस के रसोइये से मुलाकात हो गयी। पूछा, "महाराज जी, अविनाश बाबू कैसे हैं ?"

रसोइये ने कहा, "बाबू की बीमारी बढ़ गयी है।"

"डॉक्टर आये थे ?"

रसोइये ने कहा, "नहीं, अविनाश बाबू के बड़े भाई को तार भेजा गया है।"

मुझसे अब देर बरदाश्त नहीं हुई। दनादन सीढ़ियाँ तय कर ऊपर पहुँच गया। देखा, मेस के दूसरे-दूसरे बोर्डर अपने-अपने काम पर निकल गये हैं। कोने की तरफ अपने बिस्तर पर अविनाशदा दर्द से छटपटा रहे हैं।

मैं उनकी बगल में जाकर बैठ गया और उनका सिर सहलाने लगा। पूछा, "बहुत तकलीफ हो रही है, अविनाशदा ?"

अविनाशदा ने आँख खोलकर एक बार मेरी ओर देखा। उसके बाद बोले, "हाँ, बहुत ही तकलीफ हो रही है।"

"सारी रात इसी तरह दर्द करता रहा ?"

"हाँ। मैं····मैं जिन्दा नहीं बचूँगा।"

लगता है, बीमार पड़ने से आदमी बच्चे जैसा हो जाता है। अविनाश-दा ने भी बच्चे की तरह ही अपने हाथों से मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये। मेरा हाथ पकड़ने से ही जैसे अविनाशदा का दर्द दूर हो जायेगा।

मैं भारी परेशानी में पड़ गया। अब मैं क्या करूँ ? किसे बुल

किसके साथ सलाह-मशविरा करूँ ? लगा, इस मेस में रहने से अविनाशदा जरूर ही मौत के मुंह में समा जायेंगे। मेस के दूसरे-दूसरे लोग किस किस्म के हैं ! उन्होंने देखा था, अविनाशदा दर्द से इस तरह छटपटा रहे हैं लेकिन ऐसी हालत में ही छोड़कर बाहर निकल गये।

मैंने कहा, "किसी डॉक्टर को बुला लाऊँ अविनाशदा ?"

अविनाशदा बोले, "अनादि बाबू ने भैया को टेलीग्राम भेज दिया है।"

"लेकिन उन्हें आने में दो दिन लग जायेंगे। तब तक क्या होगा ?"

अविनाशदा बोले, "मैं अब जिन्दा नहीं बचूँगा।"

मैंने ढाढ़स बँधाया, "आप चिन्ता मत करें, अविनाशदा। मैं यहाँ हूँ ही, आपके लिए चिन्ता की कोई बात नहीं है।"

अविनाशदा बोले, "डॉक्टर को कैसे दिखाऊँ, मेरे पास एक भी पैसा नहीं है।"

मैंने कहा, "पैसे के लिए आप फिक्र मत करें, मैं घर से पैसे लाकर दे दूँगा।"

अविनाशदा बोले, "लेकिन तुमसे पैसे क्यों लूं ? अगर लेता भी हूँ तो कर्ज चुकाऊँगा कैसे ?"

मैंने कहा, "आप यह सब बात मत कहें, अविनाशदा, आपके लिए मैं सब कुछ लाकर दे सकता हूँ।" यह कहकर मैं मेस से बाहर आया और दौड़ते हुए डॉक्टर की तलाश में निकल गया।

डॉक्टर कहाँ मिलेगा ? नया अनजाना मुहल्ला है। मैं किसी को भी नहीं पहचानता। बहुत खोज-पड़ताल करने पर एक मकान के सामने साइनबोर्ड दीख पड़ा। दवा की दुकान है।

अन्दर जाकर पूछा, "डॉक्टर साहब हैं ?"

अन्दर के कमरे में उस समय मरीजों की भीड़ थी। मेरी ओर सिर उठाकर देखा।

मैंने कहा, "डॉक्टर साहब, जल्दी चलिए, मेरे एक भाई साहब बहुत बीमार हैं, देर होगी तो वे जिन्दा नहीं बचेंगे।"

डॉक्टर साहब के पास अनेक मरीज थे। कोई-कोई डॉक्टर वैसा होता है जो पैसे की तुलना में इन्सानियत को अधिक महत्त्व देता है। शायद अविनाशदा की तकदीर अच्छी थी। नहीं तो मेरी बात सुनकर

डॉक्टर क्यों इतने सख्त हो उठते ? जल्दी-जल्दी सभी मरीजों को देखा। उसके बाद कुर्सी छोड़कर खड़े हो गये। बोले, "क्या हुआ है, बताइए।"

मैंने कहा, "सिर में बेहद दर्द है। दर्द के मारे सिर नहीं उठा पा रहे हैं। कल सेरिडन की एक टिकिया दी थी तो हल्की-सी नींद आयी थी। उसके बाद उन्हें छोड़कर मैं घर चला गया, अभी आने पर पता चला कि रात-भर छटपटाते रहे। कह रहे हैं, दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है।"

डॉक्टर साहब ने खोद-खोदकर मुझसे एक-एक बात पूछी। मुझसे उनका क्या रिश्ता है, यह भी पूछा। जब सुना कि मैं उनका सगा-संबंधी नहीं हूँ तो जरा उदास हो गये। मैंने कहा, "आप चिन्ता मत करें, जैसे भी होगा मैं आपकी फीस का पैसा चुका दूँगा।"

डॉक्टर साहब को उस छोटे मेस में ले गया। मकान के आसपास का माहौल देखकर डॉक्टर साहब के चेहरे पर गंभीरता घिर आयी।

डॉक्टर साहब ने बहुत देर तक अविनाशदा की जाँच की। उसके बाद एक कागज के टुकड़े पर कुछ लिखकर मुझे दिया। बोले, "इसे यह मिक्सचर दिन में तीन बार पिला दीजिएगा।"

मैंने जेब से चार रुपया निकालकर उनके हाथ में थमा दिया। रुपया पॉकेट के हवाले कर बोले, "कल तबीयत कैसी रहती है, मुझे खबर दीजिएगा।" और वे चले गये।

•

पहले ही बता चुका हूँ कि यह सब बहुत पहले की घटना है। तब जो मेरा 'मैं' था अब वह मेरा मैं नहीं है और अविनाशदा भी अब वही अविनाशदा नहीं रहे। रहना संभव भी नहीं है। इतिहास जिस तरह आगे बढ़ता है, आदमी के जीवन की भी वही स्थिति है। इतिहास की तरह आदमी भी एक ही जगह स्थाणु की तरह चुपचाप पड़ा नहीं रहता। उसे हिलना-डुलना पड़ता है, चलना-फिरना पड़ता है। इतना जरूर है कि कभी-कभी वह पीछे हट जाता है लेकिन बीच-बीच में उसे आगे भी बढ़ना पड़ता है।

अविनाशदा जीवन में आगे बढ़ने की ललक में इतनी तेज गति से बहुत आगे निकल जायेंगे, यह बात मैंने सोचा नहीं था। बहुत दिनों

के बाद अविनाशदा से जब फिर मुलाकात हुई तो वे बिलकुल दूसरे ही व्यक्ति जैसे लगे।

आज भी मैं कभी-कभी सोचता हूँ, ऐसा क्यों होता है ? जिस पर मुझे उतना भरोसा था, जिससे मैंने उतनी उम्मीद की थी, उसमें ऐसा बदलाव क्यों आया ? इसके पीछे कोई वास्तविक कारण नहीं है ? आदमी की आँख बदलते ही उसका मन भी बदल जाता है ? आदमी की आँख से उसके मन का कोई जटिल संबंध नहीं है ?

अविनाशदा ने रोगशय्या पर लेटे-लेटे कहा था, "तुमने मेरे लिए जो कुछ किया है उसका कर्ज आजीवन नहीं चुका पाऊँगा।"

मैंने कहा था, "आप यह सब फिजूल की बातें मत करें, मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सका।"

हो सकता है अविनाशदा ने सोचा हो कि मैंने अपनी जेब से डॉक्टर की फीस दी है। अपना पैसा खर्चकर अविनाशदा के लिए मिक्सचर ले आया हूँ। मेस में कितने ही आदमी थे। वे लोग बहुत दिनों के साथी थे। एक ही साथ, एक ही छत के नीचे साल पर साल गुजारे हैं। लेकिन किसी ने मुँह घुमाकर अविनाशदा की ओर देखा तक नहीं। महज भलमनसाहत की खातिर मेस लौटने के बाद पूछते थे, "कैसे हो अविनाश ?"

वे लोग देख चुके थे कि डॉक्टर साहब आये थे। लेकिन एक बार भी यह न पूछा कि पैसा किसने दिया, कौन दवा-दारू का दाम दे रहा। हेरम्ब बाबू रात में देर से आते थे। पूछते, "आज सर का दर्द कुछ हुआ है ?"

इन खोखले प्रश्नों का उत्तर न तो मैं देता था और न अविनाशदा ही देते थे। इसके अलावा उन कई दिनों के दरमियान इन बातों का उत्तर देने का वक्त भी मेरे पास नहीं था। उन दिनों मैंने घर आना-जाना बन्द कर दिया था। अविनाशदा के मेस में ही खाता और रहता था। घर पर झिड़कियाँ सुनने के बावजूद मुझे अविनाशदा के मेस में ही कई रात और दिन बिताने पड़े।

तीसरे दिन दोपहर के वक्त अविनाशदा के भैया आये। तार मिलते ही दिल्ली से रवाना हो गये थे। मेस के अन्दर आते ही आश्चर्य चकित हो गये। मैंने भी उन्हें कभी नहीं देखा था। कोट-पैंट पहने थे। चारों तरफ का माहौल देखकर वे अवाक् हो गये।

भले आदमी ने कहा, "यहाँ अविनाश नाम का कोई आदमी रहता है ? अविनाश चौधरी ? अबकी कलकत्ता यूनिवर्सिटी से बी० ए० की परीक्षा में सम्मिलित हुआ है।"

मैं समझ गया, ये ही अविनाशदा के भैया हैं। मैंने कहा, "आप दिल्ली से आ रहे हैं न ?"

भले आदमी ने कहा, "हाँ, अविनाश कैसा है ? उसे क्या हुआ है ?"

"कई दिनों से सिर में बेहद दर्द है, अच्छा हो ही नहीं रहा। डॉक्टर की दवा खाने से भी कोई फायदा नहीं है।" मैंने कहा।

भले आदमी मुझसे बातचीत करते हुए ऊपर जाकर अविनाशदा के पास बैठ गये। इस तरह का मेस और व्यवस्था भी ऐसी कि बैठने के लिए एक कुर्सी भी नहीं। मेस में बैठने की कोई जगह नहीं है, यह जैसे मेरे लिए ही शर्म की बात हो। वे अविनाशदा के मैले बिस्तर पर ही बैठ गये।

उसके बाद अविनाशदा की ओर देखते हुए बोले, "क्यों जी, तुम्हें क्या हुआ है ?"

उस समय अविनाशदा का चेहरा लाल अड़हुल फूल की तरह तमतमाया हुआ था। भैया की ओर देखते हुए बोले, "अब मैं ज्यादा दिन जिन्दा नहीं रहूँगा, भैया।"

"धत्त, तुम नाहक ही डर रहे हो। मैं आ गया हूँ, सब ठीक हो जायेगा।" यह कहकर वे अविनाशदा का सिर सहलाने लगे।

अविनाशदा की आँखों से आँसू की बूँदें ढुलकने लगीं।

थोड़ी देर बाद भले आदमी ने मेरी ओर देखा और पूछा, यह कौन है ?"

मैंने कहा, "मैं कोई नहीं लगता। अविनाशदा की बीमारी की खबर सुनकर देख-रेख करने चला आया। ये मेरे दोस्त के प्राइवेट ट्यूटर हैं।"

अब मैं वहाँ ज्यादा देर तक खड़ा नहीं रहा। जल्दी-जल्दी नीचे उतरा और रसोइये को भेजकर खाने की सामग्री मँगायी। खाद्य-पदार्थ देखकर वे आश्चर्य में आ गये। बोले, "यह सब अभी लाने क्यों गये ? मैं तो स्टेशन से खाना खा आया हूँ।"

"सो रहे," मैंने कहा, "आपके लिए दोपहर में चावल का इन्तजाम करने को महाराज से कह आया हूँ।"

भले आदमी ने कहा, "खाना-पीना बाद में होगा, और अगर न भी होता है तो कोई हानि नहीं, मैं आज रात ही अविनाश को साथ लिए दिल्ली चला जाऊँगा। वहाँ देख-रेख करने के लिए आदमी हैं, मेरा विश्वासी डॉक्टर भी है, बहुतेरे अस्पताल भी हैं। यहाँ देख-रेख के लिए कोई नहीं है, यहाँ रहने से उसका इलाज नहीं हो पायेगा।"

उनकी बातें सुनकर मुझे भी निश्चिन्तता का बोध हुआ। भले आदमी ने कहा, "यहाँ किसको कितना देना है? जिसका जो कुछ बकाया है, सब अदा कर चला जाना चाहता हूँ।"

महाराज को बुलाया गया। खाना वगैरह की बावत जो कुछ बकाया था, चुका दिया गया। धोबी का बकाया, पान की दुकान का बकाया सब कुछ चुका दिया गया।

उसके बाद सरो-सामान बाँधने का सिलसिला चला। सरो-सामान नाममात्र का था। एक टूटा हुआ सूटकेट और एक पुराना ट्रंक। शाम के वक्त सब कुछ ठीक हो गया। हेरम्ब बाबू तब भी मेस लौटकर नहीं आये थे। अनादि बाबू उस दिन जल्दी ही लौट आये थे। उन्होंने अविनाशदा के भैया से कहा, "बहुत ही अच्छा कह रहे हैं साहब, भाई को दिल्ली ले जा रहे हैं, यह बहुत ही अच्छी बात है।"

मैं यथा समय टैक्सी बुला लाया। अविनाशदा को अपने साथ टैक्सी पर बिठाकर भले आदमी चले गये।

मैं मेस के सामने की अँधेरी गली में खड़ा-खड़ा जाती हुई टैक्सी की ओर अपलक ताकता रहा। अनजाने ही मेरी आँखों से आँसू की दो बूँदें चू पड़ीं।

पहला दौर यहीं तक है। बचपन में यहीं अविनाशदा से मेरा संपर्क-विच्छेद हो गया। उसके बाद मैं कहाँ गया और कहाँ गये अविनाशदा!

बहुत बरसों तक फिर अविनाशदा से मेरी मुलाकात नहीं हुई। इन कई बरसों के दरमियान इस धरती पर कितने परिवर्त्तन आये, कितना उत्थान-पतन हुआ, इसका हिसाब रखना किसी के वश की बात नहीं है।

आदमी आहिस्ता-आहिस्ता सब कुछ भूल जाता है। दिन जितने ही

बीतते जाते हैं, पुरानी स्मृतियां उतनी ही धूमिल होती जाती हैं। नये-नये चेहरे, नयी-नयी स्मृतियों के जमघट के कारण पुरानी स्मृतियां आहिस्ता-आहिस्ता दूर चली जाती हैं।

इसीलिए जब बहुत बरसों के बाद जब अविनाशदा से दुबारा मुलाकात हुई तो उन्हें मैं पहचान नहीं सका। पहले का कुरता, धोती, चप्पल और सिर पर के बड़े-बड़े बाल गायब थे। अविनाशदा का चेहरा बदल कर दूसरी ही तरह का हो गया है।

गाड़ी सामने ही आकर खड़ी हुई थी। गाड़ी पर नजर पड़ते ही मैं जरा हटकर खड़ा हो गया।

लेकिन गाड़ी से जो आदमी नीचे उतरा वह सीधे मेरे सामने आकर ठिठककर खड़ा हो गया। मुंह में चुरुट है, आंखों में धूप का चश्मा। बोले, "क्या बात है, तुम यहां ?"

मैं गूंगे की तरह निर्वाक् खड़ा रहा। कहा, "मैं आपको पहचान नहीं पा रहा हूं।"

"यह क्या ! इसी बीच तुम मुझे भुला बैठे ?"

"नाम न बताने के कारण मुझे पहचानने में असुविधा हो रही है।" मैंने कहा।

"तो फिर मेरे साथ चलो।" यह कह कर मुझे अपने साथ लिए ऑफिस की बिल्डिंग के अन्दर घुसकर सामने की ओर जाने लगे।

मैं उनके पीछे-पीछे जाने लगा।

कई महीने पहले मेरा स्थानान्तरण बम्बई हुआ है और आजकल यहीं रह रहा हूं। यहां के किसी आदमी से अब भी मैं अच्छी तरह परिचित नहीं हो सका हूं।

मैं आकाश-पाताल सोचने लगा कि कौन हो सकता है।

भले आदमी के पीछे-पीछे चलता हुआ एक सजे-सजाये दफ्तर के कमरे के अन्दर जाकर बैठ गया। उसी समय कई आदमी अन्दर आये और कुछ कागज-पत्तर उनके सामने रख गये। भले आदमी कागजों पर हस्ताक्षर करने लगे। उसी बीच बिजली का कॉलिंगबेल दबाकर भले आदमी ने कॉफी लाने का हुक्म दिया। चारों तरफ का माहौल देखकर लगा, भले आदमी निश्चय ही बहुत बड़े आदमी हैं।

अचानक टेलीफोन आया। भले आदमी ने रिसीवर उठाकर पूछा, "हैलो ? आप कौन हैं ?"

उधर से आवाज आते ही उनके चेहरे पर एक परिवर्तन आ गया। कुछ देर तक उन दोनों में कुछ बातें हुईं। वह सब मेरी समझ में नहीं आया। मैं उस समय सिर्फ यही सोच रहा था कि ये सज्जन कौन हैं।

"अविनाशदा की तुम्हें याद है?" भले आदमी ने रिसीवर रखकर मेरी ओर देखा और हँस पड़ा।

मैंने अब तीक्ष्ण दृष्टि से भले आदमी की ओर देखा। बार-बार बाग-बाजार के मेस के अविनाशदा के चेहरे से उनके चेहरे का मिलान करने लगा। लेकिन समानता नहीं मिली। लगा, भले आदमी मुझसे मजाक कर रहे हैं।

भले आदमी ने कहा, "हेरम्ब बाबू, अनादि बाबू और मेस की बातें याद नहीं आ रही हैं?

मैंने कहा, "वे और ही तरह के थे। उनसे आपका चेहरा नहीं मिल रहा है। वे कवि थे, कविता लिखते थे।"

भले आदमी ने कहा, "मैं भी तो पहले कविता लिखा करता था।"

मैंने कहा, "वे सिर के दर्द के मारे परेशान थे, मैं मुहल्ले के डॉक्टर को बुला लाया था। उसके बाद उनके भैया दिल्ली से आये और उन्हें अपने साथ लेकर चले गये।"

भले आदमी ने कहा, "मैं ही तुम्हारा वह अविनाशदा हूँ। भैया के साथ उस समय मैं दिल्ली चला गया था। उसके बाद कलकत्ता लौटा ही नहीं।"

मैंने कहा, "उसके बाद मैंने पत्र लिखा था। आपको मिला था?"

भले आदमी ने कहा, "मिला था। लेकिन तब मैं उस स्थिति में नहीं था कि उत्तर दे सकूँ।"

"आप बी० ए० में फर्स्ट हुए थे, यह जानकर मुझे बेहद खुशी हुई थी। आपने कितनी तकलीफ उठाकर अपनी लिखाई-पढ़ाई जारी रखी थी। तीस रुपये में ही खाने-रहने का खर्च चलाना पड़ता था। आपके फर्स्ट होने से आपके बनिस्बत मैं ही ज्यादा खुश हुआ था, यह बात आपको मालूम है?"

भले आदमी ने कहा, "उस समय वह सब बात सोचने का मेरे पास वक्त नहीं था। क्योंकि तब आँखों की वजह से मैं बहुत ही तकलीफ में था।"

"आँख?"

अविनाशदा ने कहा, "हाँ आँख। उस समय डॉक्टर ने मेरी आँखों का ऑपरेशन किया था और मैं अपस्ताल के केविन में आँखों पर पट्टी लगाये दर्द से वेहाल था। इम्तिहान में क्या हुआ, उस पर सोचने का वक्त मेरे पास नहीं था। लगभग एक साल तक मुझे उसी हालत में बिस्तर पर लेट कर रहना पड़ा था।"

"उसके वाद ?" मैंने पूछा।

"उसके वाद तो मुझे तुम यहीं देख रहे हो। अभी यह नौकरी कर रहा हूँ।"

मैंने कहा, "कविता !"

अविनाशदा वोले, "अव कविता नहीं लिखता हूँ। अव वह मुझे वचपना जैसा लगता है। उस समय वह सव फिजूल का काम कर मैंने वहुत सारा वक्त वर्वाद कर डाला।"

मेरे मन मे वड़ा आघात लगा। "कविता लिखना क्या फिजूल का काम है ? वक्त वर्वाद करना है ?" मैंने पूछा।

अविनाशदा वोले, "तुम अव भी कविता-वविता लिखते हो ? जानते हो, वह सव करने से कुछ भी लाभ नहीं। सिर्फ समय की वर्वादी है। दिल्ली और वंवई आने के वाद महसूस हुआ, 'लाइफ' कविता नहीं है। लाइफ का अर्थ कुछ और ही है।"

अविनाशदा मुझे वेरोक-टोक लाइफ का अर्थ समझाने लगे, "लाइफ का अर्थ है संघर्प। स्ट्रगल। कविता में कोई स्ट्रगल नहीं है। यह तो केवल फूल की तरह खिलना हुआ। नीले आकाश के मेघों की तरह मँडराना। लाइफ स्टील और आयरन में है। लाइफ शेयर-मार्केट में है। प्रतिकूल भाग्य से संघर्प करने में लाइफ है। भाग्य को अपनी मुट्ठी में वन्दकर वाजीगरी का करिश्मा दिखाना होगा। चाँद पर उतरना होगा, जो अज्ञात है, उसे जानना होगा। तभी लाइफ़ का आनन्द है। स्ट्रगल न रहे तो फिर जीवन ही किस काम का ? इसीलिए मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि कविता लिखने का मतलव है सिर्फ कागज स्याही और वक्त की वर्वादी, इसके अलावा कुछ भी नहीं। जो लोग जिन्दगी के हर काम में नाकामयाव होते हैं, वे ही कविता की पंक्तियों का ढेर लगाते हैं। ऐसा कर वे अपने आपको छलते हैं, समाज को छलते हैं।"

उसके वाद इस तरह वोले जैसे कुछ याद आ गया हो, "हाँ, तो तुम वंवई में क्या करते हो, यह पूछा ही नहीं।"

मैंने कहा, "पत्रकारिता कर रहा हूँ।"

"पत्रकारिता ? कौन-सी परीक्षा पास की है ? आजकल तो तुम लोगों का ग्रेट अच्छा हो गया है। तब हाँ, एक बात। पत्रकारिता का अर्थ ही है जैक ऑफ ऑल ट्रेड्स। जैक हुए बिना उस लाइन में तरक्की नहीं हो सकती है, यह बात कहे देता हूँ।" यह कहकर उन्होंने अपने चुरुट से एक लंबा कश लिया।

याद है, उस दिन अविनाशदा में वैसा परिवर्त्तन पाकर मैं अवाक् होकर बहुत देर तक उनके चेहरे की ओर ताकता रह गया था।

अविनाशदा ने कहा, "इस तरह क्या देख रहे हो ?"

"आपका चेहरा।" मैंने कहा।

"क्यों ? मेरे चेहरे पर क्या है ?"

मैंने कहा, "लगता है, आप पहलेवाले अविनाशदा नहीं हैं बल्कि कोई दूसरे ही आदमी हैं। किसी आदमी का चेहरा क्या इतना बदल जाता है ?"

अविनाशदा हँसने लगे। मैंने जैसे कोई हँसी की बात कही हो। काश, अविनाशदा को पता होता कि उनके इस बदलाव से मेरे मन में कितना बड़ा आघात पहुँचा है। हो सकता है, अविनाशदा को मोटी तनख्वाह मिलती हो। एक बंगाली जितनी तनख्वाह की उम्मीद करता [illegible], उससे कहीं अधिक तनख्वाह मिल रही हो। हो सकता है, कुल मिला-[illegible]र पाँच हजार रुपया मिलता हो। लेकिन यही क्या बड़ी बात है ? [illegible]ो अविनाशदा पहले दूसरी तरह की बातें करते थे। उम्र के साथ-साथ [illegible]ादमी क्या अपने धर्म और मत को भी तिलांजलि दे देता है ?

मैं जानता हूँ, अविनाशदा की इस तथाकथित उन्नति पर बहुतों को [illegible]ुशी होगी। बहुतेरी लड़कियाँ अविनाशदा से शादी करने के लिए [illegible]ालायित होंगी। हो सकता है, बंबई के तथाकथित अभिजात वर्ग की [illegible]ॉकटेल पार्टी और डिनर पार्टी में अविनाशदा की उपस्थिति बहुतों की [illegible]ृष्टि अपनी ओर खींचती हो। लेकिन जीवन के प्रारंभिक काल में अवि-[illegible]ाशदा और मैंने क्या इसी की चाहना की थी ? उन दिनों टुटहे मेस में [illegible]ीस रुपये माहवार पाकर वे लज्जा से मरियल जैसे नहीं हो गये थे ? [illegible]म दोनों में से किसी ने अर्थ को प्रमुखता देकर परमार्थ की अवहेलना [illegible]हीं की थी। फिर आज अविनाशदा ने कैसे काव्य का इस तरह तिर-[illegible]कार किया ?

नाते मेरा क्लब न जाना भी मेरे लिए हानिकर नहीं है। असल में मेरा दफ्तर ही एक छोटा-मोटा क्लब है। तरह-तरह के आदमी को तरह-तरह के काम के कारण हमारे दफ्तर में आना पड़ता है। इसी क्रम में बंबई के बहुतेरे गण्यमान्य व्यक्तियों से मेरी जान-पहचान हो गयी थी। उसी सिलसिले में उनके घर पर या उनके सगे-संबंधियों के घर पर जाने का सुयोग मिला था।

उन्हीं में से एक व्यक्ति हैं रावेलकर। रावेलकर मराठी हैं। रावेलकर अपने धंधे के सिलसिले में सारे हिन्दुस्तान का चक्कर लगा आये हैं। कुछ साल कलकत्ते में भी गुजार चुके हैं। कुछ साल दिल्ली में भी रह चुके हैं। एक ही लड़की है उनके। उसी लड़की के कारण ही रावेलकर के जीवन में जो कुछ घटने को होता है, घटता है।

मैं निरीह आदमी हूँ। आमतौर से मैं झंझट-झमेले में रहने का आदी नहीं हूँ। इसीलिए जितने दिन बंबई में रहा सबसे मिल-जुलकर ही रहा।

पहले ही बता चुका हूँ कि बंबई शहर कलकत्ते की तरह नहीं है। यहाँ लोग अपनी-अपनी समस्या में ही उलझे रहते हैं। किसी से अगर मुलाकात होती है तो उसका कारण धन-संपत्ति ही रहता है। तुम्हारी जरूरतों से मेरा स्वार्थ जुड़ा हुआ है तो मैं तुम्हारा मित्र हूँ। वरना तुम मेरे कोई नहीं। तुम दोमंजिले पर रहते हो और मैं एक मंजिले पर, फिर भी तुमसे मुझे बातचीत करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। साल-दर साल एक ही पते पर वास करने के बावजूद तुम मेरे लिए पराये ही रह जाओगे। मैं तुम्हारे मामले में माथापच्ची नहीं करूँगा और तुम भी मेरे मामले में माथापच्ची नहीं करोगे। हम दोनों एक-दूसरे के नाम से परिचित होंगे, एक-दूसरे का चेहरा भी पहचानेंगे लेकिन कभी आपस में बातचीत नहीं करेंगे।

असल में बंबई में जरूरत ही सब कुछ है। जरूरत है तो तुम मेरे मित्र हो और जब जरूरत पूरी हो जाती है तो तुम मेरे लिए पराये हो। तुम अपने धंधे में लगे रहो, मैं अपने धंधे में लगा रहूँगा।

मिस्टर रावेलकर की लड़की विद्या को मैं पहचानता था। दरअसल इसी विद्या को लेकर मेरी यह कहानी है।

विद्या को पहचानने का एक कारण है। वह यह कि विद्या नाच-गान में निपुण है। चाहे नाच-गान हो ...

विद्या बोली, "अबकी जरा अच्छी तरह पब्लिसिटी कर दीजिएगा, मिस्टर मित्र।"

मैंने कहा, "इसके पहले क्या अच्छी तरह से पब्लिसिटी नहीं की थी ?"

विद्या बोली, "की है, लेकिन अब की दो-चार ब्लॉक दे दें तो और भी अच्छा रहे।"

नर्त्तकी रहने पर भी विद्या रावेलकर स्वभाव और चरित्र की दृष्टि से अच्छी लड़की है। विद्या को मैं बहुत दिनों से देखता आ रहा हूँ। जो लड़कियाँ नाचती-गाती रहती हैं, आम तौर से उनके बहुतेरे फैन होते हैं। वे लोग आर्टिस्ट के इर्द-गिर्द चक्कर काटकर उसे बहुत ऊँची जगह पहुँचा देते हैं। लेकिन विद्या के साथ ऐसी बात नहीं है। न होने के कारण हैं मिस्टर और मिसेज रावेलकर। वे लोग हमेशा अपनी लड़की को घेरे रहते हैं। इससे कोई आसानी से विद्या के निकट नहीं आ पाता है। उसके बाद एक दिन नियमानुसार नृत्य का आयोजन हुआ। उसके एक दिन पहले हमारे समाचार-पत्र में तसवीर के साथ विद्या रावेलकर की खबर छपी। तुरन्त टिकट खरीदने का धूम मच गया। कुछ ही घण्टों के दौरान नृत्योत्सव की तमाम टिकटें बिक गयीं। एकबारगी हाउसफुल।

उसके दूसरे ही दिन मिस्टर रावेलकर हमारे दफ्तर में आये। चेहरे ...सी तैर रही थी। बोले, "बहुत ही प्रसन्न हूँ। मिस्टर मित्र, आपके ...ने का नतीजा बहुत ही अच्छा निकला।

"विद्या का नृत्य बहुत अच्छा था।" मैंने कहा।

मिस्टर रावेलकर बोले, "विद्या की तकदीर बहुत अच्छी है, हमने इतनी उम्मीद नहीं की थी। मैं जरा नर्वस हो गया था।"

"देखिए" मैंने कहा, "अखबार वाले क्या कहते हैं ?"

"इसीलिए तो आपके पास आया हूँ, मिस्टर मित्र। इस विषय में आपको अच्छी तरह से 'राइटपुट' देना होगा।"

मैं सहमत हो गया। "दूँगा, आप फिक्र मत करें।" मैंने कहा।

मिस्टर रावेलकर चले गये। लेकिन दूसरे दिन विद्या अपनी माँ के साथ मेरे घर पर आकर हाजिर हो गयी। आकर बोली, "मुझे बड़ा ही डर लगता है, मित्र जी।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

मिसेज रावेलकर ने मुझसे कहा, "हाँ मित्र जी, विद्या ठीक ही कह रही है। कल रात से ही उसे नींद नहीं आ रही है। कहती है, अखबार के रिपोर्टरों पर उसका फ्यूचर निर्भर करता है।"

अन्ततः वम्बई के तमाम अखबारों में अच्छी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। सभी ने उसके नृत्य की प्रशंसा करते हुए लम्बे-लम्बे कॉलम भर दिये।

यह सब व्यतीत की बातें हैं। जब मैं पहले-पहल वम्बई आया था, तब की घटना है। विद्या को दोनों ही स्थितियों में देख चुका हूँ—तब-जब उसकी ख्याति नहीं फैली थी और फिर उस समय जब ख्याति फैल चुकी थी। लेकिन किसी भी स्थिति में विद्या में कोई परिवर्त्तन नहीं देखा। जैसे वह पहले की तरह ही बच्ची की बच्ची रह गयी।

लेकिन अचानक एक दिन एक नयी खबर सुनकर मैं चिहुँक उठा।

मिस्टर रावेलकर बोले, "शायद आपने सुना नहीं होगा, मेरी विद्या की शादी होने जा रही है।"

"विद्या की शादी ?"

मिस्टर रावेलकर बोले, "हाँ शादी। पहले भी एक बार विद्या की शादी हो चुकी थी, यह दूसरी बार होने जा रही है।"

मैं जैसे आसमान से नीचे गिर पड़ा। बोला, "पहले क्या विद्या का विवाह हो चुका है ? मुझे तो पता नहीं था।"

मिस्टर रावेलकर बोले, "हाँ, वह एक बहुत ही दुखद घटना है। किसी को भी मालूम नहीं। किसी को बताया भी नहीं है। कहने लायक घटना है भी नहीं।"

"सो तो है ही, लेकिन वह शादी टूट कैसे गयी ?" मैंने पूछा।

मिस्टर रावेलकर ने जो कुछ कहा, उससे और भी अवाक् हो गया। बहुत दिन पहले जब मिस्टर रावेलकर दिल्ली में थे तो वहीं विद्या की शादी हुई थी। "जमाई बहुत ही अच्छा मिला था। बहुत ही खूबसूरत चेहरा था। जमाई को देखकर सबने शाबाशी दी।" यह कहते-कहते मिस्टर रावेलकर की आँखें छलछला आयीं।

"उसके बाद ?" मैंने पूछा।

उसके बाद जिस घटना का पता चला वह बड़ा

"विद्या के साथ एक बार म [illegible]

अच्छा लड़का था कि क्या कहूँ, मिस्टर मित्र ! मैंने ही मलहोत्रा को पसन्द किया था। विद्या भी वैसी ही लड़की है। आजकल की लड़कियाँ अपने आप हसबैंड का निर्वाचन करती हैं। लेकिन हमारी विद्या वैसी लड़की नहीं है। विद्या को मैंने बहुत लाड़-प्यार से पाला है। वह मेरी बहुत ही प्यारी बिटिया है। वही लड़की जब विधवा हो गयी तो मुझे कितना आघात लगा, यह बात मैं आपको कैसे समझाऊँ ?"

मैंने पूछा, "अचानक विधवा कैसे हो गयी ?"

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "वह बड़ी ही दुखद घटना है। सोचने पर मुझे कष्ट होता है। उस दिन विवाह के बाद जब पहले-पहल हनीमून मनाने मंसूरी गये तो उस समय भी नहीं जानता था कि ऐसा होगा। याद है, दिल्ली के जितने मिनिस्टर हैं, सभी उस विवाह के अवसर पर आये थे। उस शादी में पार्टी देने में ही मेरा दस हजार रुपया खर्च हो गया था। मेरे एक ही लड़की है तो फिर मैं खर्च क्यों न करूँ ? उस समय सोचा था, किसके लिए पैसा जमा करूँ ? विद्या के अतिरिक्त मेरा है ही कौन ? मैं लड़की के अलावा और किसी के बारे में नहीं सोचता।"

"उसके बाद ? मंसूरी जाने पर क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "कह ही चुका हूँ कि वह एक ट्रैजिक घटना है। उन दिनों के अखबारों में यह भी खबर छपी थी। मलहोत्रा दिन आकर बोला, "मैं विद्या के साथ कल मंसूरी जा रहा हूँ।"

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "कल ही जाओगे ? होटल बुक कर है ?"

"हाँ।"

"बर्थ रिजर्व करा लिया है ?"

मलहोत्रा ने कहा, "ट्रेन से नहीं, रोड से जाऊँगा।"

मलहोत्रा ने एक नयी विदेशी गाड़ी खरीदी थी। उसे शौक था कि यी गाड़ी में पत्नी को साथ लिए घूमने निकले। शौक है तो जाये। बाधा देने क्यों जाऊँ ? लड़की की शादी कर दी है तो उसकी हिफाजत रना मेरा काम नहीं, जमाई का है। लड़की के भले-बुरे की जिम्मेदारी माई पर है। मैं अड़ंगा लगाने क्यों जाऊँ ?

मैंने विद्या की ओर देखा। वह मेरी ही ओर ताक रही थी। मैं जी हो जाऊँ, यही उसकी इच्छा थी।

मैंने कहा, "विद्या, तू जायेगी ? जाने की इच्छा है ?"

विद्या ने कहा, "सड़क से सब कुछ देखती हुई जाऊँगी। क्या यह अच्छा नहीं रहेगा ?"

"तू तो मंसूरी इसके पहले हो आयी है ?"

"लेकिन वह तो ट्रेन से गयी थी, बाबू जी। सड़क से कभी नहीं गयी हूँ। नयी गाड़ी है, चिन्ता की कौन-सी बात है ? उसकी तीव्र इच्छा है, इसी के लिए उसने छुट्टी ली है।" यह कहकर उसने मलहोत्रा की ओर देखा।

उन्हें एक-दूसरे की ओर देखना मुझे बहुत ही अच्छा लगा। लड़की और जमाई में प्रेम-भाव है, यह देखकर किस माँ-बाप का मन प्रसन्न न होगा ? मैं सहमत हो गया। सहमत न होता तो उपाय ही क्या था ?

"उसके बाद एक दिन वे चले गये। भोर चार बजे रवाना हो गये। याद है, उनके चले जाने पर हम दोनों पति-पत्नी का मन बहुत उदास हो गया। हमने दो दिन काफी कष्ट में गुजारे। सवेरे छह बजे प्यून चिट्टी देने आता है। मैं सवेरे पोर्टिको के सामने खड़ा रहता था। लेकिन विद्या की चिट्ठी के बदले टेलीग्राम मिला।"

मैं चुप्पी साधे मिस्टर रावेलकर की कहानी सुन रहा था। पूछा, "टेलीग्राम ?"

"हाँ, एक्सीडेण्ट का टेलीग्राम। गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के कारण मलहोत्रा पहाड़ से नीचे गिर गया है। विद्या भी साथ ही थी। दोनों को अस्पताल ले जाया गया है। दोनों की हालत सीरिअस है।

"टेलीग्राम पाने के बाद मेरी समझ में नहीं आया कि क्या करूँ। शायद मैं बेहोश होकर गिर पड़ता। लेकिन बगल की कुरसी पर किसी तरह बैठ गया।

"जीवन में इस तरह कभी मृत्यु का साक्षात्कार नहीं किया था, मिस्टर मित्र। किसी को मरते न देखा हो, ऐसी बात नहीं। वह सहज स्वाभाविक मृत्यु होती है। लेकिन ऐसी भी मृत्यु हो सकती है, इसका मुझे पता नहीं था। लगा, जीवन-भर में मैंने जो किया है, जाना है, सीखा है—सब ध्वस्त हो गया। सारा विश्वास जैसे चकनाचूर हो गया।"

मैं अवाक् होकर मिस्टर रावेलकर की बातें सुन रहा था। जब से

अखबार की नौकरी के कारण बंबई आया हूँ, मिस्टर रावेलकर से उसी वक्त से परिचित हूँ। मामूली परिचय ही आहिस्ता-आहिस्ता घनिष्ठता में परिणत हो गया था। एक तरह से मैं रावेलकर के परिवार का अंग ही हो गया था। उनके विषय में कुछ जानना-सुनना मेरे लिए बाकी नहीं रह गया था।

लेकिन विद्या की एक बार शादी हो चुकी है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। मैंने सारी बातों को सिलसिलेवार ढंग से सोचकर देखा। नहीं, ऐसी कोई घटना याद नहीं आयी जिससे संदेह किया जा सकता है कि विद्या की एक बार शादी हो चुकी थी। मैं सोचता था, आजकल जो लोग नृत्य-संगीत में लगे रहते हैं उनमें से अधिसंख्य शादी-विवाह ही नहीं करते। फिर विवाह करना ही होगा, इसका क्या कोई मानी है? खासतौर से विद्या जैसी लड़कियों के लिए जिनका जीवन नृत्य के पीछे ही व्यतीत होता है। मैंने पूछा, "उसके बाद?"

मिस्टर रावेलकर कहने लगे, "मलहोत्रा की मृत्यु के बाद जो सब अन्तिम संस्कार करना पड़ता है, सब किया। उसके बाद दिल्ली से बोरिया-बिस्तर बाँध मैं बंबई चला आया। वह इसलिए कि विद्या मलहोत्रा की याद पूरी तरह भूल सके।

"सच कहने में हर्ज ही क्या, बंबई आने के बाद विद्या और ही तरह की हो गयी। अब वह किसी से मिलती-जुलती नहीं है, किसी से बातचीत [illegible]ीं करती। मैं अपना बिजनेस देखूँ या लड़की की देख-रेख करता रहूँ। आखीर में अपना बिजनेस छोड़ दिया और घर पर बैठे रहकर विद्या के साथ समय गुजारने लगा। अन्त में दिमाग में एक सूझ आयी। विद्या का झुकाव सदा से नाच की ओर रहा है। मैंने उसके लिए एक नृत्य-शिक्षक रख दिया। शंभुकृष्ण मेनन का नाम आपने सुना है? उनका देहान्त हो चुका है। लेकिन मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ हूँ। उन्होंने मन लगाकर मेरी लड़की को नृत्य की शिक्षा दी थी। मेरी विद्या ने जो कुछ भी सीखा है, वह मेनन साहब की ही कृपा का फल है।

"उसी समय से विद्या नृत्य में ही मशगूल रहती है। उसके लिए नृत्य ही सब कुछ है। तब से वह इसी पर अवलंबित है, मेरी भी वही हालत है। क्योंकि विद्या का सुख ही मेरे लिए सुख है। विद्या इतनी बड़ी मुसीबत भूल चुकी है, इसी से मैं निश्चिन्तता का अनुभव कर रहा हूँ। आज आप जैसे कुछ लोग विद्या को जो सपोर्ट कर रहे हैं [illegible]

विद्या में नये जीवन का संचार हुआ है। नहीं तो हमने कल्पना भी नहीं की थी कि वह किसी समाज से घुलमिल सकेगी।"

मैंने कहा, "मगर आपकी लड़की में भी पार्ट्स था। यों ही नाम नहीं होता।"

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "हर वक्त ऐसी बात नहीं होती, गुण रहने से ही ख्याति मिल जाती है? बंबई में कितने ही हुनरमन्द लोग हैं, लेकिन कोई भी उन्हें सहारा नहीं देता। आप जैसे कुछ आदमी न होते तो विद्या का नाम फैलता?" उसके बाद जरा रुककर बोले, "पब्लिसिटी की जरूरत पड़ती ही है, आप लोग चाहे जो कहें।"

मैंने कहा, "पब्लिसिटी के द्वारा क्या किसी को बढ़ाया जा सकता है, मिस्टर रावेलकर? ऐसी बात होती तो मैं भी 'फेमस' हो जाता। अपनी पब्लिसिटी खुद करता।"

मिस्टर रावेलकर इस तरह की बहसबाजी में पड़ना नहीं चाहते। बोले, "यह सब रहने दीजिए। जो कुछ हुआ है, अच्छा ही हुआ है, अब उन बातों पर सोचने से कोई फायदा नहीं। अब विद्या फेमस हो चुकी है—अब आप लोगों की शुभेच्छा से यदि वह [illegible] मैं अपने आपको सुखी अनुभव करूंगा।"

"पात्र कौन है? विद्या क्या उससे परिचित है?" मैंने पूछा।

"नहीं।" मिस्टर रावेलकर ने कहा।

"तो फिर विवाह का संबंध यहाँ कैसे ठीक हुआ?"

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "[illegible] बहुत बड़ी नौकरी पर है, स्वभाव-चरित्र बहुत अच्छा है। [illegible] कर देखा, लड़की की शादी करनी ही है—[illegible] और अगर शादी करनी ही है तो [illegible]"

मैंने कहा, "अच्छा ही किया है। [illegible]"

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "नहीं, [illegible] उसे अगाध श्रद्धा है, मिस्टर मित्र। [illegible] उसकी भलाई के लिए ही करूंगा। [illegible]"

"लगता है, उन्होंने आपकी लड़की का [illegible]"

मिस्टर रावेलकर बोले, "हो सकता है, [illegible] पूछा।" मैंने पूछा, "कहाँ रहते हैं? [illegible]"

नहीं, बंबई में ही रहता है। [illegible]

उस दिन मैं चुप नहीं रह सका। सीधे फोन कर अविनाशदा को बुलाया।" अच्छे हैं न अविनाशदा ?" मैंने कहा।

अविनाशदा की गंभीर आवाज तत्क्षण स्वाभाविक हो गयी। बोले, "तुम तो फिर आये ही नहीं।"

मैंने कहा, "मैं आज ही आपके पास आ रहा हूँ। आप रहिएगा न ?"

"रहूँगा। तुम्हारे लिए ही रहूँगा। आओ, हम एक साथ ही डिनर लेंगे।"

मैंने अपनी सहमति जताकर टेलीफोन रख दिया। उसके बाद शाम के वक्त ऑफिस से निकलकर सीधे अविनाशदा के दफ्तर पहुँचा। वही तमगा लगाये दरबान। वही लिफ्ट, वही चुस्त-दुरुस्त बंबई-मार्का दफ्तर।

अविनाशदा शायद मेरे लिए ही तैयार होकर बैठे थे। मैंने जैसे ही अन्दर कदम रखा, उन्होंने कहा, "चलो, तुम्हारे लिए ही बैठा था। अपना काम वगैरह मैंने खत्म कर लिया है।"

अविनाशदा की गाड़ी नीचे ही खड़ी थी। अविनाशदा के आदेशानुसार गाड़ी चर्चगेट की ओर जाने लगी। चर्चगेट के अन्तिम छोर पर हम एक कीमती रेस्तराँ में जाकर बैठ गये।

कुछ देर तक खाना खाने के बाद अविनाशदा ने पूछा, "तुम बहुत दिनों से क्यों नहीं आ रहे थे ?"

मैंने उन्हें अपनी असुविधा के बारे में बताया। अविनाशदा ने भी अपनी असुविधाओं का जिक्र किया। उनके कंधे पर बहुत बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियों का बोझ पड़ गया है। एडमिनिस्ट्रेटिव अफसर के कंधे पर जिम्मेदारी सौंपकर ही कम्पनी निश्चिन्त हो जाती है।

खाने-पीने का दौर जब मध्यपर्व में पहुँच गया तो अविनाशदा ने एकाएक कहा, "शायद तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि मैं शादी करने जा रहा हूँ।"

मैंने चिहुँक उठने का बहाना किया।

अविनाशदा बोले, "अच्छा कर रहा हूँ न ?"

"बहुत ही अच्छा कर रहे हैं", मैंने कहा, "कभी न कभी शादी करनी ही है।"

"किससे शादी करने जा रहे हो, बताओ तो ... तुम्हें उसका नाम मालूम है।" अविनाशदा मुसकराने लगे। उ

चय ज्यादा देर तक छिपाकर नहीं रखा। बोले, "उसका नाम है विद्या रावेलकर। तुम्हारे अखबार में उसकी काफी प्रशंसा रहती है।"

"जानता हूँ।" मैंने कहा।

"बहुत ही अच्छा नृत्य करती है, है न ? तुमने कभी उसका नाच देखा है ?"

"हाँ", मैंने कहा, "आजकल खूब नाम पैदा किया है। आपसे उसकी जान-पहचान कैसे हुई ?"

अविनाशदा बोले, "उससे अभी तक जान-पहचान नहीं हुई है। विद्या ने मुझे देखा तक नहीं है। तुम लोगों के अखबार में उसकी बेहद पब्लिसिटी देखकर, एक दिन टिकट कटाकर नाच देखने गया था। उसके बाद विद्या के पिता से एक पार्टी में जान-पहचान हुई। उन्होंने ही बातें छेड़ीं और मैं राजी हो गया।"

मैंने कहा, "सुना है, बहुत ही अच्छी लड़की है। स्वभाव-चरित्र भी अच्छा है।"

अविनाशदा बोले, "तब हाँ, उसके पिता ने बताया कि दिल्ली में उसकी एक बार शादी हुई थी। पति मोटर एक्सीडेण्ट में मारा गया।"

मैंने कहा, "उससे क्या हुआ ? आजकल यह सब चालू हो गया है।"

अविनाशदा ने कहा, "मैं राजी हो गया हूँ, भाई। और राजी न होऊँ तो क्या करूँ ? मैंने भी सोचकर देखा, शादी तो एक दिन होगी और दूसरी बात ये है कि पहला पति ज्यादा दिनों तक जिन्दा नहीं था। शादी के एक महीने बाद ही गाड़ी लेकर मंसूरी गया और वहीं दुर्घटना हो गयी। उस शादी से कोई संतान भी नहीं है। इसके अलावा तुम तो ठहरे अखबार के आदमी। तुम लोगों को बहुतों की अन्दरूनी खबरों का पता रहता है। विद्या का चरित्र वगैरह कैसा है ?"

खाना खाते हुए मैं बार-बार अविनाशदा को गौर से देख रहा था। मुझे लग रहा था कि यह कोई दूसरे ही अविनाशदा हैं। उनके चेहरे में ही नहीं, मन में भी एक बहुत बड़ा परिवर्त्तन आ गया है।

शायद आर्थिक परिवर्त्तन के साथ-साथ किसी-किसी में ऐसा ही बदलाव आता है। बाग बाजार के उस मामूली मेस से कदम बकदम ऊपर की ओर उठते हुए अविनाशदा बम्बई की इन गगनचुम्बी अट्टालिकाओं की तरह ही सौभाग्य का आकाश छूना चाहते हैं। वरना

विवाह करने की ही यदि इच्छा थी तो अविनाशदा किसी स्नेहमयी बंगाली लड़की से शादी कर सकते थे। प्रेम की बात अलहदा है। कितने ही आदमी मेमों से शादी करते हैं। क्योंकि प्रेम का फन्दा सारी धरती पर बिछा है। कब कहाँ कौन पकड़ में आ जायेगा, कोई नहीं कह सकता। लेकिन यह तो प्रेम-विवाह नहीं है। यह तो सोच-समझकर, हिसाब-किताब कर रिश्ता कायम करना है। स्वयं तो बहुत धनी-मानी हैं ही, उसके साथ ही एक ख्याति प्राप्त लड़की से अपने जीवन का रिश्ता कायम कर संपूर्ण मानव होना चाहते हैं। रुपये से ख्याति को मिलाकर सोने और सुहागे में संबंध स्थापित करना चाहते हैं।

बहुत सोचने-विचारने के बाद इसका कारण मेरी समझ में आया। वरना इसके पीछे और कौन-सा कारण हो सकता है? अविनाशदा ने विद्या का केवल नृत्य ही देखा है, कभी उससे बातचीत नहीं की है। उसके बाद जब मिस्टर रावेलकर ने प्रस्ताव रखा तो यही सोच-विचार कर उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

खाना-पीना खत्म होने के बाद मैं घर लौट आया। लेकिन मेरे मन से यह चिन्ता दूर नहीं हुई। सोचा, यही स्वाभाविक है। एक सफलता से दूसरी सफलता को जोड़कर यह दुगना सफल होना जैसा है। हर आदमी यही चाहता है। अपनी प्रतिभा और ससुर का पैसा जब एक जगह इकट्ठे होते हैं तो विवाह का रिश्ता पक्का हो जाता है। इसमें नयापन है ही क्या? मैं इस पर इतना सोच क्यों रहा हूँ?

कुछ दिनों के बाद दोनों पक्ष से निमन्त्रण-पत्र मिला। विशाल आयोजन था। मिस्टर रावेलकर के घर में शादी हुई। घर के सामने के बगीचे में विशाल पंडाल तैयार कर विवाह का उत्सव संपन्न हुआ। बहुतेरे गण्यमान्य व्यक्तियों का स्वागत-सत्कार किया गया। मिस्टर रावेलकर बहुतेरे व्यक्तियों के घर पर दावत में शामिल हो चुके हैं। अबकी उनके घर पर ही यह कार्य पहले-पहल संपन्न हो रहा है। [illegible] तेरे आदमियों का जमघट है। इसी के दौरान अविनाशदा [illegible] में आये। देखने में अच्छे लगे परन्तु उनकी आँखें [illegible] लगीं। इस दृष्टि का मान क्या है!

उस दिन भीड़ में बहुत देर तक रहना मुझे अच्छा नहीं [illegible] चाप सबके अनजाने सड़क पर निकल आया।

पात्र की ओर से होटल में बहुत बड़ी [illegible]

अविनाशदा मेहमान नहीं बल्कि मेजबान थे। उस दिन अविनाशदा धोती में नहीं थे, सूट-बूट पहने चुस्त-दुरुस्त अफसर लग रहे थे।

मिस्टर रावेलकर स्वागत-सत्कार करने के लिए आगे बढ़ आये। बोले, "आपने आने में इतनी देर क्यों की ?"

मैंने कहा, "ऑफिस के काम से रुक जाना पड़ा था।" उस दिन भी मैं जल्दी ही चला आया था, क्योंकि काम था।

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "लेकिन एक बात है, मिस्टर मित्र, आपने तो मुझे बताया नहीं कि आप मिस्टर सेन से परिचित हैं।"

मैंने कहा, "अविनाशदा से मेरी बहुत पुरानी जान-पहचान है।"

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "यह सुनकर मैं अचकचा गया। मैंने कहा : मिस्टर मित्र ने मुझे इसके बारे में कुछ भी नहीं बताया था।"

मैंने कहा, "इसमें कहने की कौन-सी बात है।"

तब तक और कुछ मेहमान आ गये थे। मिस्टर रावेलकर उनके कारण व्यस्त हो गये। मैं एक किनारे खड़ा होकर सब कुछ ध्यानपूर्वक देखने लगा। चारों तरफ जब सब व्यस्तता में डूब गये, मैं लोगों की नजर बचाकर बाहर निकल आया।

सड़क पर चलते-चलते मैं सिर्फ अविनाशदा के बारे में ही सोचता रहा। कोई-कोई आदमी ऐसा होता है जो जीवन की सफलता को ही प्रमुख मानता है। अविनाशदा वैसे ही लोगों के दल में शामिल हो गये और मुझे इस बात पर दुःख हुआ। अविनाशदा चाहे बड़े आदमी क्यों हों लेकिन मेरी दृष्टि में यह उसका अधःपतन था।

दो दिन बाद मिस्टर रावेलकर अचानक मेरे दफ्तर में आकर हाजिर हुए। उनके चेहरे पर उदासी तैर रही थी।

"क्या बात है ? आपकी तबीयत खराब है क्या ?" मैंने पूछा।

मिस्टर रावेलकर बोले, "नहीं मुझे कुछ भी नहीं हुआ है ?"

"फिर चेहरे पर उदासी क्यों तैर रही है ? विद्या कहाँ है ?"

मिस्टर रावेलकर बोले, "कश्मीर गयी है।"

"गाड़ी से या हवाई जहाज से ?"

"हवाई जहाज से।"

मैं चुप हो गया। नयी-नयी शादी कर पत्नी को लेकर सैर करने गये हैं तो इसमें कौन-सा नयापन है ? सभी ऐसा करते हैं। अविनाशदा से मैं पहले से ही परिचित हूँ, यह बात कहने का मुझे अवकाश ही कहाँ मिला था ? दूसरी बात है, विद्या को नृत्य में जैसी ख्याति प्राप्त है, अविनाशदा भी अपने विभाग के वैसे ही सफल व्यक्ति हैं। इसलिए इस शादी में मैं बीच में क्यों पड़ता ?

बचपन से ही मैं इस बात पर गौर करता आ रहा हूँ कि हर आदमी की अपनी एक बँधी-बँधायी परिपाटी होती है। उस परिपाटी की राह को छोड़ दूसरी ओर जाने का उसके लिए कोई उपाय नहीं रहता। उस बँधे-बँधाये पथ पर यात्रा करने से किसी को सफलता प्राप्त होती है और किसी को बाधा मिलती है और वह ठिठक कर खड़ा हो जाता है। इससे क्षुब्ध होने से कोई लाभ नहीं, ईर्ष्या करने से कोई नतीजा नहीं निकलता है। कोई किसी को क्या जिन्दा रखता है या मारता है ? मनुष्य के अन्दर ही मृत्यु का बीज छिपा रहता है। जिस दिन जीवन का अंकुर फूटता है उसी दिन से मृत्यु का जन्म शुरू होने लगता है। जन्म लेने के बाद ही आदमी धीरे-धीरे मृत्यु की ओर बढ़ने लगता है। बीच का जो समय है, वही कर्म के चन्द दिन हैं। इस कर्म को जो जिस तरह सम्पादित करता है उसकी विवेचना उसी के अनुसार की जाती है।

लेकिन मैं इतनी बातें क्यों कह रहा हूँ ?

मैं कोई अविनाशदा की जीवनी नहीं लिखने जा रहा हूँ। चाहे अविनाशदा हों या कोई दूसरा, नियमित अमोघ विधान उसे मानना ही होगा। नहीं तो अविनाशदा को किस चीज की कमी थी ? आदमी इस दुनिया में जिन वस्तुओं की कामना करता है, अविनाशदा को वह सब उपलब्ध हो चुका था। उतनी कम उम्र में उतनी बड़ी नौकरी किसे मिलती है ? इसके अलावा उस तरह का स्वास्थ्य, यौवन, रूप और सामाजिक प्रतिष्ठा एक साथ किसी को भी नहीं मिलती। मैंने देखा है, अविनाशदा ऑफिस के अहाते में जैसे ही कदम रखते चेम्बर तक जाते-जाते उन्हें इतनी सलामी मिलती कि वे तंग-तंग हो जाते। यह भी तो एक तरह की सफलता ही है। मेरे दफ्तर में तो मुझे कोई सलाम नहीं करता। लेकिन अविनाशदा की फिर इतनी वेधक परिणत क्यों हुई ?

उसी परिणत की बातें अब बता रहा हूँ।

बीच-बीच में मिस्टर रावेलकर से मेरी मुलाकात हो जाया करती थी। लड़की को नृत्योत्सव के लिए उन्हें हमारे और दूसरे-दूसरे अखबारों के दफ्तर में अक्सर धरना देना पड़ता था। उस लाइन के हर आदमी को यही काम करना पड़ता है।

लेकिन विद्या की शादी हो जाने के बाद से मिस्टर रावेलकर पहले की तरह उतना आते-जाते नहीं थे। मैंने सोचा, हो सकता है अविनाशदा अब नहीं चाहते कि विद्या पहले की तरह पब्लिक-स्टेज पर उतरे। यह भी नहीं चाहते होंगे कि लोग उनकी स्त्री की ओर लोलुप दृष्टि से निहारे। यह स्वाभाविक भी है। पति-पत्नी में यदि गहरा प्रेम हो तो ऐसा चाहना कोई अन्याय नहीं। इसके अलावा एक दिन अविनाशदा के संतान होगी, घर-गृहस्थी होगी। उस स्थिति के बाद विद्या की देह जब ज्यादा वजनी हो जायेगी तो उसके लिए स्टेज पर नाचना असंभव हो जायेगा। लेखकों से नृत्य के कलाकारों और खेलाड़ियों का यहीं अन्तर है। पैंतालीस वर्ष की उम्र के बाद कोई फुटबाल या क्रिकेट खेलता हो अथवा नृत्य कर विख्यात होता हो, ऐसा देखने में नहीं आता। और लेखक? लेखक-जीवन की शुरुआत ही पैंतालीस बरसों के बाद होती है। लेखक की उम्र जितनी ही बढ़ती जाती है, उसकी प्रज्ञा की उतनी ही वृद्धि होती जाती है।

अविनाशदा न तो खिलाड़ी हैं और न ही नर्त्तक, बल्कि अपने क्षेत्र में नामी आदमी हैं। उन्हें पैसे की जरूरत नहीं है कि पत्नी को नचाकर पैसा कमायें। उस दिन सड़क पर मिस्टर रावेलकर से मुलाकात हो गयी।

मुझ पर नजर पड़ते ही मिस्टर रावेलकर गाड़ी से उतर कर मेरे पास आये। पहले की तरह ही उनका चेहरा उदास जैसा था। पहले से कुछ दुबले भी हो गये हैं। मैंने पूछा, "कहाँ जा रहे हैं?"

"डाक्टर के पास? आप भी चलिये?"

"नहीं", मैंने कहा, "कौन बीमार है? आप की तबीयत खराब है?"

मिस्टर रावेलकर बोलें, "नहीं मित्र, मेरे जमाई की तबीयत खराब है।"

"अविनाशदा की?" मैं चौंक उठा। अविनाशदा को कौन-सी बीमारी हुई?

मिस्टर रावेलकर का चेहरा और भी करुण हो उठा। वोले, "सच-मुच वहुत ही खराव है।"

"वे लोग कश्मीर से कव वापस आये ?"

"फरवरी में ही लौट आये हैं। वहाँ जाने पर कोई गड़वड़ी नहीं हुई। दोनों आराम से घूमते-फिरते रहे। दोनों का 'हेल्थ' भी अच्छा हो गया था। विद्या के दोनों गाल लाल हो गये थे। जमाई ने कहा था एक वार फिर नृत्य का आयोजन करेगा। मगर जमाई के वीमार हो जाने के कारण ही कठिनाई पैदा हो गयी।"

मैंने पूछा, "किसकी देख-रेख में हैं ?"

मिस्टर रावेलकर वोले, "डॉक्टर गौड़ !"

"डॉक्टर गौड़ आँख के डॉक्टर हैं।"

मिस्टर रावेलकर वोले, "हाँ, पहले दिल्ली के अस्पताल में थे। वहीं मुझसे जान-पहचान हुई थी। इतना वड़ा आई-सरजन इण्डिया में कोई दूसरा नहीं है। जापान से भी उनके पास मरीज आते थे। अव वे वंवई के अस्पताल में नियुक्त कर लिये गये हैं।"

मैंने कहा, "वहुत दिन पहले अविनाशदा को एक वार आँख की वीमारी हुई थी। उन दिनों वे वाग-वाजार के एक मेस में रहते थे। यह वहुत दिन पहले की वात है।"

"अच्छा, तो फिर कैसे अच्छे हुए ?"

मैंने कहा, "यह वात मुझे मालूम नहीं। दिल्ली में अविनाशदा के भैया रहते थे। वे उन्हें अपने साथ दिल्ली लेकर चले गये थे। उसके वाद मुझसे कोई सम्पर्क नहीं रहा। इतने दिनों के वाद अचानक एक दिन रास्ते में मुलाकात हो गयी। तव पता चला कि अविनाशदा वंवई में हैं।"

मिस्टर रावेलकर वोले, "हो सकता है इतने दिनों के वाद वही वीमारी रिलैप्स कर रही हो।"

"वहुत ही दर्द रहता है ?"

मिस्टर रावेलकर वोले, "वहुत नहीं। लेकिन कमरे को अँधेरा रखने से ही उसको अच्छा लगता है। विद्या के कारण परेशानी में पड़ गया हूँ।"

"सो कैसे ?"

मिस्टर रावेलकर वोले, "[illegible]

चाहती। उसके सामने जाने पर ही उसे डर लगने लगता है। मेरा मन बहुत ही चंचल रहता है, मिस्टर मित्र। मेरी मिसेज कई दिनों से खाट पकड़े हुई है। घर पर रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। विद्या की शादी कर मैं कितनी मुसीबत में फ़ँस गया! अभी डॉक्टर राव के पास जा रहा हूँ। देखें, वे क्या कहते हैं?"

"डॉक्टर राव ने अविनाशदा की परीक्षा की है?" मैंने पूछा।

"नहीं। इतने दिनों तक उसे सीरियस नहीं समझ रहा था।" मिस्टर रावेलकर बोले।

"अविनाशदा दफ्तर नहीं जा रहे हैं?"

मिस्टर रावेलकर बोले, "नहीं।"

तब रावेलकर के पास उतना वक्त नहीं था कि खड़े रहें। मैंने भी उन्हें नहीं रोका। मेरा मन बहुत ही उदास हो गया।

उस दिन ऑफिस से कुछ पहले निकला, मगर घर नहीं गया। सीधे मिस्टर रावेलकर के घर पर चला गया। अन्दर जाकर मिस्टर रावेलकर को पुकारा। नौकर ने बताया, वे घर में नहीं हैं, सेन साहब के घर पर गये हैं।" उसके बाद मैंने विद्या को पुकारा।

विद्या ठीक से पहचान में नहीं आयी। उसका चेहरा कैसा हो गया?

मैंने कहा, "तुम्हें क्या हो गया है? अविनाशदा कैसे हैं?"

विद्या के चेहरे पर दयनीयता तैर आयी। जैसे वह वहाँ से चली जाये तो राहत मिले। लेकिन मैंने उसे जाने नहीं दिया। मैंने कहा, "तुमसे कुछ बातें करनी हैं, बैठ जाओ।"

विद्या मेरी बात टाल नहीं सकी। मेरे सामने की कुरसी पर बैठ गयी।

मैंने कहा, "तुम्हारे पिता जी ने बताया कि तुम दोनों की शादी के बाद से ही तुम्हारा मन खराब रहने लगा है। बात क्या है? मैं अविनाशदा और तुम्हें दोनों को जानता हूँ। अगर मालूम होता कि ऐसा होगा तो शुरू ही में आपत्ति करता कि यह शादी नहीं होनी चाहिए।"

जरा रुककर फिर कहा, "देखो, तुम्हारे हसबैंड से मैं बहुत दिनों से परिचित हूँ। यह सब बातें मैंने तुम लोगों से नहीं बतायी थी, मगर एक बात की गारन्टी दे सकता हूँ, अविनाशदा का स्वभाव-चरित्र बहुत ही अच्छा है।"

विद्या तब भी खामोश थी। मैंने कहा, "अविनाशदा ने तुम्हारे साथ क्या कोई बुरा बर्ताव किया है?"

विद्या बोली, "नहीं।"

"फिर? तुम लोग जब कश्मीर गये थे तो कोई घटना घटी थी?"

"नहीं।"

"अविनाशदा ड्रिंक करते हैं?"

"नहीं। सो सब ऐब नहीं है। दरअसल उसके पास रहना ही मुझे अच्छा नहीं लगता। उसके पास जाते ही मेरा सर दुखने लगता है। मैं उसके पास नहीं जाऊँगी।"

"आखिर क्यों? उन्होंने कौन-सी गलती की है?" मैंने पूछा।

विद्या बोली, "मुझे यह मालूम नहीं।"

"उनका क्या किसी दूसरी लड़की से कोई रिश्ता है?"

विद्या बोली, "यह बात भी मालूम नहीं। उसके पास जाते ही मेरा सर दुखने लगता है।"

"मगर उन्होंने कौन-सा गुनाह किया है? अगर कोई गुनाह नहीं किया है तो फिर तुम्हें खराब क्यों लगता है? खराब लगने का भी तो कोई कारण होगा। तुम जी खोलकर मुझे सब कुछ बताओ, अगर संभव हुआ तो मैं उस कारण को दूर करने की कोशिश करूँगा। तुम्हें क्या मुझ पर भी विश्वास नहीं होता?"

विद्या जैसे अधीर हो उठी। बोली, "खुद मुझे ही जब कुछ समझ में नहीं आता है तो आपको कैसे बताऊँ?"

मैंने कहा, "बेवजह तुम दोनों की जिन्दगी बर्बाद हो जायेगी, यह भी तो ठीक नहीं है। मैं तुम दोनों का 'वेलविशर' हूँ, तुम जो कुछ कहोगी, वैसी ही कोशिश करूँगा। अगर कहो तो मैं अविनाशदा से भी मिल सकता हूँ।"

विद्या बोली कुछ भी नहीं। मैं उठकर खड़ा हो गया। वहाँ से अविनाशदा के घर पर चला गया। विशाल फ्लैटनुमा इमारत है। अविनाशदा चौमंजिले के ऊपर वाले फ्लैट पर रहते हैं। अविनाशदा से मिलने के लिए जाने पर स्लिप भेजना पड़ता है। स्लिप भेजने के थोड़ी देर बाद ही मेरी बुलाहट आयी। बहुत ही करीने से सजा हुआ कमरा। खिड़कियों के पल्ले पर नये परदे टँगे हैं। शायद शादी के मौके पर ही वह

सब सजाया गया है। लेकिन इस तरह सब कुछ गड़बड़ हो जायेगा, दोनों में से किसी ने क्या ऐसा सोचा था ?

अविनाशदा बिस्तर पर लेटे थे। मुझ पर नजर पड़ते ही बोले, "आओ।" मैं सामने की कुरसी पर बैठ गया। पूछा, "आपको क्या हुआ ?"

अविनाशदा को मैंने बिलकुल निराश जैसा पाया। बोले, "तुम्हीं बताओ कि मुझे क्या हुआ है ? मैंने कौन-सा अन्याय किया है ?"

"मिस्टर रावेलकर से पता चला कि आपको आँख की बीमारी है। पहले की तरह ही हो गया है क्या ?"

अविनाशदा बोले, "पता नहीं, मेरी समझ में ही नहीं आता कि मेरी आँखों में क्या हुआ है। मैं किसी भी तरह का दर्द महसूस नहीं करता हूँ। लेकिन विद्या का कहना है कि मेरी आँखें जलती रहती हैं। आँख उठाकर वह मेरी ओर देख नहीं पाती। मेरी आँखों की ओर ताकते ही उसका माथा चकराने लगता है। कश्मीर गया, वहाँ जाने की तीव्र इच्छा थी। इसके पहले कभी नहीं गया था। लेकिन वहाँ जाने पर लगा, नरक में आ गया हूँ। हालांकि मुझे क्या हुआ है, यह बात खुद मुझे भी मालूम नहीं।"

मैंने पूछा, "डॉक्टर राव आये थे ?"

अविनाशदा बोले, "नहीं, डॉक्टर राव यहाँ नहीं हैं, आँखों के ऑपरेशन के एक केस के सिलसिले में दिल्ली गये हैं।"

"तो फिर अभी आप ऑफिस नहीं जाते होंगे ?"

अविनाशदा बोले, "अभी ऑफिस जाने की बात नहीं सोचता हूँ, भाई। लग रहा है, मेरी पूरी जिन्दगी बर्बाद हो गयी। अब सोचता हूँ, मैंने क्यों शादी की। पहले तो मजे में था।"

मैंने कहा, "बहुत दिन पहले कलकत्ते में आप जब बाग बाजार के मेस में थे तो एक बार आपको आँखों की बीमारी हुई थी।"

अविनाशदा बोले, "उस बार भैया मुझे दिल्ली ले गये थे। वहाँ आँखों का ऑपरेशन किया गया और मैं ठीक हो गया। उसके बाद कोई शिकायत नहीं रही है।"

"मैं विद्या के पास गया था, वहीं से आ रहा हूँ।" मैंने कहा।

एकाएक अविनाशदा में उत्सुकता जग पड़ी। विद्या का नाम लेते ही

चेहरे पर आमूल परिवर्तन आ गया। पूछा, "तुम गये थे? विद्या ने क्या कहा? वह मेरे पास आने में डरती क्यों है?"

मैंने कहा, "आपने जो कुछ कहा, उसने भी वही बातें कहीं। वह भी समझ नहीं पा रही है कि आपने कौन-सा अन्याय किया है। मगर आपके पास आने में उसे अच्छा नहीं लगता। आपकी आँखों की ओर देखने से ही उसे डर लगने लगता है।"

अविनाशदा ने कहा, "आखिर क्यों? विद्या ने मुझसे भी यही बातें कही हैं। कश्मीर में हम लोग जब तक एक ही कमरे में सोते रहे, उसे नींद ही नहीं आयी। रात-भर वह जगी रहती थी। अन्त में एक और कमरे का इन्तजाम किया। विद्या वहीं सोती थी। वहाँ विद्या की नींद में कोई अड़चन नहीं आती थी।'

मैंने कहा, "यह तो बहुत आश्चर्य की बात है। ऐसा क्यों हुआ?" अविनाशदा ने कहा, "यही बात मैंने उससे पूछी थी। मैंने हर तरह से सोचकर देखा है। किसी भी हालत में समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों हुआ। मेरी आँखों में क्या है? विद्या मेरी ओर ताकना बरदाश्त क्यों नहीं कर पाती है?"

मैंने कहा, "आप ऑफिस क्यों नहीं जा रहे हैं?"

अविनाशदा ने कहा, "मैंने तय कर लिया है कि नौकरी छोड़ दूँगा।"

"यह क्या? नौकरी ने कौन-सा दोष किया है?" मैंने कहा। अविनाशदा ने कहा, "जिन्दगी में सुख ही नहीं मिला तो नौकरी करके क्या होगा? पैसे के लिए? पैसा लेकर मैं क्या करूँगा? फिर तो मैं जब बाग बाजार के मेस में था तो उसी समय अच्छी तरह था। मेरे पास पैसा नहीं था, पर मन में शान्ति थी। मैं कविता लिखता था। कविता लिखने में मुझे जो आनन्द मिलता था वह आनन्द और सुख हजारों रुपया पाने पर भी नहीं मिल रहा है।"

मैं क्या कहता, चुप्पी साधे रहा। थोड़ी देर बाद मैंने कहा, "चलूँ।"

अविनाशदा ने कहा, "तुम फिर एक बार विद्या के पास जाओगे? एक बार मेरे पास उसे आने को कहोगे?"

"जाऊँगा।" मैंने कहा।

"हाँ, सिर्फ एक बार चली आये। मैं उससे पूछूँगा कि मुझे देखने

पर उसे डर क्यों लगता है ? मेरे पास आने पर वह भाग क्यों जाती है ? मेरा क्या दोष है ? विद्या चाहे मेरे पास रहे चाहे न रहे, उससे मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। लेकिन अपनी इतनी बड़ी यह पराजय मुझसे बरदाश्त नहीं हो रही है। जानते हो, इससे मेरे पौरुष को चोट लगती है। मर्दों के लिए इससे बढ़कर कोई अपमान नहीं हो सकता। तुमने शादी नहीं की है। शादी की होती तो बात तुम्हारी समझ में आती।"

मैं सिर झुकाकर अविनाशदा की सारी बातें सुन रहा था। लेकिन अविनाशदा की सारी बातों का मतलब मेरी समझ में आ गया हो, ऐसी बात भी नहीं। यह जरूर समझ रहा था कि उन दोनों पति-पत्नी के मामले में पड़ना मेरे लिए उचित नहीं है। लेकिन बिना पड़े उपाय ही क्या है ? अविनाशदा मेरे जितने प्रियपात्र हैं, विद्या भी उतनी ही प्रिय-पात्र है। विद्या की ख्याति के पीछे मेरी चेष्टाओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उसने खासा-अच्छा नाम कमाया था। और नाम ही नहीं, पैसा भी कमा रही थी। क्यों अविनाशदा टिकट कटाकर उसका नृत्य देखने गये और क्यों मिस्टर रावेलकर उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा, कौन जाने !

उस दिन मिस्टर रावेलकर से फिर एकाएक भेंट हो गयी।

बहुत दिनों से उन लोगों के बारे में सोचने का वक्त नहीं मिला था। क्योंकि मैं भी तो नौकरी ही करता हूँ।

मिस्टर रावेलकर बोले, "फिर अस्पताल गया था।"

चेहरे पर पहले की जैसी ही उदासी थी। इन कई महीनों के दर-मियान मिस्टर रावेलकर जैसे बहुत ही दुर्बल हो गये हैं। पूरे जिस्म पर थकावट की छाप है। गाड़ी पर बैठे रहने के बावजूद हाँफ रहे हैं।

"डॉक्टर राव से मुलाकात हुई ?" मैंने पूछा।

मिस्टर रावेलकर बोले, "नहीं, अब तक दिल्ली में ही रुके हुए हैं।"

"विद्या कैसी है ?"

"उसी तरह। न खाती है, न पीती है, बस रोती रहती है, शादी कर लड़की की कितनी बड़ी बर्बादी हो गयी। बहुत ही अच्छी तरह थी,

कोई बीमारी वगैरह नहीं थी। आपने तो देखा ही है, पहले वह कितनी प्रसन्न रहती थी!"

मिस्टर रावेलकर अब रुके नहीं। उन्हें काम था। मैं भी उनसे कौन सी बातें करता!

जीवन की गति बहुत ही विचित्र है। आदमी के जीवन में कितनी तरह की समस्याएँ हैं, सोचने पर अवाक् हो जाना पड़ता है। सभी आदमी अपनी-अपनी जीविका के उपार्जन में ही बेहाल हैं। आदमी की प्रमुख समस्या यही है कि किस तरह और दो पैसा कमाये। लेकिन मिस्टर रावेलकर अविनाशदा के साथ ऐसी समस्या नहीं है। अविनाशदा बहुत ही अच्छी नौकरी पाकर निश्चिन्तता के शिखर पर विराजमान हैं। लेकिन आज उसी निश्चिन्तता को ठोकर मारकर दूर हटा देने को तैयार हैं। और विद्या? विद्या भी ख्याति के शिखर पर पहुँच चुकी है। और सिर्फ ख्याति ही क्यों, उसके साथ-साथ अप्रत्याशित रूप में अर्थ की भी प्राप्ति हुई है। लेकिन वह तो व्यतीत की बात है। बहुत दिन पहले की घटना। उसके बाद एक दिन उसकी शादी हुई। फिर यह मुसीबत क्यों आयी?

विद्या रावेलकर उस दिन से अपने मकान की चहारदीवारी के अन्दर ही रहने लगी। जो लड़की सवेरे से अपने साज-सिंगार में ही व्यस्त रहती थी, आज उसे देखकर मिस्टर रावेलकर अपनी लड़की के रूप में पहचान ही नहीं पाते हैं।

मिस्टर रावेलकर कहते हैं, "चलो बिटिया, कहीं से घूम-फिर आयें।"

विद्या कहती है, "नहीं।"

मिसेज रावेलकर कहती हैं, "बाहर जाने से तेरी तबीयत ठीक हो जायेगी, बेटी। चल न, कुछ दिनों के लिए कहीं से घूम-फिर आयें। शिमला चलेगी? नैनीताल?"

विद्या कहती है, "मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता, माँ। तुम लोग मेरे सामने से चली जाओ।"

इधर मिस्टर रावेलकर हर रोज पता लगाते रहते हैं कि डॉक्टर राव लौटकर आये हैं या नहीं। डॉक्टर राव का परिवार दिल्ली में है। अपने स्थान पर जिसे वे बंबई में बिठा गये हैं, रावेलकर का मन नहीं चाहता कि उससे दिखायें। दिन भर वे छटपटाते हुए चारों तरफ

चक्कर काटते रहते हैं। कभी-कभी अविनाश के पास भी जाते हैं। पूछते हैं, "कैसे हो सेन ?"

अविनाशदा कहते हैं, "मैं तो ठीक ही हूँ।" मुझे कुछ भी नहीं हुआ है।"

"फिर तुम ऑफिस क्यों नहीं जाते ?"

अविनाशदा कहते हैं, "मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

अन्त में मिस्टर रावेलकर कहते हैं, "मगर ऐसा क्यों हुआ ? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। दोष किसका है ?"

अविनाशदा इस सवाल का क्या जवाब दें ? स्वयं से भी वे यही सवाल करते हैं। क्यों विद्या उनकी ओर देखना नहीं चाहती ? क्यों विद्या उनकी उपस्थिति बरदाश्त नहीं कर पाती ? अविनाशदा ने क्या किया है ?

पूरी धरती अपने कक्ष के पथ की परिक्रमा कर रही है लेकिन बंबई जैसे बड़े शहर में उस समय दो व्यक्ति अपनी व्यर्थता का भार लिए नीरव स्थाणु की तरह स्तब्ध पड़े हुए हैं। वहाँ कोई उम्मीद नहीं है, कोई भविष्य नहीं, कोई बोध भी नहीं। हम लोग अपने-अपने कर्म-स्थल में जा रहे हैं, घूम-फिर रहे हैं और रोजमर्रा के रुटिन में बँधे काम-धाम करते जा रहे हैं मगर उन दोनों को इस बात की चिन्ता नहीं कि किसी को भोजन नसीब हो रहा है या नहीं, कोई बेकार है या नहीं।

अगर वे दोनों परिचित न होते तो मेरे लिए भी परेशानी की कोई बात नहीं थी। इसलिए काम से जब-जब छुटकारा मिलता, मैं उन लोगों के यहाँ आता-जाता था।

लेकिन एक दिन परिस्थिति बहुत ही जटिल हो गयी।

उस दिन बहुत ही दबाव डालकर मैं विद्या को अविनाशदा के पास ले गया।

विद्या शुरू में जाने के लिए राजी नहीं हो रही थी। मगर मिसेज रावेलकर ने कहा, "उसने तो कोई अन्याय नहीं किया है, फिर तू जाने में आना-कानी क्यों कर रही है ? तुझे जिस तरह की तकलीफ हो रही है, अविनाश को भी तो वैसी ही तकलीफ हो रही है। वह भी क्या कोई सुख में है ?"

मैंने भी यही बातें कहीं। मेरी बात सुनकर विद्या कुछ भी नहीं बोली, चुपचाप सुनती रही। लगा, वह राजी हो गयी है। उसके बाद

और दो-चार बातें कहकर मैंने विद्या को गाड़ी पर बिठाया। फिर सीधे अविनाशदा के फ्लैट में ले गया।

अविनाशदा अपने कमरे में पहले की तरह ही लेटे हुए थे।

मेरे साथ विद्या को अन्दर आते देखकर आश्चर्य चकित हो गये। उन्होंने तत्क्षण हथेली से अपनी आँखें ढँक लीं।

मैंने विद्या से कहा, "तुम यहीं रहो, मैं बाहर बैठता हूँ।"

यह कहकर मैं शयन-कक्ष के बाहर इन्तजार करने लगा। सोचा, दोनों जने कुछ देर तक एक साथ रहेंगे तो आपस में समझौता हो जायेगा।

लेकिन पाँच मिनट न बीता होगा कि विद्या हड़बड़ाती हुई कमरे से बाहर निकल आयी। बोली, "अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मुझे घर ले चलिए, मिस्टर मित्र, घर ले चलिए।"

मैं अचकचा उठा। कहा, "क्या हुआ? अविनाशदा ने तुमसे बातें नहीं की?"

विद्या जल्दी-जल्दी जीने की तरफ बढ़ गयी। मैं भी उसके साथ नीचे उतरा और गाड़ी में बैठ गया। विद्या के चेहरे की मुद्रा देखकर मुझे डर लगने लगा। उस समय गाड़ी सरसराती हुई घर की ओर जा रही थी।

मैंने कहा, "तुम बातचीत क्यों नहीं कर रही हो? अविनाशदा ने क्या कहा?"

विद्या कुछ भी नहीं बोली। तब वह छलछलाती आँखों से सामने की ओर अपलक ताक रही थी। मैंने उससे अब और कोई बात नहीं पूछी।

अन्त में एक दिन दिल्ली से डॉक्टर राव आये।

कोई बीमारी हो तो डॉक्टर को दिखाया जा सकता है। खाँसी, बात या बदहजमी की शिकायत रहे तो कुछ इलाज हो सकता है। लेकिन भला यह क्या कोई मर्ज है कि डॉक्टर को दिखाते ही अच्छा हो जायेगा?

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "क्या बात है जो विद्या सेन की आँखों की ओर देख नहीं पाती? डॉक्टर राव कुछ इलाज कर सकें इसी उम्मीद में उनके पास जा रहा हूँ। आपने बताया था कि सेन एक बार आँखों का मरीज रह चुका है।"

उस दिन मैं अविनाशदा के पास गया। कहा, डॉक्टर राव आ गये हैं। आप चलकर आँखें दिखा लीजिए।"

अविनाशदा बोले, "डॉक्टर राव? उन्होंने ही तो उस बार मेरी आँखों का ऑपरेशन किया था। मैं एक तरह से अंधा ही होने जा रहा था, डॉक्टर राव ने ही उस बार मुझे जिन्दा रखा था।"

मैंने कहा, "मिस्टर रावेलकर की इच्छा है कि डॉक्टर राव एक बार आपकी आँखों की परीक्षा करें।"

अविनाशदा बोले, "मुझे कोई आपत्ति नहीं। कब चलना है?"

मैंने कहा, "मिस्टर रावेलकर से पूछकर देखता हूँ कि वे कब चलेंगे।"

उसी दिन सारा इन्तजाम हो गया। मिस्टर रावेलकर ने फोन कर सारा इन्तजाम कर लिया।

उसके बाद कब वे लोग डॉक्टर से मिलने गये और सचमुच मिलने गये या नहीं, इसका मुझे पता नहीं चला। मुझे काम था। अखबार का सप्लीमेन्ट निकालने के सिलसिले में दो-तीन दिन व्यस्त रहना पड़ा।

उस दिन काम करते-करते दफ्तर में बहुत देर हो गयी। आखिरी फर्मा निकालने में रात के करीब साढ़े दस बज गये।

अचानक न्यूज एडिटर शर्मा ने आकर बताया, "खबर मालूम है, मिस्टर मित्र? एक बहुत ही दुखद समाचार है। कल हम लोगों के सिटी-एडीसन में यह खबर छपेगी।"

"क्या खबर है?" मैंने पूछा।

शर्मा बोले, "विद्या रावेलकर को पहचानते हैं न?"

"अच्छी तरह। क्या हुआ?"

शर्मा ने कहा, "उसने आत्महत्या कर ली।"

मैं आकाश से जैसे नीचे गिर पड़ा। कहा, "यह क्या? क्यों? क्या हुआ था?"

शर्मा को इस बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। पता चला, खबर मिलते ही हम लोगों का स्टाफ-रिपोर्टर उन लोगों के घर पर गया था। घटना दोपहर में घटी थी।

मैं अब वहाँ खड़ा नहीं रहा। वहीं से टैक्सी पकड़कर सीधे मिस्टर रावेलकर के अँधेरी के मकान की ओर चला गया।

पूरे मकान में तब शोक छाया हुआ था। खबर मिलते ही बहुतेरे आदमी चले आये थे। वे लोग रात दस बजते ही लौटकर चले गये थे। कुछेक आदमी तब भी मौजूद थे। मिसेज रावेलकर कमरे में मुर्दे जैसी पड़ी थीं। उन्हें घेरकर कुछ पड़ोसिन महिलाएँ खड़ी थीं और उन्हें सांत्वना दे रही थीं। बाहर के ड्राइंग रूम में दो-चार आदमी बैठे हुए थे। मैं उन्हीं लोगों के बीच चला गया। क्या कहूँ, क्या पूछूँ, दिमाग में आया ही नहीं। मैं भी मिस्टर रावेलकर के मित्रों के बीच जाकर बैठ गया।

उसके बाद एक-एक कर सभी चले गये। इस बीच कई बार फोन आया। मिस्टर रावेलकर एक-एक आदमी की बात का उत्तर देते हैं और बैठ जाते हैं। उसके बाद फिर टेलीफोन आता है और वे रिसीवर उठाते हैं।

उसके बाद अचानक उनकी निगाह मुझ पर पड़ती है। उनके चेहरे पर रुलाई का भाव आ जाता है। मिस्टर रावेलकर ने कहा, "सब खत्म हो गया, मिस्टर मित्र—सब कुछ।"

मैं क्या कहूँ ? ऐसी हालत में मैं कह ही क्या सकता हूँ ? पूछा, "ऐसा क्यों हुआ ?"

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "आपको तो शुरू से ही सब कुछ मालूम है। अगर पता होता कि इस तरह होगा तो फिर डॉक्टर राव के पास जाता ही क्यों ? डॉक्टर राव के पास जाना ही मेरे लिए काल साबित हुआ....।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "यही बात आपको बतायी नहीं है। सारा वाकया अचानक ऐसे हो गया कि आपके पास जाने का वक्त ही नहीं मिला।"

मैंने कहा, "मैं भी अखबार के सप्लीमेन्ट की वजह से बहुत व्यस्त रहा। इन कई दिनों के दरमियान न तो आपके पास आ सका और न ही अविनाशदा के पास जा सका। हाँ, तो आप डॉक्टर राव के पास गये थे ?"

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "हाँ।"

"उन्होंने अविनाशदा की आँखों की जाँच की ? आप लोग कौन-कौन गये थे।"

"सेन और मैं। साथ में विद्या भी थी। कह-सुनकर विद्या को भी साथ ले लिया था। वह जाना नहीं चाहती थी। मैं ही समझा-बुझाकर उसे ले गया।"

मिस्टर रावेलकर ने कहा, "डॉक्टर राव सेन को देखते ही चौंक पड़े। पूछा : ये ही आपके जमाई हैं ?"

मैंने कहा, "हाँ।" उसके बाद उन्होंने नियमानुसार आँखों की जाँच की। बहुत देर तक जाँच-पड़ताल करने के बाद एक दवा का नाम लिख दिया। उसके बाद सेन चला गया। विद्या और मैं ठहर गये।"

उस समय मेरे मन की क्या हालत हो सकती है, सोचकर देखिए। इसी डॉक्टर राव के लिए इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रहा था। उसके बाद मन नहीं माना तो पूछ बैठा, "आप मेरे जमाई को देखकर चौंक क्यों उठे थे, डॉक्टर राव ?"

डॉक्टर राव साबुन से हाथ धोते-धोते बोले, "सेन आपका जमाई है, इस बात का मुझे पता नहीं था।

"आप क्या सेन को पहले से ही पहचानते हैं ?"

डॉक्टर राव ने कहा, "मैं बहुत पहले सेन की आँखों का ऑपरेशन कर चुका हूँ।"

डॉक्टर राव की बात सुनकर मैं विस्मित हो गया। "कैसा ऑपरेशन ?" मैंने पूछा।

डॉक्टर राव ने कहा, "आपका पहला जमाई मोटर एक्सिडेण्ड में मौत का शिकार हुआ था, यह बात मुझे याद है। मलहोत्रा की ही आँखें मैंने सेन की आँखों में बिठा दी थीं। सेन ने ही विद्या से शादी की है, इस बात का मुझे पता नहीं था।"

"विद्या मेरे पास खड़ी थी। डॉक्टर राव की बात सुनकर वह अपने आपको संयत नहीं रख सकी, मेरे बदन पर ही लुढ़क कर गिर पड़ी। मैं बगल में न होता तो बेहोश होकर गिर पड़ती।"

"उसके बाद ?"

रावेलकर ने कहा, "उस दिन के बाद से विद्या ने बोलना-चालना, खाना-पीना और सोना बन्द कर दिया। अन्त में यह कांड कर बैठी। डॉक्टर ने नींद की दवा दी थी। उस शीशी से कई टिकियाँ खा लीं....."

इसके बाद फोन आ जाने के कारण मिस्टर रावेलकर उठकर खड़े हो गये। मैं भी चला आया।

इसके बाद फिर मिस्टर रावेलकर से मुलाकात नहीं हुई। अविनाशदा से भी मुलाकात नहीं हुई। मुलाकात होने की कोई वजह भी नहीं थी। क्योंकि तब कलकत्ते के एक नामी अखबार में नौकरी पाकर एकाएक मैं कलकत्ता चला आया था। पता नहीं, अविनाशदा नौकरी कर रहे हैं या नहीं, या उन्होंने नयी शादी की है या नहीं। चिट्ठी-पत्र से भी कोई संपर्क नहीं रह गया है।

लेकिन वह बात बार-बार मुझे याद आ रही है। सोचता हूँ, आदमी की आँखों से मन का भी क्या कोई रिश्ता है? इतना गहरा रिश्ता? जीवन-भर सोचते रहने के बावजूद इसका उत्तर नहीं मिला है।●

जीवन को साहित्य से जोड़ने वाली कड़ी कहाँ है, उसे तलाशने की बहुत बार कोशिश की है। किसी-किसी का कहना है, जीवन का जहाँ अन्त है वहीं से साहित्य का आरंभ होता है। लेकिन जीवन का ही कहाँ अन्त है? क्योंकि अन्त के बाद भी तो अनन्त है। साहित्य में उस अनन्त का संकेत हो, तभी सफल सृजन होता है। मैं जब-जब जीवन को देखकर आकर्षित हुआ हूँ, तभी यह जानने की चेष्टा की है कि इसका अन्त कहाँ है। जिसका मैंने आरंभ देखा है उसका अन्त भी देखने के लिए मुझसे कौतूहल जगा है। लेकिन किसी दिन वे सब लोग कहाँ खो गये, इसका पता नहीं चला। अन्त होने के पहले अनन्त के सागर में डुबकी लगाकर वे आँखों की ओट हो गये हैं। एक दिन अविनाशदा का प्रारंभ देखा था, फिर अन्त भी देखा। लेकिन उसके बाद? विशाल जन-समुद्र की भीड़ के स्रोत में मैं कहाँ बहकर चला गया और अविनाशदा ही कहाँ अन्तर्धान हो गये, उसकी खबर रख नहीं सका। हम दोनों अनन्त में पहुँचकर अन्त और अनन्त के व्यतीत हो गये।

ऐसा ही एक बार यहीं इस कलकत्ते में हुआ था।

कुछ दिन पहले का ही वाकया है। तब कलकत्ते में बदस्तूर हंगामा हुआ था। ठीक उसी समय सत्यसुन्दर स्थानान्तरित होकर कलकत्ता आया—सत्यसुन्दर सरकार जो इस कहानी का मुख्य पात्र है, और उसकी पत्नी।

ऐसा होगा, इसके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता। सत्यसुन्दर ही नहीं, किसी ने भी नहीं सोचा होगा।

इस कलकत्ते में आने के लिए उसने कोई कम पैरवी नहीं की थी। कलकत्ता का अर्थ ही है जीवन। कलकत्ते को नकार कर कहीं जिन्दा रहा जा सकता है?

लोग-बाग कहते, "मिस्टर सरकार, आपकी किस्मत अच्छी है। आप कितना पुण्य करके आये थे....।"

जब सत्यसुन्दर पार्वतीपुर में रहता था तो यही सब बात सोचता था। सचमुच बहुतों ने कलकत्ते में स्थानान्तरित होने के लिए आवेदन-पत्र भेजा था, परन्तु उनमें से सत्यसुन्दर का ही प्रमोशन क्यों हुआ ?

कलकत्ता आने के कुछ दिन बाद ही पूरे मुहल्ले में खलबली मच गयी। एक दिन सी० आर० पी० के जवानों ने मुहल्ले की घेराबन्दी कर तहकीकात करना शुरू कर दिया।

सत्यसुन्दर उस समय कुल मिलाकर दफ्तर से घर लौट रहा था। बस से उतरकर गली के अन्दर जा ही रहा था कि यह कांड हो गया। राइफल लिए सी० आर० पी० के जवान रास्ता रोक कर खड़े हो गये।

सत्यसुन्दर पर नजर पड़ते ही राइफल का निशाना साध कर आगे बढ़ आये और कहा, "हॉल्ट।"

उसने क्षीण स्वर में कहा, "मेरा मकान इसी गली में है।"

पुलिस के जवान मुँह बिचकाकर राइफल लिए सत्यसुन्दर की ओर दौड़ते हुए आये।

सत्यसुन्दर डर के मारे पाँच हाथ पीछे हट गया। उसके बाद वहाँ खड़ा होकर चुपचाप देखने लगा।

सत्यसुन्दर ही नहीं बल्कि मुहल्ले के एकाध सौ आदमी वहीं रोक लिये गये। कोई अपने घर के अन्दर नहीं जा सका।

सत्यसुन्दर इस मुहल्ले में नया-नया आया है। किसी से अच्छी तरह जान-पहचान भी नहीं है। दिन-भर ऑफिस में बेहद खटना पड़ा है। और-और लोग मजे से चक्कर काटते रहे हैं। दिन-भर यूनियन संगठन करते रहते हैं और इन्कलाब-जिन्दाबाद का नारा लगाते रहते हैं। महीना पूरा होने पर तनख्वाह लेकर चले जाते हैं। चाहे काम करें या न करें लेकिन यूनियन का काम करने से ही उन्हें तनख्वाह मिल जाती है।

लेकिन सत्यसुन्दर ऐसा करे तो उसका चल नहीं सकता। वह अपनी जिम्मेदारी समझता है। जब-तब फाइल लेकर उसे साहब से मिलना ही पड़ता है। सत्यसुन्दर पुराना स्टाफ है। तनख्वाह भी बहुतों से अधिक मिलती है। इसलिए काम से जी चुराने में उसका विवेक साथ नहीं देता।

वह कहता है, "मेरी बात छोड़ दो, भाई। नौकरी है इसलिए पेट पल रहा है। [illegible]

वंश का लड़का है, नौकरी उसके लिए लक्ष्मी के समान है। इसी नौकरी के भरोसे पर उसका सब कुछ निर्भर करता है। सत्यसुन्दर जो ढाई सौ रुपये मकान-किराया दे रहा है, यह किसके बूते पर दे रहा है? नौकरी नहीं रहती तो सब कुछ उसके लिए मुश्किल हो जाता। सवेरे उसके घर में तीन बोतल दूध आता है वह भी तो नौकरी के ही कारण।

सत्यसुन्दर कहता, "भाई, आप लोग मुझे अपनी लिस्ट से निकाल दें। मैं अपना काम देखूँ या यूनियन सँभालूँ?"

अचानक बगल के घर से एक आवाज आयी, "अरे सरकार साहब! क्या बात है? आपको भी अटक जाना पड़ा है?"

सत्यसुन्दर ने उस आदमी के चेहरे की ओर गौर से देखा। गौरांग पद घोष है—मुहल्ले का आदमी।

"आप?"

गौरांग बाबू नौकरी से रिटायर हो गये हैं। बोले, "कितनी बड़ी मुसीबत है, बताइए तो सही। मैं बाजार की ओर बिस्कुट खरीदने गया था, लौटने के वक्त हठात् रुक जाना पड़ा है। चाय पीना बड़ा ही महँगा पड़ा....।"

उसके बाद बोले, "वक्त ऐसा आ गया है कि बंगाल में अब रहना [मु]श्किल हो गया है, साहब। यह तो एकबारगी घटिया किस्म के लोगों [की] जगह हो गयी। अपने घर के अन्दर नहीं जा सकता हूँ, बताइए तो [य]ह कितनी बड़ी विपत्ति है!"

सत्यसुन्दर बोला, "ऐसा तो अक्सर होता है।"

गौरांग बाबू बोले, "अभी क्या हुआ है, जनाब! इसके बाद और [हो]गा। तब वे लोग घर घुसकर बहू-बेटियों को पकड़कर ले जायेंगे।"

सत्यसुन्दर ने पूछा, "यह सब क्यों हो रहा है? पहले ऐसी बात [न]हीं थी। पहले जब हम लोग कलकत्ते में रहते थे तो पुलिस से डरकर [र]हते थे।"

"तब की बात छोड़िए, साहब, तब आदमी की संख्या कम थी, आदमी के मन में देव और द्विज के प्रति भक्ति थी। उन दिनों बूढ़े-बुजुर्ग के सामने किसी को सिगरेट पीते देखा था?"

देखते-देखते कुछ और आदमी जमा हो गये। सबको मकान के पास आने के बाद रुक जाना पड़ा है। सभी काम-काजी आदमी हैं। किसी के घर में मरीज है, उस दवा देते [illegible]

यूनियन का सरदार हरीश मंडल चालाक-चतुर आदमी है। वह कहता है, "नौकरी जायेगी क्यों ? ऐसे ही नौकरी चली जाती है ?"

इसी भरोसे पर रहे तो सत्यसुन्दर का चल नहीं सकता। मध्यवित्त खटकर आ रहा है। सभी मँझले तबके के आदमी हैं। कलकत्ते के परले सिरे पर बसा पुराना मुहल्ला है। कहा जा सकता है कि इस मुहल्ले के सभी आदमी नौकरीजीवी हैं। कुछेक आदमियों की केनिंग स्ट्रीट में दुकानें हैं। किराने, मनिहारी आदि तरह-तरह की दुकानें। मोटे तौर पर सभी मँझले तबके के आदमी हैं। जिस मझले तबके के समाज के आदमी पर निर्भर रहकर पूरा कलकत्ता शहर जिन्दा है, वे लोग उसी के टूटे हुए हिस्से हैं।

कलकत्ते में स्थानान्तरित होने के पहले सत्यसुन्दर ने इस मुहल्ले में आकर मकान किराये पर ले लिया था। यहाँ जो लोग वास करते हैं वे सत्यसुन्दर के वर्ग के ही आदमी हैं। किराया चाहे जो हो, लेकिन मकान ठीक है। मकान-मालिक भी अच्छा आदमी है। किरायेदार के लिए मकान का अच्छा हिस्सा छोड़कर खुद मकान के पीछे के खराब हिस्से में रहता है।

लेकिन ऐसा कांड घटित हो जायेगा, यह कौन जानता था !

मिनती बीच-बीच में कहती थी, "जानते हो, यह मुहल्ला अच्छा नहीं है ?"

सत्यसुन्दर पूछता, "क्यों ? अच्छा क्यों नहीं है ? क्या हुआ ? तुमसे किसी ने कुछ कहा है ?"

मिनती कहती, "मुन्ना अक्सर देर से घर पहुँचता है। मुझे डर लगा रहता है।"

सत्यसुन्दर कहता, "तुमने तो पहले इसके बारे में कुछ नहीं बताया। मुझे तो कुछ मालूम नहीं था।"

मिनती कहती, "तुम खुद ही आफिस से देर से लौटते हो। तुम्हें कैसे मालूम होगा ?"

सचमुच, मुन्ना के कारण ही मिनती को चिन्ता लगी रहती थी। उनके वही एकमात्र संतान है। सत्यसुन्दर ने उसे मुहल्ले के स्कूल में ही दाखिल करा दिया था। शुरू में स्कूल अच्छा ही मालूम हुआ था। लेकिन कुछ महीने तक जाने के बाद पता चला कि वहाँ ठीक से पढ़ाई

नहीं होती। लड़का खा-पीकर स्कूल चला जाता है। एकाध घण्टे के बाद ही अचानक घर लौट आता है।

मिनती खा-पीकर आराम कर रही थी कि तभी दरवाजे की कुंडी खटखटाने की आवाज हुई और वह चौंक पड़ी। दरवाजा खोलते ही मुन्ना पर नजर पड़ी।

पूछा, "स्कूल में छुट्टी हो गयी ?"

मुन्ना ने कहा, "हाँ।"

"छुट्टी क्यों हो गयी ?"

मुन्ना ने कहा, "वियतनाम में लड़ाई चल रही है।"

वियतनाम ! मिनती अवाक् हो गयी। बोली, "वियतनाम क्या है ?"

मुन्ना बोला, "वह एक देश का नाम है, तुम्हें यह समझ में नहीं आयेगा।"

लेकिन मिनती हथियार डालने के लिए तैयार नहीं। बोली, "मैं नहीं समझूंगी, इसका मतलब ? कहाँ है वह देश ?"

मुन्ना बोला, "मुझे मालूम नहीं।"

मिनती झुंझला उठी। बोली, "जानते नहीं हो, इसका मानी ? कहीं दूर किसी देश में कुछ हो रहा है तो इससे तुम लोगों की लिखाई-पढ़ाई का क्या वास्ता ? तुम लोगों का स्कूल बन्द क्यों हो गया ?"

मुन्ना बोला, "यह बात तुम मुझसे क्यों पूछ रही हो ? स्कूल जाकर हम लोगों के हेडमास्टर से नहीं पूछ सकती हो ?"

बेटे को झुंझलाते देखकर मिनती और अधिक गुस्से में आ गयी। बोली, "तुम इतना झुंझला क्यों रहे हो ? मैंने तुमसे कुछ कहा है ? कहाँ किस देश में लड़ाई चल रही है और तुम लोगों का स्कूल बन्द हो गया, यह कैसी बात हुई ? तनख्वाह लेने के वक्त कोई आपत्ति नहीं करता। फीस तो ठीक समय पर ही देनी पड़ती है। उसमें अगर देर हो जाये तो फाइन देना पड़ता है।"

मुन्ना गुस्से में आ। यों वह अधिक बकवास नहीं करता, अपनी लिखाई-पढ़ाई में ही व्यस्त रहता है।"

"यह सब मुझसे क्यों कह रही हो ? मैंने क्या स्कूल बंद करने का हुक्म दिया है ?" वह बोला।

मिनती ने कहा, "किसने स्कूल बंद करने का हुक्म दिया है, यही बताओ।"

मुन्ना ने कहा, "लड़कों ने। लड़के ही शोर मचाते हुए क्लास से बाहर निकल आये।"

उस दिन दफ्तर से आने के बाद सब कुछ सुनकर सत्यसुन्दर ने कहा, "तुम उसे इस तरह झिड़कियाँ क्यों सुनाती हो? उसका कौन-सा दोष है? आजकल कलकत्ते में हर जगह यही काण्ड हो रहा है। मैं बल्कि कल ऑफिस जाने के समय स्कूल में हेडमास्टर से मिल लूंगा।"

दूसरे दिन सत्यसुन्दर सचमुच ही स्कूल जाकर हेडमास्टर से मिल आया था।

हेडमास्टर अच्छे आदमी हैं। बूढ़े आदमी। बोले, "देखिये, बात यह है कि हम लोग अब लड़कों को संभाल नहीं पाते हैं। लड़कों का कोई दोष नहीं है, दोष है तो हमीं लोगों का। हम शिक्षकगण आदमी रह ही नहीं गये हैं।"

सत्यसुन्दर उनकी बातें सुनकर अचकचा उठा।

बोला, "आप क्या कह रहे हैं?"

हेडमास्टर ने जो कुछ कहा उससे सत्यसुन्दर को और भी ज्यादा आश्चर्य हुआ।

उन्होंने कहा, "हम शिक्षक होने के योग्य हैं ही नहीं। अगर संभव हो तो आप अपने लड़के को बंगाल से हटा कर कहीं दूसरी जगह ले जायें।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मैं तो कोशिश पैरवी कर बंगाल में आया हूँ। जानते हैं, बहुत दौड़-धूप करने के बाद यहाँ आया।"

हेडमास्टर ने कहा, "आपने बहुत बड़ी गलती की, जनाब। हाँ, बहुत बड़ी गलती। बंगाल अब पहले का बंगाल नहीं रह गया।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "क्यों नहीं है? अचानक क्या हो गया?"

हेडमास्टर ने कहा, "यह सब बात इस कुरसी पर बैठकर नहीं बता सकता। यहाँ ऐसे बहुतेरे मास्टर हैं जो सुन लें तो इन्कलाब-जिन्दाबाद नारा लगाना शुरू कर देंगे।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "तो फिर हम जैसे लोगों का क्या होगा? हम लोगों के लड़के-बच्चे आदमी नहीं हो पायेंगे, मास्टर साहब?"

हेडमास्टर अनुभवी आदमी हैं। बोले, "उतना अधीर मत होइए। जरा बर्दाश्त करते जाइए। एक पीढ़ी अगर बर्बाद हो जाती है तो इसमें हानि ही क्या है? हो सकता है, हमारी अगली पीढ़ी की भलाई हो..."

ये सब बातें वह बहुतों की जबान से सुन चुका है। घर पर बैठकर पति-पत्नी यही सब बात करते थे। मिनती को बहुत ही चिन्ता होती थी। एक ही लड़का है। पार्वतीपुर में घर के पास ही स्कूल था। टिफिन के समय घर पर आकर दूध पी जाता था। कलकत्ता आते ही मुन्ना का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। पहले की तरह शुद्ध दूध पीने को नहीं मिलता है। सवेरे किसी तरह जल्दी-जल्दी दो कौर निगलकर स्कूल जाता और तीसरे पहर जब घर वापस आता तो चेहरा उदास जैसा दीखता। यह सब देखकर मिनती को बहुत ही ममता होती थी।

सत्यसुन्दर बीच-बीच में लड़के को अपने पास बुलाता।

पूछता, "तुम्हारी पढ़ाई कैसे चल रही है? मास्टर साहब अच्छी तरह पढ़ाते हैं न?"

मुन्ना कहता, "हाँ।"

सत्यसुन्दर फिर पूछता, "तुम लोगों का पूरा कोर्स खत्म हो गया है न?"

"नहीं।"

"फिर परीक्षा में क्या होगा?"

"घर पर पढ़ लेना है।"

"असल में घर पर ही जब सब कुछ पढ़ लेना है तो स्कूल की फीस देने की जरूरत ही क्या है?"

सत्यसुन्दर एक बाहरी ओसारे पर बैठकर यही सब बात सोच रहा था। देखते-देखते और भी आदमी रास्ते पर जमा हो गये। गली के अन्दर घुसने की इजाजत किसी को भी नहीं मिल रही है।

एक सज्जन बगल में आकर बैठ गया। बोला, "अब खड़ा नहीं रहा जाता, जनाब, जरा बैठ जाऊँ। इन पट्ठों का काम कब खत्म होगा, पता नहीं।"

सत्यसुन्दर को उस सज्जन का चेहरा पहचाना जैसा लगा।

उसने पूछा, "आप किस रास्ते में रहते हैं?"

सज्जन बोला, "महेश दत्त लेन में। और आप?"

सत्यसुन्दर बोला, "सब्जी बगान में।"

"लगता है, आप इस मुहल्ले में नये-नये आये हैं?"

सत्यसुन्दर बोला, "हाल में नहीं। कुल मिलाकर तीन साल हो गये।"

"इसके पहले आप कहाँ रहते थे ?"

"पार्वतीपुर में। पार्वतीपुर में मैं मजे में था। मगर सोचा, बंगाली रहने के बावजूद हमेशा बंगाल के बाहर ही क्यों रहूँ, इसलिए साहब से कह-सुनकर तबादला करा लिया।"

"आप किस ऑफिस में हैं ?"

जॉन एण्डरसेन कम्पनी। हम लोगों का हेड ऑफिस डलहौजी स्क्वा-यर में है।"

कुछ देर तक इसी तरह की बातचीत होती रही। सत्यसुन्दर ने कलाई घड़ी की ओर देखा। रात के लगभग साढ़े दस बज रहे हैं। सवेरे नौ बजे ऑफिस के लिए निकला था और अभी दस बज रहे हैं। इस बीच घर में क्या हो रहा है, कौन जाने। हो सकता है, उसके घर में भी पुलिस खाना-तलाशी करे। लेकिन उसके घर में मिलेगा ही क्या ! बम वगैरह मिलेगा नहीं। यहाँ तक कि कोई फालतू किताब भी नहीं। मुन्ना उस तरह की किताबें नहीं पढ़ता। कहा जा सकता है, वह किसी से मिलता-जुलता भी नहीं। दिन-रात स्कूल की किताबों में डूबा रहता है। हर कोई उसे अच्छे लड़के के रूप में ही जानता है।

अचानक पुलिस की एक और गाड़ी आ धमकी। थाने के बड़े बाबू हैं। जीप से उतर कर गली के अन्दर जा रहे थे। कुछ आदमी आगे बढ़कर उनके सामने पहुँचे।

बोले, "सर !"

सर के पास तब वक्त नहीं था कि उतने सारे आलतू-फालतू आदमी से बातचीत करें।

बोले, "आप लोग क्या चाहते हैं ?"

सबने कहा, "सर, हम घर नहीं जा पा रहे हैं। हम लोगों का मकान इसी गली के अन्दर है। काम-धाम से निकले थे, यहाँ आकर अटक जाना पड़ा है।"

सर गंभीर स्वर में बोले, "अभी किसी को घुसने नहीं दिया जायेगा, ऑर्डर नहीं है।"

"हम लोग कब तक इस तरह खड़े रहेंगे, सर ? हमें भूख और नींद लग रही है। आप लोग क्या हमें इसी तरह रात-भर रोक कर रखना चाहते हैं ?"

पुलिस के कोतवाल साहब झुँझला उठे, "आप लोगों के हुक्म पर ही मुझे काम करना होगा ?"

"नहीं सर, हम ऐसी बात नहीं कह रहे हैं। लेकिन हमने कौन-सा गुनाह किया है जो हमें इस तरह की सजा मिल रही है ?"

आप लोगों ने गुनाह नहीं किया है ? तो फिर उस दिन पुलिस के वैन पर गोला किसने फेंका था ? मुहल्ले में कितनी हत्याएँ हुई हैं, मालूम है ?"

बात झूठी नहीं है। पुलिस है इसलिए मुहल्ले के लोग जिन्दा बचे हुए हैं।

पुलिस अफसर ने फिर कहा, "आप लोगों की भलाई के लिए ही यह सब किया जा रहा है। औरतें रात में घर से नहीं निकल पाती हैं। सिनेमावालों ने दरवाजे बन्द कर दिये हैं। यह क्या कोई अच्छा काम है ? आप लोग ही बतायें।"

बड़े बाबू के पास उससे कुछ ज्यादा कहने का वक्त नहीं था। वे गाड़ी लेकर अन्दर चले गये।

सभी आदमी आकर फिर ओसारे पर बैठ गये। कुछ लोग सामने के मोड़ के सिरे पर जाकर गपशप करने लगे। कुछ लोगों के हाथ में झोली है। झोले को बगल में रखकर सुस्ताने की कोशिश करने लगे। उसके बाद गली के अन्दर महेशदत्त लेन में क्या घटना घटने लगी, किसी को इसका पता नहीं चला। रात गहराने लगी। अँधेरी रात की ओट में पुलिस के द्वारा शान्ति स्थापित करने का काम बिना किसी विघ्न-बाधा के बहुत देर तक चलता रहा।

सत्यसुन्दर ने कलाई-घड़ी की ओर ध्यान से देखा—रात के लगभग ग्यारह बज चुके हैं।

अन्ततः वैसा समय आया जब घेराबन्दी उठा ली गयी। सिपाही, पल्टन, सी० आर० पी० और पुलिस वाले गाड़ी लेकर चले गये।

तत्क्षण सभी ने राहत की साँस ली। अब देर नहीं होनी चाहिए। सभी अपने-अपने मकान की ओर भागे। रात और भी गहरा गयी है। लेकिन घर-घर में तब बत्तियाँ जल रही थीं। किसी ने भी खाना नहीं खाया है। सभी जाग रहे हैं। सभी ने फिर से दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दीं। अब तक गली के अन्दर क्या होता रहा, किसी को इसका पता नहीं चला। शायद कुछ लोगों को पकड़कर ले गये हैं। शायद नहीं,

बल्कि जरूर ही। कुछ घरों से लड़कों को पकड़कर अवश्य ही ले गये हैं। लेकिन किसी को पता नहीं चला कि कहाँ क्या घटित हुआ है, किनके-किनके घर से किनको-किनको पकड़कर ले गये हैं और किनको-किनको नहीं ले गये हैं।

सत्यसुन्दर अपने घर के सामने पहुँचते ही भय से काँप उठा।

सामने के कमरे में बत्ती जल रही है। सदर का दरवाजा खुला हुआ है। दूर से यह दृश्य देखकर वह तेज कदमों से अपने घर की ओर बढ़ने लगा।

सत्यसुन्दर पर नजर पड़ते ही मिनती फफक-फफककर रोने लगी, "सर्वनाश हो गया, पुलिस वाले मुन्ना को पकड़कर ले गये।"

"मुन्ना को पकड़कर ले गये ? क्यों ?"

"मालूम नहीं। घर के अन्दर आकर मेरी तमाम चीजें उलट-पुलट गये, सोने का कमरा, भंडार घर किसी को भी नहीं छोड़ा।

सत्यसुन्दर क्या करे, उसकी समझ में नहीं आया।

बोला, "मुन्ना को क्यों पकड़कर ले गये ? मुन्ना ने क्या किया था ?"

मिनती बोली, "यह बात मैं कैसे बताऊँ ? वह अपने कमरे में बैठकर पढ़ रहा था, वहाँ से पकड़कर ले गये।"

"तुमने नहीं पूछा कि मुन्ना को क्यों पकड़कर ले जा रहे हैं ?"

मिनती बोली, "मेरी बात कौन मानेगा ? उन लोगों ने मुझे क्या बोलने का मौका दिया ? मुझे सामने जाने ही नहीं दिया।

सत्यसुन्दर बोला, "तो फिर मैं क्या करूँ ?"

मिनती बोली, "कुछ न कुछ करना ही है। उसने खाना भी नहीं खाया था—रसोई पकाकर हम तुम्हारे इन्तजार में बैठे थे।"

सत्यसुन्दर बोला, "मुहल्ले के किन-किन लड़कों को पकड़कर ले गये हैं ?"

"मैं क्या दूसरे के मकान में देखने गयी थी ? घर से निकलकर मुहल्ले वालों से तहकीकात करो। दूसरे-दूसरे घर के आदमी से एक बार पूछताछ करके देख लो।"

सत्यसुन्दर कपड़ा-लत्ता बदल नहीं सका। सीधे रास्ते पर निकल आया।

जाते समय एक बार पीछे की ओर मुड़ा और कह गया, "सदर का

दरवाजा वन्द कर लो, मैं थाना जाकर देखता हूँ कि वे लोग क्या कर रहे हैं।"

सत्यसुन्दर के चले जाने के बाद मिनती ने दरवाजा बन्द कर दिया और खिड़की के पास आकर खड़ी हो गयी। बाहर अँधेरा बिछा है। उसी अँधेरे में उसने देखा, सत्यसुन्दर मोड़ के सिरे पर पहुँचकर, जहां गली मुड़ जाती है, आँखों से ओझल हो गया।

मिनती उस समय भी अँधेरे की ओर ताकती हुई निःशब्द खड़ी रही।

सुबह से ही मिनती को लग रहा था कि कोई आज उसके घर में आने वाला है। ठेके की महरी के हाथ से सवेरे ही कासे की थाली झनझनाती हुई सीमेन्ट के फर्श पर गिर पड़ी थी।

बतासी की माँ बड़ी ही असावधान औरत है।

मिनती ने कहा, "तुम्हारी अक्ल कैसी है, बतासी की माँ, एक थाली की कीमत कितनी है, मालूम है ? जरा सावधानी से वरतन नहीं उठा सकतीं ?"

थाली की कीमत कम नहीं है, यह बात कोई भी इस युग में वेझिझक कह सकता है। और थाली ही क्यों, आज किस चीज की कीमत कम है ?

अब मिनती इतनी दुनियादार हो जायेगी, किसी दिन उसने स्वयं भी इसकी कल्पना नहीं की थी। शादी होते ही आदमी कैसे एकाएक वदल जाता है ? किस तरह सब कुछ बरदाश्त करने का आदी हो जाता है। क्यों अपनी निजी सत्ता को भी एक आदमी के हाथों बेच देना पड़ता है ! इसी का नाम क्या सहधर्मिणी होना है ?

पार्वतीपुर के उस छोटे मकान में जब रहती थी तो बीच-बीच में मिनती के दिमाग में यही सब बात आती थी। दिमाग में ऊल-जलूल बातें न आयें, इसका उपाय भी नहीं था उन दिनों। उसे कोई काम तो था नहीं। उस समय मुन्ना का भी जन्म नहीं हुआ था। दिन-भर लेटे-लेटे किताव पढ़ती रहती थी और सत्यसुन्दर जब दफ्तर से लौटता तो उससे गप करती थी पार्वतीपुर में कोई घूमने-फिरने लायक जगह भी नहीं थी।

उसी समय एक दिन मिनती ने कहा था, "तुम्हें क्या पार्वतीपुर में ही जिन्दगी व्यतीत करनी पड़ेगी ?"

"क्यों ? अचानक यह बात क्यों कह रही हो ?"

सत्यसुन्दर को अपनी पत्नी की बात सुनकर अचरज हुआ था।

मिनती ने कहा था, "कलकत्ता तो तुम लोगों का हेडऑफिस है, वहाँ तबादला नहीं हो सकता ?"

सत्यसुन्दर ने कहा था, "हो क्यों नहीं सकता ? लेकिन तबादला होने की इच्छा रहने से ही तो तबादला नहीं हो जाता ! उसके लिए पहले से ही दरख्वास्त करनी पड़ती है, फिर कलकत्ते में वैकेन्सी होनी चाहिए।"

उसके बाद जरा ठहर कर पत्नी के चेहरे की ओर ताकते हुए बोला, "तुम्हें यह सब किसने कहा ? यह सब बात तुम्हारे दिमाग में क्यों आयी ?"

यह सब बहुत पहले की बात है। शादी के ठीक दूसरे साल की बात। तब बड़ा सूना-सूना लगता था। उसे बहुत ही अकेलेपन का अहसास होता था। खिड़की से वह दूर आकाश की ओर ताकती रहती थी। एक चिड़िया उड़ती हुई दिगन्त के पार जाकर अदृश्य हो जाती और मिनती तत्क्षण भय से सिहर उठती थी। उसे महसूस होता कि वह भी उसी तरह अदृश्य होकर दिगंत के उस पार खो गयी है।

लेकिन सत्यसुन्दर जब ऑफिस से लौटकर आता तो स्वाभाविक स्थिति में लौट आती। दोनों एक साथ चाय पीने बैठते। चाय पीते हुए गपशप करते। उसके बाद कभी-कभी कोई मित्र सपत्नीक घर पर घूमने आता था। उन लोगों से बातचीत करते-करते शाम गुजर जाती। उसके बाद जब रात हो जाती तो खा-पीकर सो जाती और दूसरे दिन की कार्य-तालिका की तैयारी करने लगती।

इसी का नाम तो जीवन है। सौ में से नब्बे आदमी के लिए जीवन का यही अर्थ है। मगर दुनिया में ऐसे भी आदमी हैं जो ऐसा नहीं चाहते। वे लोग इस शृङ्खला से मुक्ति पाने के लिए विद्रोह करते हैं।

दरअसल सत्यसुन्दर एक ऐसा आदमी है जो सभी तरह की स्थितियों और असुविधाओं से ताल-मेल रखकर चल सकता है।

लेकिन मिनती अलग ही किस्म की है।

मिनती कहती, "यहाँ अगर ज्यादा दिन रहना पड़ा तो मैं पागल

मिनती की असुविधा सत्यसुन्दर की समझ में नहीं आती।

वह पूछता, "क्यों ? तुम्हें कौन-सी असुविधा हो रही है ? घर में अकेलापन अखरता है ? तो फिर कहो तो चिट्ठी लिखकर देस से बुआजी को यहाँ बुलवा लूँ।"

"नहीं, किसी को बुलाना नहीं है।"

"फिर कहो तो छुट्टी लेकर कहीं से घूम-फिर आयें—चाहे दार्जिलिंग, पुरी या वाराणसी।"

दो-चार बार मिनती को अपने साथ लिए सत्यसुन्दर घूमने-फिरने भी गया था। लेकिन मात्र दो दिनों के लिए ही। वे दो दिन उसे अच्छे लगते थे। फिर वही रफ्तार चलने लगती। वही एकरस थकाऊ जिन्दगी ! वही खिड़की से आकाश की ओर निहारना।

उसके बाद ही मुन्ना का जन्म हुआ।

मुन्ना को पाकर शुरू में उसे कोई बुरा नहीं लगा। लड़के का पालन-पोषण करने में पुतला लेकर खेलने जैसा भाव रहता था। उसे खिलाना-पिलाना, सुलाना, कपड़े-लत्ते पहनाना। जब मुन्ना थोड़ा बड़ा हो गया तो एक नयी समस्या पैदा हो गयी। लेकिन समस्या चाहे जितनी भी हो, लड़का जब बड़ा हो जाता है तो वह भी आहिस्ता-आहिस्ता माँ के लिए पराया जैसा हो जाता है। तब उसके लिए भी एक नयी दुनिया बन जाती है और वह उसी दुनिया में मशगूल रहता है। वह उसकी पढ़ने-लिखने की दुनिया है, वहाँ उसके मास्टर साहब रहते हैं। माँ तब लड़के से थोड़े फासले पर हो गयी थी। लड़का जितना भी बड़ा होता जाता है, वह उतना ही दूर चला जाता है।

ऐसे में एक दिन सत्यसुन्दर चेहरे पर हँसी लिए दफ्तर से घर आया।

बोला, "जानती हो, एक खुशखबरी है।"

"क्या ?"

"कलकत्ते में मेरे तबादले होने का ऑर्डर हो गया है।"

"अच्छा, यह बात !"

बहुत दिनों के बाद मिनती की इच्छा हुई कि वह खुशियों के मारे उछल पड़े। बोली, "हम लोग कब कलकत्ता चलेंगे ?"

"जितनी जल्दी हो सके, जाने की कोशिश करूँगा। पहले कलकत्ते में एक मकान ठीक करना होगा। सुना है, आजकल कलकत्ते में मकान

मिलना मुश्किल हो गया है। मैंने हेडऑफिस के अपने एक मित्र को मकान के बारे में पत्र लिख दिया है।"

कई सालों के दरमियान सत्यसुन्दर की जड़ पार्वतीपुर में जम गयी थी। चट से कोई जगह बदलना क्या इतना आसान है ? जिस घर-गृहस्थी को तिल-तिल बसाया जाता है उसे क्या बात की बात में उठाकर ले जाया जा सकता है !

उसके बाद ही कलकत्ता आना हुआ। कलकत्ते की सब्जी बगान गली के इस एकमंजिले मकान में।

शुरू में दोनों को बहुत ही अच्छा लगा था। सत्यसुन्दर की सिर्फ कलकत्ते में बदली ही नहीं हुई थी, बल्कि उसकी तनख्वाह में भी काफी वृद्धि हो गयी थी। ऑफिस के साहब भी उससे खुश थे। एक बात में कहा जाये तो सत्यसुन्दर के व्यवहार से सभी खुश थे। सत्यसुन्दर जब जिस स्थिति में रहता है, अपने को उसी के अनुरूप बना लेता है।

मुन्ना को वह एक दिन मुहल्ले के स्कूल में भर्ती करा आया। उसका वक्त मजे में गुजर रहा था। लेकिन वियतनाम की लड़ाई से ही परेशानी की शुरुआत हुई। वियतनाम कहाँ है, इसका पता न तो मुन्ना को था और न ही मुन्ना की माँ को।

एक दिन सत्यसुन्दर जैसे ही दफ्तर से आया उसकी पत्नी ने पूछा, "वियतनाम कहाँ है ? कौन-सा देश है ?"

सत्यसुन्दर उसकी बात सुनकर आश्चर्य चकित हो गया।

बोला, "क्यों ? एकाएक वियतनाम के बारे में क्यों पूछ रही हो ?

मिनती बोली, "मैंने मैट्रिक में भूगोल पढ़ा था, उसमें वियतनाम का नाम देखा नहीं था। वहाँ क्या लड़ाई छिड़ी हुई है ?"

"तुमसे किसने कहा ?"

"मुन्ना कह रहा था। उसके स्कूल में छुट्टी हो गयी। मैंने सोचा, वियतनाम की लड़ाई से उन लोगों के स्कूल का कौन-सा रिश्ता है ?"

सत्यसुन्दर ने मुन्ना को बुलाया, "तुम लोगों को छुट्टी किसने दी ? हेडमास्टर ने ?"

मुन्ना ने कहा, "नहीं, लड़के ही शोर-गुल मचाते हुए बाहर निकल आये। कहा कि वियतनाम में लड़ाई चल रही है, हम लोग अभी नहीं पढ़ेंगे।"

"और हेडमास्टर साहब ? उन्होंने क्या कहा ?"

मुन्ना ने कहा, "हेडमास्टर के कमरे की ओर सभी ढेले चलाने लगे।"

"उसके बाद ?"

मुन्ना ने कहा, "उसके बाद पुलिस को आते देखकर हम लोग दौड़ते हुए घर चले आये।"

यह सब बीते दिनों की बात है। उसके बाद गंगा से ढेर सारा पानी बहकर समुद्र में मिल चुका है। हड़ताल, खून-खराबा, घेराव आदि के बहुत सारे वारदात हो चुके हैं। कितनी ही हड़तालों ने कितने ही आदमी के सर्वनाश और सौभाग्य के दरवाजे खोल दिये हैं। कलकत्ते की सड़कों पर रक्तपात की भी बहुतेरी घटनायें हो चुकी हैं। सब्जी बगान की गली में भी उसकी लहरें टकरायी हैं। मिनती हालांकि घर में ही रही है लेकिन बाहरी दुनिया की लहर से हमेशा अपनी रक्षा करने में सफल नहीं हो पायी है। कई दिन ऐसा हुआ है कि रात के समय बम-गोले की आवाज से नींद टूट गयी है। सारा मकान थरथराकर कांपने लगा है। इतना ही नहीं कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि ऑफिस जाकर कोई ठीक समय पर वापस नहीं आ सका है।

मिनती चिंतित होकर खिड़की से बाहर सड़क की ओर ताकती रहती थी।

जब सत्यसुन्दर लौटता तो रात के दस बस चुके होते थे।

मिनती पूछती, "इतनी रात तक तुम दफ्तर में रहे ?"

सत्यसुन्दर तब पसीने से लथ-पथ रहता। हाँफता हुआ। हाँफते हुए ही कहता, "नहीं, एकाएक बस-ट्राम सब कुछ बन्द हो गया।

"क्यों ? बन्द क्यों हुआ ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "भगवान् जाने ! कलक़त्ता शहर की आजकल यही हालत हो गयी है। कब क्या होगा, कोई नहीं कह सकता !"

ऑफिस जाने के बाद मर्दों के लौटने का कोई ठीक नहीं रहता है। स्कूल जाने से लड़के-बच्चे लौट आयेंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं—कलकत्ता शहर की ऐसी ही अजीब हालत है। बीच-बीच में सुबह-शाम-दोपहर अजनबी आदमी आकर चन्दा माँगते हैं।

कहते हैं, "आपका चन्दा ?"

"चन्दा ? किस चीज का चन्दा ?"

मिनती दरवाजा खोलने पर अजनबी व्यक्तियों को पाती तो भच-कचा उठती थी। कहती, "किस चीज का चन्दा देना है ?"

लड़के कहते, "हम लोगों के मुहल्ले के क्लब का चन्दा। हम लोगों के क्लब का चन्दा हर कोई देता है। आप लोग नये-नये आये हैं, शायद इसीलिए आप लोगों को जानकारी नहीं है।"

मिनती अब क्या कहे। कुछ देर तक चुप रहने के बाद कहती, "मालिक घर पर नहीं हैं। आयेंगे तो उनसे कहूँगी।"

वे लोग चले जाते। लेकिन जाने के पहले कह जाते, "ठीक है, हम लोग कल सवेरे फिर आयेंगे, आप कहकर रखिएगा।"

शाम के वक्त सत्यसुन्दर आये। मिनती ने कहा, "जानते हो, आज मुहल्ले के कुछ लड़के चन्दा माँगने आये थे।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "तुमने चन्दा दिया ?"

मिनती ने कहा, "नहीं, तुम घर पर नहीं थे। फिर मैं चन्दा कैसे देती ?" किसी से कोई जान-पहचान नहीं, उसके बाद तुमसे बिना पूछे चन्दा कैसे दे दूँ ? मैंने कहा : कल सवेरे आना, बाबू रहेंगे तो दे देंगे।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "अच्छा ही किया है। उन लोगों से तुमने बढ़िया सलूक कर अच्छा ही किया है।"

मिनती ने पूछा, "चन्दा दोगे क्या ? कल सवेरे वे लोग आ रहे हैं।"

सन्यसुन्दर ने कहा, "जरूर दूँगा। मुहल्ले में वास करने के लिए इस तरह का चन्दा देना ही होगा।"

मिनती ने कहा, "लेकिन किस चीज का चन्दा ? कितना चन्दा देना होगा, यह सब तो उन लोगों ने बताया ही नहीं।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "यह सब बात नहीं पूछना चाहिए, वे लोग जितनी रकम की माँग करेंगे, देना ही होगा। कलकत्ते का यही नियम है। तब तुम कलकत्ता आने के लिए छटपटा रही थी, अब देखो, कलकत्ते में कितना सुख है !"

कलकत्ते में कितना सुख है, इसका पता मिनती को शुरू में ही लग चुका है। यहाँ आने के बाद सड़क-बाट में उसे इस बात का पता चल चुका है। सत्यसुन्दर निरीह आदमी है। घर-घुस्सर [illegible]तर से लौटने के बाद उसे घर पर ही बैठे रहना अच्छा लगता है [illegible] भर घर में बंद पड़े रहने के बाद मिनती को जरा घूमने-[illegible]

होती है और-और लोगों की तरह उसे भी सिनेमा देखने की इच्छा होती है, दुकान जाकर साड़ी-ब्लाउज पसन्द करने की इच्छा होती है। लेकिन वहाँ जाने का कोई उपाय नहीं। बात की बात में सड़कों की बत्तियाँ गुल हो जाती हैं। सड़क पर चलने वाले भी कितने बेपरवाह हैं! हर कोई आगे चलना चाहता है। हर कोई जैसे प्रतिज्ञा कर बैठा हो कि वह पीछे नहीं रहेगा। जैसे भी हो सामने बढ़ते जाओ।

कभी-कभी मिनती को बहुत ही बुरा लगता।

कहती, "देख रहे हो, वह आदमी कैसे धक्का देकर चला गया।"

सत्यसुन्दर कहता, "इसीलिए तो कहा था सड़क पर मत निकला करो।"

मिनती कहती, "सभी तो रास्ते में घूम-फिर रहे हैं। मैंने कौन-सा दोष किया है?"

सत्यसुन्दर कहता, "और-और लोगों की बात रहने दो, वे लोग लाचारी के मारे बाहर निकलते हैं, बहुत-सी लड़कियाँ नौकरी करती हैं और इसीलिए बाहर निकलती हैं। अगर सड़क पर नहीं निकलेंगी तो करेंगी क्या? घर पर वे चुपचाप बैठकर कैसे रह सकती हैं?"

चाहे किसी को अच्छा लगता हो, चाहे न लगता हो परन्तु मिनती को अच्छा नहीं लगता था। लेकिन सड़क पर न निकले तो घर के अन्दर दिन-भर कैसे पड़ी रहे?

इसी तरह सत्यसुन्दर का पारिवारिक जीवन चल रहा था। सत्यसुन्दर का ही नहीं, बल्कि कलकत्ता शहर के निन्यानवे प्रतिशत व्यक्तियों के जीवन का यही बँधा-बँधाया रुटिन था।

लेकिन इस बीच इस तरह की विपत्तियाँ आयेंगी, इसकी धारणा किसी को नहीं थी। कई सालों के दरमियान आदमी जुझारू जैसे हो गये थे। सामने जो मिल जाये, तोड़ डालो। सब कुछ तोड़-फोड़कर आदमी की जीवन-यात्रा को अचल बना दो। अचानक कहाँ से बम और पिस्तौल की आमदनी हो गयी, कौन जाने! आदमी ने बम तैयार करना कहाँ सीखा? किसने उन लोगों को यह सब सिखाया और क्यों वे लोग इतने जुझारू हो गये हैं?

एक दिन मिनती ने कहा, "तुम फिर तबादले की कोशिश करो।"

"फिर?" सत्यसुन्दर ने कहा, "यही तो उस दिन की बात है कि तुम्हारी बात मानकर कलकत्ते में तबादला कराया। इतने कम वक्त में फिर तबादला? साहब क्या कहेंगे?"

मिनती ने कहा, "यहाँ रहने से मेरा मुन्ना आदमी नहीं बन पायेगा।"

बात सही है। सत्यसुन्दर भी यही सोचता था। इस लड़के के लिए वह कौन-सा उपाय करे? साहब से फिर तबादले के बारे में कहने जाये तो साहब ही क्या सोचेगा? सत्यसुन्दर चूँकि काम का आदमी है इस-लिए साहब उसे छोड़ना नहीं चाहता। साहब हर काम में सत्यसुन्दर को बुलावा भेजता है। ऑफिस में ऐसा सिलसिला चल गया है कि सत्यसुन्दर के बिना काम ही नहीं होता।

सत्यसुन्दर कहता, "और कुछ दिनों तक बर्दाश्त करती जाओ, फिर देखो क्या होता है।"

देखते-देखते ही इतने दिन बीत गये और तभी यह कांड हो गया।

मिनती खिड़की बंद कर शयन-कक्ष में चली गयी और अपने बिस्तर पर लेट गयी। लेकिन कब तक लेटी रहे? थोड़ी देर बाद ही उठकर बैठ गयी। रसोई वगैरह पकाकर तैयार कर लिया था और खाना खाने के इन्तजार में थी। कि यह घटना हो गयी। कहाँ चला गया मुन्ना और कहाँ चले गये घर के मालिक!

मिनती ने फिर खिड़की खोल दी और बाहर की ओर ताकने लगी। किसी ने सड़क की बत्तियाँ बुझा दी थीं। दो-चार बम फटने की दूर से आवाज आयी। सड़क बिलकुल सुनसान है। सड़क पर एक भी आदमी पैदल नहीं चल रहा है। मिनती के जीवन की तरह ही पूरे मुहल्ले में सन्नाटा रेंग रहा है।

मगर थाने में उस समय खासी अच्छी भीड़ थी। मुहल्ले से पुलिस वाले जिन लड़कों को पकड़ ले गये हैं, उनके अभिभावकगण थाने के आँगन में भीड़ लगाये खड़े हैं।

सभी थाने के ओ० सी० से मिलना चाहते हैं। अगर उन्हें तमाम लोगों से मिलना पड़े तो यह एक रात में संभव नहीं

एक कर सबको बुला रहे हैं।

एक सज्जन जैसे ही आकर खड़े हुए, ओ० सी० ने पूछा, "आपके लड़के का नाम ?"

नाम ही नहीं, घर का पता और नम्बर भी बताना पड़ा।

ओ० सी० ने नाम और पता सुनकर कहा, "नहीं, आपका लड़का छोड़ा नहीं जा सकता।"

सज्जन रोनी-रोनी जैसी हालत में बोले, "मेरा लड़का तो मोस्ट इनोसेन्ट है, सर।"

ओ० सी० ने कहा, "आपकी राय में मोस्ट इनोसेन्ट हो सकता है, लेकिन हम लोगों को दूसरी ही रिपोर्ट मिली है।"

"नहीं सर, मेरा लड़का किसी से मिलता-जुलता नहीं है।" सज्जन ने प्रतिवाद किया।

"आप कह रहे हैं, मिलता-जुलता नहीं है, मगर मुझको और ही तरह की सूचना मिली है। वह जिन लोगों से मिलता-जुलता है वे लोग गुण्डे-शोहदे हैं। वे लोग बम फेंकते हैं।"

"मगर....."

ओ० सी० ने अब उस सज्जन को एक भी शब्द बोलने नहीं दिया। बोले, "अब मेरे पास बातचीत करने का समय नहीं है। बहुत से आदमी बातचीत करने के लिए खड़े हैं अभी आप चले जायें।"

उसी समय एक दूसरा आदमी कमरे के अन्दर आया।

"आपका नाम क्या है ? पता ?"

उसने अपना नाम-पता बताया।

"यह आपका लड़का है ?"

"हाँ।"

"आपको मालूम है कि आपके लड़के के खिलाफ मर्डर-चार्ज है ?"

"यह क्या ? मेरे लड़के ने खून किया है ?"

"हाँ जनाब, हाँ। आप लोग लड़कों के बाप हैं मगर इस बात का पता नहीं रखते कि लड़के कहाँ जा रहे हैं, क्या कर रहे हैं। नहीं, आपके लड़के को छोड़ नहीं सकता। जरूरत पड़ने पर कचहरी में आप अपना बयान दीजिएगा।"

"मगर सर, अपने लड़के को नहीं पहचानूँगा और आप लोग पह-
चानियेगा ? मेरा लड़का

लेकर घर में पड़ा रहता है और नियमपूर्वक स्कूल आता-जाता है। वह बम नहीं छोड़ता है। जो लोग बमबाजी करते हैं, उन लोगों की संगति में नहीं रहता है।"

"मेरे लड़के को अब छोड़ दीजिए, सर। खाना-खाने के पहले ही आप लोग उसे पकड़ कर ले आये हैं, बिना खाये वह रात कैसे गुजारेगा।"

ओ० सी० ने कहा, "आपको इसके लिए फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं। हम लोग उसके लिए सारा इन्तजाम करेंगे।"

भले आदमी ने अब अपनी जेब में हाथ डाला। सौ रुपये के कई नोट निकाले और उन्हें सामने की ओर बढ़ाते हुए बोले, "अपने लड़के के भोजन के लिए यह दे रहा हूँ, वह जो-सो खाना खा नहीं पाता है।"

ओ० सी० ने ऊब के साथ हाथ बढ़ा दिया।

बोले, "मुझे आप रिश्वत देने आये हैं ? रिश्वत लेकर मैं आपके लड़के को छोड़ दूँगा, यही सोचा है ? जाइए।"

ओ० सी० बेहद गुस्से में आ गये। भले आदमी भी तत्क्षण बाहर निकल आये। कमरा खाली देखकर एक और आदमी अन्दर आया।

सत्यसुन्दर अँधेरे आँगन में चुपचाप खड़ा था। उसके आसपास और भी बहुत से आदमी खड़े थे। सभी उद्विग्न और अशान्त थे, सभी में कौतूहल था।

एक आदमी निकट ही खड़ा था।

सत्यसुन्दर उसकी ओर गया और पूछा, "बड़े बाबू से एक बार मिलना चाहता था। मुलाकात हो पायेगी ?"

भले आदमी ने कहा, "आप मिलना चाहते हैं ? आपके किस रिश्ते-दार को पकड़ा है ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "लड़के को, एकमात्र लड़के को। आपके ?"

भले आदमी ने कहा, "किसी को भी नहीं।"

"फिर लगता है, आप किसी दूसरे आदमी के साथ आये हैं।"

"नहीं, मैं पुलिस का स्टाफ हूँ।"

सत्यसुन्दर को थोड़ा-बहुत भरोसा हुआ। बोला, "फिर तो अच्छा ही हुआ। मेहरबानी कर मेरी कुछ भलाई करने का कष्ट करें।"

"क्या ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "सुबह ही मैं खा-पीकर ऑफिस गया था। वहाँ शाम सात बजे तक गधे की तरह खटना पड़ा है। उसके बाद बस पर लटकता हुआ जब घर आने लगा तो गली के मुहाने पर रुक जाना पड़ा। जब छूटा तो घर जाने पर देखा, ये लोग मेरे लड़के को पकड़ ले आये हैं।"

"आप किस ऑफिस में काम करते हैं ?"

"जॉन एंडरसन कंपनी का आपने नाम सुना है ? विलायती कंपनी है। उन लोगों का एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट का कारोबार है। मैं उसी ऑफिस में टैक्स सेक्शन का सुपरिन्टेन्डेट हूँ। ऑफिस में मुझे बेहद खटना पड़ता है, चाय पियूँ, इसका भी वक्त नहीं मिलता। यही लीजिए न, सवेरे ही ऑफिस गया हूँ और तब से अब तक चाय पीने का वक्त नहीं मिला है। सोचा था, घर चलकर ही चाय पिऊँगा। लेकिन देखिए, कैसा कांड हो गया।"

"आपका लड़का बुरे लड़कों के साथ रहता है ?"

सत्यसुन्दर बोला, "आप यह क्या कह रहे हैं! मेरा लड़का मुझसे भी ज्यादा शर्मीला है। किसी से मिलने-जुलने की उसमें हिम्मत ही नहीं है।"

"लेकिन आप घर पर कितनी देर रहते ही हैं कि यह देखने का मौका मिले कि लड़का किससे मिलता-जुलता रहता है। आजकल के लड़के माँ-बाप की बात कहाँ मानते हैं ?"

सत्यसुन्दर ने प्रतिवाद किया, "नहीं साहब, मेरा लड़का बात मानता है, मेरी पत्नी जो कुछ कहती है, मेरा लड़का वह बात मानता है। मेरा लड़का दूसरे-दूसरे लड़कों की तरह नहीं है। वह कलकत्ते का लड़का नहीं है, उसका लालन-पालन पार्वतीपुर में हुआ है। यहाँ लालन-पालन होता तो अलबत्ता वह और ही तरह का होता।"

उसके बाद सत्यसुन्दर ने कहा, "आपके बड़े बाबू किस तरह के आदमी हैं ?"

भले आदमी ने कहा, "बुरे नहीं हैं। लेकिन कुछ [illegible] आदमियों ने बड़े बाबू को बुरा बना दिया है।"

"कैसे ?"

"आपने दत्त बाबू को इसके पहले नहीं देखा है ? इतने दिनों से आप सज्जो बगान में रह रहे हैं और बड़े बाबू को नहीं देखा है ?"

"बड़े बाबू का नाम क्या है ?"

"अशेषदत्त। खानदानी आदमी हैं। इसीलिए उनका मन इतना उदार है। लेकिन आलतू-फालतू लोगों ने उन्हें भी बुरा बना दिया।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "कैसे बुरा बना दिया है ?"

"लोग रिश्वत देते हैं। रिश्वत लेने पर आजकल कौन लोभ सँभाल पाता है ? किसके मन में इतनी ताकत है ? आप देख ही रहे हैं, चीजों की कीमतें इन दिनों कितनी तेजी से बढ़ती जा रही हैं। डेढ़ रुपये की दर से भिण्डी मिल रही है, इस भादों के महीने में परवल की दर है ढाई रुपया सेर। सब कुछ में जैसे आग लगती जा रही है। बताइए, हम लोग खायें क्या ? हम लोगों को कितनी तनख्वाह मिलती है, इसका आपको पता है ?"

भले आदमी ने अचानक तनख्वाह की बात क्यों छेड़ दी, सत्यसुन्दर की समझ में नहीं आया। फिर यह आदमी क्या उससे रिश्वत माँग रहा है ?

सत्यसुन्दर ने कहा, "आपने अपने बड़े बाबू का क्या नाम बताया ?"

"अशेषदत्त।"

"उन्हें अगर रुपया दूँ तो वे बिगड़ेंगे तो नहीं ? बहुत से ऐसे आदमी होते हैं जिन्हें रिश्वत दी जाय तो बिगड़ने लगते हैं। फिर यह कोतवाली की बात ठहरी। यहाँ रिश्वत देना भी तो गैर-कानूनी है।"

उस आदमी ने कहा, "नहीं-नहीं, खबरदार, ऐसा काम मत कीजिएगा। बड़े बाबू यह सब पसन्द नहीं करते।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "इतने-इतने लोगों के लड़कों को जो पकड़कर ले आये हैं, वे लोग क्या अपने-अपने लड़के को छुड़ाने के लिए रिश्वत देंगे ?"

उस आदमी ने कहा, "यह कैसे कहा जा सकता है ? केस देखकर इन्तजाम किया जायेगा—हर आदमी के लिए अलग-अलग तरह का इन्तजाम रहेगा।"

"अच्छा, मुझे अपने लड़के को छुड़ाने में कितना रुपया देना होगा ?"

उस आदमी ने कहा, "आपकी बात अलग है।"

"क्यों ? अलग क्यों ?"

"सभी क्या आप जैसे सज्जन हैं ? इनमें से ज्यादातर आदमी दुकानदार हैं। सभी ब्लैक रुपये से रोजगार करते हैं। कोई किसी तरह का टैक्स नहीं देता। कोई लोहा-लक्कड़ का दुकानदार है तो कोई मसाले का व्यापारी। आप लोगों के मुहल्ले में कितने भले आदमी रहते हैं ?"

"उन्हें हर लड़के के पीछे कितना रुपया देना होगा ?"

उस आदमी ने कहा, "किसी को दो हजार, किसी को पाँच हजार। इसी तरह की रेट है।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "फिर बड़े बाबू को तो बहुत ही आमदनी होती होगी। अगर इतने हजार आमदनी होती है तो महीने में कुल मिलाकर कितनी होती होगी !

उस आदमी ने कहा, "बड़े बाबू ही सब पैसा नहीं लेंगे।"

"क्यों ? बड़े बाबू सब पैसा क्यों नहीं लेंगे ?"

"कहा न, बहुत ही नामीवंश के आदमी हैं। उनके पिता जी बहुत बड़े गजटेड अफसर थे। बचपन से ही बड़े आदमी रहे हैं। इसलिए बड़े बाबू रुपये की कभी परवाह नहीं करते। जो भी मिलता है, स्टाफ के बीच बाँट देते हैं।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "आप मेरे लड़के के बारे में जरा बड़े बाबू से कह दीजिए न।"

उस आदमी ने कहा, "आप रुपया-पैसा अपने साथ ले आये हैं ?"

सत्यसुन्दर एक लमहे के लिए हतप्रभ हो गया।

उसके बाद उसने कहा, "देखिए, मुझे ठीक-ठीक मालूम नहीं था। रुपये देना होगा, इसकी मुझे जानकारी नहीं थी। नहीं तो [illegible] आता। इसके अलावा ऑफिस से लौटने के बाद घर [illegible] बदलने का भी वक्त नहीं मिला। जैसी हालत [illegible] में चला आया। अभी तक किसी ने खाना नहीं [illegible] खाया है तो फिर हम कैसे खाना खायें ! [illegible] खाना खा सकते हैं ?"

उसके बाद वह बोला, "[illegible] खिलाया जायेगा या नहीं ?"

आदमी ने कहा, "[illegible] जायेगा। नहीं तो दो [illegible]

सत्यसुन्दर ने अपनी जेब में हाथ डालकर मनीवैग निकाला और खोलकर देखा। उसमें ज्यादा रुपया नहीं है। रेजगारी मिलाकर तीन रुपये निकले। तीनों रुपयों को उसकी ओर बढ़ाकर वोला, "मेरी जेब में वस यही तीन रुपये हैं, इससे ज्यादा अभी दे नहीं पाऊँगा। मेहरबानी कर इन रुपयों से कोई मिठाई खरीद कर दे दीजिएगा ?"

आदमी ने हाथ बढ़ाया। उसके हाथ में रुपया थमाकर सत्यसुन्दर को निश्चिन्तता का अनुभव हुआ। उसके लड़के मुन्ना को खाना मिलेगा, उसे हवालात में निराहार नहीं रहना होगा।

आदमी ने कहा, "रात में इस रुपये से काम चल जायेगा। मगर आप कुछ ज्यादा रुपया देते तो वड़े वावू रात में ही आपके लड़के को छोड़ देते। कुछ झमेला भी नहीं रह जाता।"

"यह वात है ! तो फिर रुपया लेकर आना ही ठीक रहता।"

उसके वाद मन में कुछ विचार आया। रुपया ! इतना रुपया आज वह कहाँ से लायेगा ?

वोला, "मेरे पास उतना रुपया नहीं है। मेरे घर पर पाँच सौ रुपये भी नहीं रहते हैं। मकान-किराया और खाने-पीने में ही तनख्वाह के तमाम पैसे खत्म हो जाते हैं। वहुत ही कम वच पाता है, उसे इसलिए रख देता हूँ कि अचानक कोई मुसीवत आ जाये तो....."

आदमी ने कहा, "रुपया न रहेगा तो आप क्या कीजिएगा।"

यह कहकर वह आदमी हटकर चला गया और एक दूसरे आदमी से वातचीत करने लगा। सत्यसुन्दर को वहुत ही एकाकीपन का अहसास होने लगा। और भी वहुत से आदमी खड़े हैं। कहा जाता है, सभी की समस्या एक ही है। सभी अपने-अपने लड़के को छुड़ाने आये हैं। फिर क्या सभी के लड़के अपराधी हैं ? सभी वमवाजी करते हैं ? कोई न कोई मुन्ना की तरह निश्चय ही निरपराध होगा। तो फिर वह पुलिस को रिश्वत क्यों देगा ? मान लो अगर वह रिश्वत नहीं देता है तो क्या मुन्ना आज रात हवालात में ही रोक लिया जायेगा ?

एक और आदमी ने सत्यसुन्दर को देखा तो आगे बढ़ आया। वह सत्यसुन्दर को पहचानता है। वहुत वार ऑफिस जाने के समय बस में देख चुका है।

पूछा, "आप ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मेरे लड़के को पकड़ कर ले आया है, इसीलिए आया हूँ। और आप ?"

उस आदमी ने कहा, "मेरे छोटे भाई को पकड़ कर ले आया है, साहब घर पर मेरे बूढ़े पिता जी बहुत ही बीमार हैं, उन्हें इस बात का पता चलने नहीं दिया है। मगर बहुत दिनों तक बात छिपाकर नहीं रखी जा सकती है।"

सत्यसुन्दर ने पूछा, "आप बड़े बाबू से मिल चुके हैं ?"

"हाँ, अभी तुरन्त मिलकर आया हूँ।"

"क्या बोले ?"

उस आदमी ने कहा, "और क्या कहेंगे, सबसे जो कहा है, मुझसे भी वही बातें कहीं।"

"सबसे क्या कहा ?"

"रुपया।"

सत्यसुन्दर चकित होकर उस आदमी के चेहरे की ओर एक क्षण तक ताकते रहा। सबके सामने आदमी कैसे रुपये की माँग करता, यह बात सोचकर वह हतप्रभ हो गया।

उस आदमी ने कहा, अपनी जबान से थोड़ी माँग कर रहे हैं ? कॉन्स्टेबल से कहलाया है।"

जरा रुक कर फिर बोला, आपसे उन लोगों ने कुछ नहीं कहा ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "अभी तक भेंट ही नहीं कर पाया हूँ।"

उस आदमी ने कहा, "इस तरह हाथ सहेजे बैठे रहिएगा तो आज मिल ही नहीं पाइएगा। इसके अलावा बड़े बाबू अब ऑफिस में ज्यादा देर तक नहीं रुकेंगे। बहुत रात हो चुकी है। उन्हें भी तो खाना खाना है, सोना है, उनके भी तो बाल-बच्चे-पत्नी और गृहस्थी है। हम लोगों की तरह बड़े बाबू भी गृहस्थ आदमी ठहरे।"

बात तो सही है। पुलिस रहने से कोई घर-संसार से अलग का आदमी तो नहीं होता ! पुलिस वाले भी तो पिता हैं। और-और लोगों की तरह उन्हें भी गृहस्थी का भार सँभालना पड़ता है। उन्हें भी नौकरी करनी पड़ती है। उनके सामने भी हजारों तरह की समस्यायें हैं।

सत्यसुन्दर ने पहले इन बातों पर विचार नहीं किया था। बोला, "फिर क्या करूँ, बताइए तो साहब ? मुलाकात करूँ या फिर कल रुपया लेकर ही आऊँ ? कितना रुपया देना होगा, यह भी नहीं समझ

पा रहा हूँ। रुपया कैसे दूँगा, यह वात भी मेरी समझ में नहीं आ रही है। अगर कहें तो उनके घर के अन्दर चला जाऊँ।"

उस आदमी ने कहा, "जा सकते हैं, मगर उससे कोई फायदा नहीं होगा।"

"क्यों ?"

"कहा न कि पैसा चाहिए।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मैं अल्पवेतन भोगी आदमी हूँ। एक मर्चेंट ऑफिस में काम करता हूँ, मोटे तौर पर खाने भर का खर्च चल जाता है। चट से दो-तीन हजार रुपये निकालना परेशानी की बात है। ऑफिस से बिना कर्ज लिए इतना रुपया निकालना मुश्किल है। इसके अलावा एक और उपाय है। गृहिणी के गहनों को बंधक रख रुपया निकाला जा सकता है। मगर वह भी आज रात में नहीं हो सकेगा, कल बारह बजे के वाद ही हो सकता है। उस समय ही सोनार की दुकान खुलेगी। तब हाँ, ऑफिस जाना एक दिन के लिए वन्द करना होगा।"

अपने मन की बात किसी एक व्यक्ति के बताये बगैर सत्यसुन्दर को जैसे शान्ति नहीं मिल रही है।

इस बीच भीड़ में थोड़ी-सी हलचल हुई, "क्या बात है, जनाव, चले क्यों जा रहे हैं ?"

एक आदमी की आवाज : बड़े बाबू ड्यूटी छोड़कर अपने क्वार्टर में चले गये।

फिर यहाँ खड़ा रहने से लाभ ही क्या है ? सभी आहिस्ता-आहिस्ता सड़क की ओर बढ़ने लगे। जिन लोगों के घर में नकद पैसा है वे अभी घर से रुपया ले आयेंगे और अपने लड़के को छुड़ा ले जायेंगे। चाहे जितनी भी रात हो, उनके लिए कोई कानून कानून नहीं है। वे लोग अपराध से मुक्त हो जायेंगे। किसी चिड़िया तक को पता नहीं चलेगा कि उनके लड़कों को पुलिस पकड़ कर ले गयी थी और फिर उन्हें चुपचाप छोड़ दिया गया है।

लेकिन मुन्ना ?

सभी को यही पता चलेगा कि सत्यसुन्दर सरकार का लड़का शोभन, शोभनसुन्दर, समाज की निगाह में अपराधी है और अपराधी ही नहीं असामाजिक तत्त्व।

एक बार असामाजिक सूची में नाम निकल जाये तो फिर कोई क्या

"दो हजार।"

"रुपया दीजिएगा ?"

भले आदमी ने कहा, "मुझे कोई कत्ल भी कर दे तो दो हजार रुपया नहीं निकाल सकता हूँ।"

"आप यही बात कह आये ?"

भले आदमी ने कहा, "हाँ, सामने ही यह बात कह आया। कहा : लड़का आपकी हवालात में रहे, मर्जी हो तो आप लड़के को कत्लकर डालें, मैं रुपया नहीं दे सकूँगा। बारह साल से मैं पाइल्स का मरीज हूँ, मगर दो सौ रुपये के अभाव में ऑपरेशन नहीं करा पा रहा हूँ। कैसे पुलिस को दो हजार रुपया रिश्वत दूँ ? हाय रे कपाल ! यही सोचूँगा कि मेरा एक लड़क बम की चोट से मारा गया है।"

सत्यसुन्दर ने पूछा, "आपका लड़का वाकई बमबाजी करता है ?"

भले आदमी ने कहा, "लड़का क्या करता है, यह देखने का मेरे पास क्या वक्त है कि जानकारी रखूँ ? मैं बड़े बाबू से भी यही बात कह आया। बड़ा बाजार में मेरी मसाले की दुकान है, वहाँ भी हर महीने गुंडों को रुपया देना पड़ता है, उस समय तो देखनेवाला कोई नहीं।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मैंने भी सुना है, बड़े-बड़े व्यापारियों को हर महीने चन्दा देना पड़ता है।"

"क्यों, आपको नहीं देना पड़ता ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मुझे क्यों देना होगा, मैं तो अल्पवेतन भोगी आदमी हूँ, एक मालूमी-सी नौकरी हूँ। मेरे पास रुपया कहाँ है ? इसके अलावा मैं तो पहले कलकत्ता में रहता भी नहीं था।"

भले आदमी ने कहा, "इसका प्रतिकार कब होगा, पता नहीं, साहब।"

सत्यसुन्दर ने एकाएक पूछा, "बड़े बाबू आदमी के लिहाज से कैसे हैं, यह बात आपको मालूम है ?"

भले आदमी ने कहा, "बहुत बड़े खानदान के आदमी हैं, तकदीर ही खराब है कि पुलिस की नौकरी करनी पड़ती है। इनके पिताजी डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे।"

सत्यसुन्दर को आश्चर्य हुआ।

पूछा, "तो फिर आप उन्हें पहचानते हैं ?"

भले आदमी ने कहा, "हम लोगों के वर्धमान जिले में उनका मकान है। उन लोगों का खानदान बहुत विख्यात है।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "वर्धमान जिले के किस गाँव में ? मेरी ससुराल तो वर्धमान जिले में ही है।"

भले आदमी ने कहा, "उन लोगों का मकान गुसकरा में है। वे लोग गुसकरा के दत्तवंश के हैं।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मेरी ससुराल उसी गाँव में है। अच्छा, यह तो बताइए कि बड़े बाबू का नाम क्या है ?"

भले आदमी ने कहा, "उनके पिताजी बहुत ही नामी-गिरामी व्यक्ति थे। विश्वनाथ दत्त, डिप्टी मैजिस्ट्रेट। बड़े बाबू का नाम है अशेषदत्त। गुसकरा में अब उन लोगों का कोई अपना आदमी नहीं रहता है। पिता की मृत्यु के बाद आपस में बँटवारा कर सभी इधर-उधर चले गये हैं।"

बातचीत करते-करते दोनों जने सब्जी बगान गली के पास आ गये थे। दिन-भर दफ्तर में खटते रहने के कारण सत्यसुन्दर की देह अब शिथिल पड़ गयी है।

बोला, "अच्छा, चलूँ।"

भले आदमी ने पूछा, "आप रुपये का इन्तजाम कीजिएगा ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "इन्तजाम तो करना ही होगा। मेरे बस वही एक लड़का है। घर पर पत्नी क्या कर रही है, पता नहीं। भोजन तो हममें से किसी ने भी नहीं किया है।"

यह कहकर सत्यसुन्दर ने गली के अन्दर कदम रखा।

मिनती गहरी रात में नींद से उठकर बैठ गयी। उसे ठीक-ठीक नींद नहीं कहा जा सकता। नींद आये भी तो कैसे ! वह आहिस्ता से बिस्तर से उठी। उसके बाद बगल के कमरे में आ दीवार पर टँगी घड़ी की ओर देखा। रात के साढ़े तीन बज चुके हैं। चार बजने में अब आधे घंटे की देर है। भोर का मतलब ही है सुबह। बहुत से ऐसे घर हैं जहाँ चार बजते ही सुबह हो जाती है। जो लोग फैक्टरियों में काम करते हैं उन्हें बहुत तड़के ही जगना पड़ता है। अलस्सुबह जगने पर ही वे छह बजे जाकर ड्यूटी कर पाते हैं।

सत्यसुन्दर अब भी नींद में खोया हुआ है। क्या करे बेचारा ! न सोकर ही क्या कर सकता है ! कल दिन-भर ऑफिस में खटता रहा है। उसके बाद घर आने पर कोतवाली भागना पड़ा। कोतवाली में भी बेहद हैरान होना पड़ा है।

कोतवाली से जब सत्यसुन्दर घर लौटा तो दोनों के मुँह से बहुत देर तक शब्द ही नहीं निकले।

अन्त में मिनती ही पहले बोली, "क्या हुआ ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मुन्ना को नहीं छोड़ा।"

"नहीं छोड़ा, इसका मतलब ? मुन्ना ने क्या किया है ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मालूम नहीं।"

"बिना कुछ किये आदमी को पकड़ लेगा ? तुमने कहा नहीं कि मेरा मुन्ना उस तरह का लड़का नहीं है ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "बड़े बाबू से मुलाकात होती तब न कहता। मुलाकात हो ही नहीं सकी। इतनी भीड़ थी कि क्या कहूँ ! इसके अलावा सिर्फ मुन्ना को ही पकड़ा है ? मुन्ना के जैसे कितने लड़कों को पकड़ा है, उसका कोई ठिकाना नहीं। मेरे जैसे बहुत से लड़कों के बाप वहाँ गये थे। जब कोतवाली पहुँचा, वहाँ भीड़ ही भीड़ थी।"

"फिर क्या होगा ? मुन्ना कैसे वहाँ रहेगा ? उसने खाना तक नहीं खाया है। वे लोग क्या उसे खाना देंगे ? सोयेगा कहाँ ? कितने दिनों तक रोक रखेगा ?"

सत्यसुन्दर को इन बातों की जानकारी नहीं है।

बोला, "पता नहीं, क्या करेगा। सुना, दो हजार रुपया रिश्वत देने पर वे लोग मुन्ना को छोड़ देंगे।"

"दो हजार रुपया ?"

"हाँ।"

"दो हजार रुपया अभी कहाँ मिलेगा ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "यही बात तो सोच रहा हूँ। सुना, सभी दो-दो हजार रुपया बड़े बाबू को दे रहे हैं। देश की क्या हालत हो गयी है, देख लो ! मेरे लड़के ने कोई दोष नहीं किया है, कुछ भी अपराध नहीं, फिर भी रुपया देना होगा।"

मिनती कुछ नहीं बोली।

सत्यसुन्दर ने कहा, "पार्वतीपुर में रहता तो यह सब घटना नहीं

होती। वहाँ हम कितने आराम से थे! मुन्ना की लिखाई-पढ़ाई भी ठीक से चल रही थी। यहाँ रोज हड़ताल चलती रहती है, स्कूल में लिखाई-पढ़ाई नाममात्र की भी नहीं होती। हम लोग कैसी जगह में तबादला होकर चले आये! तुम्हारे कारण ही यह कांड हुआ।"

"मेरे कारण?"

"तुम्हारे कारण नहीं तो और क्या! तुम कलकत्ते में तबादला कराने के लिए तंग करती रही। उन दिनों ऑफिस में सबने मना किया था। तुम्हारी बात न मानकर उन लोगों की बात मानता तो अच्छा रहता। अब क्या करूँ! एक ही दिन में इतने रुपये का इन्तजाम कैसे करूँ! कौन मुझे दो हजार रुपया देगा?"

"बैंक में तुम्हारा कितना रुपया है, पासबुक देख लो तो।"

सत्यसुन्दर ने ट्रंक खोलकर पासबुक देखा। उसमें सात सौ रुपया जमा था। उसमें से ढाई सौ रुपया इंश्योरेन्स का प्रिमियम देना है। न होगा तो प्रिमियम बाद में देगा। उसके लिए फाइन देना होगा तो देगा। लेकिन सात सौ रुपया अगर बैंक से निकलता है तो और तेरह सौ रुपये का इन्तजाम कल ही करना होगा। रुपया देने में जितनी देर होगी, मुन्ना को छुड़ाने में उतनी ही देर होगी।

मिनती भी देख रही थी।

बोली, "फिर क्या होगा?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "क्या होगा, यही तो सोच रहा हूँ।"

उसके बाद उसे कुछ याद आ गया और उसने कहा, "जानती हो, पता चला कि कोतवाली के बड़े बाबू तुम्हारे देस के आदमी हैं।"

"हमारे देस के? हम लोगों के देस का मतलब?"

"यानी तुम्हारे वर्धमान जिले के गुसकरा के।"

"यह बात? लेकिन देस का आदमी रहने से क्या मेरी बात मानेगा? जो लोग रिश्वतखोर होते हैं उनके लिए पैसा ही बड़ी चीज होता है।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "नहीं, मेरे कहने का मतलब है कि जबकि तुम्हारे देस के आदमी हैं तो हो सकता है, तुम उन्हें पहचान भी लो। सुना है, बड़े बाबू गुसकरा के दत्त-परिवार की सन्तान हैं।"

"दत्त-परिवार?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "हाँ, उनके पिताजी का नाम वि[illegible] डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे।"

मिनती जरा घबरा गयी। बोली, "डिप्टी मैजिस्ट्रेट विश्वनाथ दत्त ?"

"हाँ, तुम पहचानती हो क्या ? नाम सुना है ?"

मिनती ने उस बात का उत्तर न देकर पूछा, "उनके कौन-कौन से लड़के हैं ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "यह तो पूछा नहीं था। अशेषदत्त बताया—तुम पहचानती हो ?"

सत्यसुन्दर ने मिनती के चेहरे की ओर देखा।

बोला, "बचपन से तुम्हारा तो वहीं लालन-पालन हुआ है। याद करके देखो न, अगर पहचान में आ जाये। जान-पहचान के निकल जायें तो हो सकता है, रुपया न भी लें। आँख की लाज नामक भी तो कोई चीज होती है।"

मिनती ने उस बात का उत्तर न देकर कहा, "खाना खाओगे ? बहुत रात हो चुकी है।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "नहीं, मुझे खाने की इच्छा नहीं हो रही है। पैर बेहद दुख रहे हैं, अब मुझसे सहा नहीं जाता, मैं सो जाता हूँ। तुम बल्कि खाना खा लो।"

मिनती ने कहा, "मैं नहीं खाऊँगी, भूख नहीं है। तुम क्या कहते हो, इसका कोई ठिकाना नहीं। मुन्ना को खाना मिला है या नहीं, उसका कुछ ठीक नहीं। मैं किस मुँह से खाऊँ !"

बात झूठी नहीं है एक ही लड़का है, वह अगर नहीं खाता है तो वे लोग माँ-बाप होकर खाना कैसे खा लें ! बिस्तर पर लेटते ही सत्यसुन्दर ने आँखें बन्द कर लीं। शायद झपकी आ गयी। अचानक उसे मिनती की आवाज सुनायी पड़ी, "इस तरह क्यों लेट गये ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "नहीं, मैं सोऊँगा नहीं।"

मिनती ने कहा, "तुमसे सोने के लिए कौन कह रहा है ? पैर ऊपर कर, तकिये पर सिर रखकर लेट जाओ।"

सत्यसुन्दर उसी तरह लेट गया। बिस्तर पर पैर फैलाकर सिर के नीचे तकिया रख लिया। उसके बाद ही उसे नींद आ गयी। कहाँ से इतनी नींद ने आकर उसे अपनी बाँहों में भर लिया ! जरा देर बाद ही उसकी नाक जोर-जोर से बजने लगी।

थोड़ी देर बाद मिनती भी बिस्तर पर अपनी जगह पर लेट गयी। लेकिन सत्यसुन्दर की तरह उसकी आँखों में नींद नहीं उतरी। नींद

हालाँकि आ सकती थी लेकिन अचानक उसे पुरानी बातें याद आने लगीं।

अशेषदत्त ! डिप्टी मैजिस्ट्रेट विश्वनाथ दत्त का लड़का !

यह तो जैसे सपना है।

पिता जी कहते, "भले ही बड़े आदमी का लड़का है मगर स्वभाव-चरित्र गुंडे जैसा क्यों है ?"

माँ कहती, "उस दिन देखा, हम लोगों के घर की ओर एकटक ताक रहा है।"

पिता जी बेहद गुस्सेवर आदमी थे। कहते, "क्यों ? हमारे मकान की ओर क्यों ताक रहा था ? तुमने कुछ भी नहीं कहा ?"

माँ कहती, "मैं क्या ? और कहूँगी भी तो मेरी बात मानेगा ? आखिर मुझे ही कहीं कुछ कह बैठे। तब क्या करूँ ?"

पिता जी कहते, "मैं समझ गया।" तुम्हारी लड़की का ही दोष है। तुम्हारी लड़की बढ़ावा न दे तो कोई मेरे मकान की ओर ताकने की हिम्मत कर सकता है ?"

उसके बाद जोर-जोर से कहने लगते, "तुम्हारी लड़की क्या कर रही है जी ? उसे बुलाओ तो जरा।"

माँ कहती, "मुझे बुलाने के लिए क्यों कह रहे हो ? तुम खुद बुला नहीं सकते ? तुम्हारे गले में आवाज नहीं है ?"

"ठीक है, मैं ही बुलाता हूँ ?"

यह कह कर पिता जी जोर से पुकारने लगते, "अरी मिनती, इधर आ।"

मिनती डरती हुई जैसे ही पास आकर खड़ी होती, पिता जी कहते, "विश्वनाथ दत्त का आवारा लड़का तेरी ओर क्यों घूरता रहता है ? उससे तेरा कौन-सा रिश्ता है ? बाप बड़ा आदमी है तो लड़का क्या यही सोचता है कि जो मर्जी होगी, वही करेगा ? सोचता है, हम मर चुके हैं ?"

माँ कहती, "उसे इतना फटकार क्यों रहे हो ? वह क्या करेगी ?"

बाबू जी और अधिक गुस्से में आ जाते थे।

कहते, "वह नहीं जानती है—इसका मतलब ? अगर वह नहीं जानती होती तो छोकरा इतनी हिम्मत कर सकता था ?"

माँ कहती, "यह सब बात इससे न कह कर उस छोकरे से कहो।

मिनती पूछती, "तुम लोगों के घर में किसी और आदमी को पता तो नहीं चल गया है ?"

झुनु कहती, "धत्त, मैं जो तेरे पास भैया की चिट्ठी ले आती हूँ, यह बात क्या कभी किसी से कहती हूँ ? ऐसा करूँगी तो भैया मुझे रुपया नहीं देंगे।"

मिनती बोली, "लगता है, तेरे भैया तुझे बहुत पैसा देते हैं।"

"बहुत।"

"कितना ?"

"एक-एक चिट्ठी के लिए कभी दो और कभी पाँच रुपये।"

"इतना रुपया लेकर तू क्या करती है ?"

झुनु ने कहा, "सबको खिलाती हूँ। उस दिन क्लास की तमाम लड़कियों को जो खीर का समोसा खिलाया, वह उन्हीं रुपयों से खिलाया था। अच्छी-अच्छी साड़ियाँ और ब्लाउज खरीदती हूँ। मेरे पास एक बक्सा है, उसी में जमा रखती हूँ। जानती है, मेरे पास ढेर सारे रुपये जमा हो गये हैं। डेढ़-दो सौ रुपये के करीब।"

मिनती कहती, "तेरे भैया तो नौकरी करते नहीं, फिर इतना पैसा उसे कहाँ मिलता है ?"

झुनु कहती, "माँ देती है। माँ के पास बाबू जी के ढेर सारे रुपये हैं। माँ भैया को बहुत मानती हैं, इसलिए भैया जब जितना पैसा माँगता है, माँ दे देती है। बाबूजी को कुछ पता नहीं चलना। बाबूजी को मालूम हो जाये तो गड़बड़ मचा दें।"

मिनती कहती, "तेरी माँ तुझे पैसा नहीं देती ?"

झुनु कहती, "माँ मुझे भी पैसा देती है, लेकिन भैया को चूँकि ज्यादा मानती है, इसलिए उसे ज्यादा पैसा देती है और मुझे कम।"

मगर यह दूतकर्म ज्यादा दिनों तक नहीं चल सका। आई० ए० पास करने के पहले ही झुनु की शादी हो गयी। उस विवाह में कितना विराट् आयोजन किया गया था ! कितने ही आदमी इस शादी के मौके पर निमंत्रित होकर दावत खाने आये। इतना विशाल आयोजन था कि बिना देखे उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस शादी के मौके पर मिनती को भी निमंत्रित किया गया था। लेकिन माँ ने अपनी लड़की को विवाह घर में अकेले नहीं जाने दिया था। साथ में एक नौकरानी थी। वह मिनती को अपने साथ ले गयी थी और हर वक्त उस पर निग-

रानी रखे रहा थी। उसके बाद खाना-पीना जब खत्म हो गया तो कोह-बर में बैठने के पहले ही मिनती को घर वापस ले आयी थी।

उसके बाद झुनु ससुराल चली गयी। मिनती का अशेष से संपर्क कम होता गया। कॉलेज जाने के समय ही बाजार में दो-चार बातें हो पाती थीं। जब उसके पिताजी की बदली हो गयी तो उन दोनों में पूरी तरह विच्छेद हो गया। उस समय उन दोनों को जोड़ने वाली बीच की कोई कड़ी नहीं रही।

हो सकता है, उसके बाद भी संबंध रहता। हो सकता है अशेष कॉलेज के पास आकर मिलता-जुलता। जीवन में कितने ही आदमी से विलगाव होता है, परन्तु इसके लिए क्या कोई माथापच्ची करता है? करता भी है तो शुरू-शुरू में। शुरू-शुरू में लोग आह भरते हैं। शायद छिपकर एकांत में रोते भी हैं। मगर उसके लिए कोई क्या जिन्दगी बर्बाद करता है? ऐसा होता तो दुनिया ही नहीं चलती। इतने शोक-संताप, और विरह के बावजूद आदमी फिर से हँसता है, रोता है और गृहस्थी बसाता है। ऐसे में ही पिता जी ने मिनती की शादी के बारे में एक जगह बातचीत की।

वर-पक्ष एक दिन दल-बल के साथ उसे देखने आया। मिनती से दो-चार सवाल किये। मिनती ने हर सवाल का सही-सही जवाब दिया। उन लोगों को पात्री पसन्द आ गयी। मिनती ने सुना, पात्र बहुत ही भला, ईमानदार और सुन्दर है। जॉन एन्डरसन नामक एक विलायती कंपनी में एक अच्छी नौकरी पर है और उसका भविष्य उज्ज्वल है। कभी उसकी तनख्वाह बढ़कर सात-आठ सौ रुपये भी हो सकती है। उस पात्र से शादी होगी तो मिनती बहुत ही सुखी होगी। खाना-पहनने का कोई अभाव नहीं रहेगा। जीवन के अन्तिम दिनों में कलकत्ते में एक मकान और कुछ बैङ्क बैलेन्स भी रहेगा।

एक शब्द में अगर कहा जाये तो मध्यवर्ग के समाज में ऐसे पात्र को राजपुत्र कहा जाता है। राजपुत्र!

यह शब्द अशेष ने कहा था। अशेष ही अपने आपको राजपुत्र कहता था और मिनती को महरानी। अशेष के बदले सत्यसुन्दर ही राजपुत्र बनकर आया और उसे महरानी बना गया और उसके बाद पार्वतीपुर लेकर चला गया।

मिनती ने फिर घड़ी की ओर देखा। सुइयाँ खिसकने का नाम ही नहीं ले रही हैं। जैसे वे एक ही जगह अटकी हुई हैं। हालाँकि जीवन की इतनी बड़ी दूरी की परिक्रमा वह एक ही निमिष में कर आयी। यह कितने दिन पहले की बात है! कितनी दूरी पर पड़े हुए जीवन की। कहाँ है वह पार्वतीपुर और कहाँ है वह अशेष!

इतने दिनों के बाद वही अशेष लौटकर आया तो इतने मर्मवेधक के रूप में क्यों आया? क्यों वह उसके मुन्ना को पकड़ ले गया?

मिनती एकाएक यूँ चौंक पड़ी जैसे उसकी निगाह भूत पर पड़ी हो।

सत्यसुन्दर सामने ही खड़ा है।

सत्यसुन्दर ने कहा, "यह क्या, तुम सोयीं नहीं?"

मिनती ने कहा, "नींद नहीं आयी।"

इसके उत्तर में सत्यसुन्दर क्या कहे। बल्कि उसे शर्म ही महसूस होने लगी। स्वयं आराम से सोकर उसने जैसे एक बहुत बड़ा अपराध किया है। बड़े अपराधी की तरह वह मिनती के सामने खड़ा रहा।

बोला, "मैं सो गया था।"

मिनती ने कहा, "सोकर अच्छा ही किया है। मुझे नींद आयी ही नहीं।"

सत्यसुन्दर ने जैसे अपने आप ही कहा, "मुन्ना ने रात कैसे गुजारी होगी, पता नहीं! बचपन से वह हम लोगों से कभी अलग नहीं रहा है। यह पहला मौका है—है न?"

मिनती ने इस बात का उत्तर नहीं दिया।

सत्यसुन्दर ने कहा, "आज बाजार जाना है न?"

मिनती ने कहा, "तुम्हें अगर कुछ खाने की इच्छा हो तो खरीद लाओ, मुझे भूख नहीं है।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मुझे भी कहाँ भूख है? मगर कुछ-न-कुछ खाना ही होगा। भूख न रहे तो भी खाना होगा।"

मिनती ने पूछा, "आज तुम दफ्तर जाओगे?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "दफ्तर जाने की इच्छा नहीं है, लेकिन रुपया तो चाहिए ही। बैंक से सात सौ रुपया निकालना होगा, बाकी तेरह सौ रुपया किसी से कर्ज लेना होगा। हमारे दफ्तर का दरबान सूद का कारोबार करता है, उसके पास जाऊँ या नहीं, यही सोच रहा हूँ।"

उसके बाद वह अपने आप ही कहने लगा, "आश्चर्य की बात है कि

आजकल पुलिस के लोग कितने रिश्वतखोर हो गये हैं। कहता है, दो हजार रुपया चाहिए। दो हजार रुपया कहाँ से लायें ? रुपया क्या कोई ठीकरा है जो माँगते ही दे दूँ ?"

सत्यसुन्दर ने मिनती के चेहरे की ओर देखा। उसके मुख से सत्य-सुन्दर की बात का कोई समर्थन नहीं मिला। सच तो है, मिनती क्या कहे ! मुन्ना के लिए उसका मन उदास है। रात में न तो खाना खाया है और न सोयी ही है। उसका कौन-सा दोष है !"

उसके बाद जरा देर के बाद बोला, "तुम उन लोगों को पहचानती हो ?"

"किन को ?"

वही जो सुना कि तुम लोगों का मकान एक ही जगह था—एक ही गाँव में। एक ही देस में।"

"किनका मकान हमारे देस में था ?"

"कहा न, कि थाने के बड़े बाबू का। अशेषदत्त या ऐसा ही कुछ नाम है। उनके पिताजी का नाम विश्वनाथ दत्त है। सुना है, वे वहाँ के डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे....।"

सत्यसुन्दर अपना कथन समाप्त करे कि इसके पहले ही मिनती बोल उठी, "मैं उन लोगों को कैसे पहचानूंगी, बताओ तो सही। मैं क्या देस के सभी आदमी को पहचानती हूँ ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "नहीं-नहीं, मैं यह बात नहीं कह रहा हूँ। मेरे कहने का मतलब है कि तुम पहचानती होती तो मैं तुम्हारा नाम बताता तब हो सकता है, पैसा बच जाये और मुन्ना को कोई तकलीफ न हो।"

तब सुबह हो चुकी थी, बाहर खिड़की के पल्ले की कुंडी खटखटाने की आवाज हुई। लगता है, नौकरानी शायद आ गयी है।"

हाँ, नौकरानी आ गयी है। बहुत सारा खाने का सामान पड़ा था, क्योंकि किसी ने खाना नहीं खाया था। कोई बरतन भी जूठा नहीं है। माँजने के लिए कोई चीज नहीं है। रोटी-सब्जी-मछली वगैरह पोटली में बाँधकर वह अपने घर ले गयी। आज का सवेरा और दिनों के सवेरे की तरह नहीं लगा। मिनती को चाय पीने की भी इच्छा नहीं है। हालाँकि दूसरे दिन चाय न मिलती थी तो उसका सिर दुखने लगता था।

थोड़ी देर बाद अखबारवाला अखबार दे गया। फिर भी किसी में कौतूहल नहीं है कि अखबार पढ़े।

मुहल्ले के रास्ते में फिर से लोगों का आना-जाना शुरू हो गया। पिछली रात जिस विभीषिका ने पूरे परिवेश को जहरीला बना दिया था, वह अब जैसे दूर हो गया। सूर्य ने उगने के साथ ही जैसे सारे अँधेरे को धो-पोंछ दिया और चारों तरफ उजाला फैल गया।

रास्ते में जिससे भी मुलाकात होती है, वही पूछता है, "कल किनके-किनके बच्चों को पकड़कर ले गये ?"

एक दूसरे आदमी ने पूछा, "बम वगैरह मिला है क्या ?"

एक और आदमी ने एक दूसरे आदमी से पूछा, "आप उस वक्त कहाँ थे ?"

"भाग्य कहिए कि मैं पाँच मिनट पहले ही घर के अन्दर घुस गया था तभी राहत मिली, वरना मुझे भी सबकी तरह रुक जाना पड़ता।"

यह भी एक अनुभव ही है। इस मुहल्ले के आदमी के लिए यह एक वेधक अनुभव है। कहीं कुछ नहीं था, अचानक सिपाही और सैनिक पहुँच गये और बन्दूक-राइफल का निशाना साधकर अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो गये। उसके बाद घर-घर में आक्रमण का दौर चलने लगा। कहाँ-कहाँ गुंडे लड़के हैं, पुलिस को इसकी जानकारी है। उन मकानों के अन्दर जाकर उन लोगों ने चीजों को तितर-बितर कर दिया और गुंडा-बदमाशों की तलाश करने लगे। कोई मिल गया और कोई मिला ही [illegible]। लेकिन उन लोगों की चेष्टा में कोई त्रुटि नहीं रही। वे लोग [illegible]हल्ले में अमनचैन कायम करके ही रहेंगे।

सत्यसुन्दर दफ्तर चला जा रहा था।

रात के उस आदमी से आमने-सामने मुलाकात हो गयी।

पूछा, "क्या हुआ, "आपका लड़का कहाँ है ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "उसी हवालात में।"

"छुड़ाने का आपने कोई इन्तजाम किया ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "उसी का तो इन्तजाम करने जा रहा हूँ, रुपये का इन्तजाम न हो सका तो कुछ भी नहीं होगा।....और आप ?"

"मैं सवेरे ही छुड़ाकर ले आया।"

"कितना रुपया देना पड़ा ?"

"उन लोगों ने दो हजार रुपयों की ही माँग की थी। मैंने गिड़गिड़ाकर एक हजार रुपये पर राजी कर लिया।"

"माँ, माँ !"

मिनती अवाक् हो गयी। यह तो मुन्ना की आवाज है !

एक ही छलाँग में सदर दरवाजे के पास पहुँचकर उसने ज्यों ही दरवाजा खोला, वह चकित रह गयी। सिर्फ मुन्ना ही नहीं है, उसके साथ एक विधवा महिला भी है।

"क्यों री मिनती, पहचान नहीं रही है ?"

घर के सामने ही सड़क पर एक गाड़ी कब आकर खड़ी हो गयी थी, मिनती को इसकी आहट भी नहीं मिली थी।

मुन्ना बोला, "माँ, मुझे पुलिस ने छोड दिया।"

मुन्ना को पकड़कर छाती से लगाते समय मिनती की छलछलायी आँखों के सामने धुंधलापन तिर आया। बोली, "मुन्ना मेरे राजा वेटे, तुम्हें बहुत ही तकलोफ उठानी पड़ी ?"

महिला तब खड़ी-खड़ी हँस रही थी।

बोली, "नहीं री, तकलीफ क्यों होगी ? मैं तेरे लड़कों को खिला-पिलाकर ले आयी हूँ।"

मिनती तब भी पहचान नहीं सकी। बोली, "आपको मैं ठीक से पहचान....।"

महिला बोली, "मैं झुनु हूँ।"

"झुनु ! सिर पर अगर आसमान भी टूटकर गिर पड़े तो कोई ऐसा चकित नहीं हो सकता। मगर झुनु का चेहरा ऐसा क्यों हो गया ! इस तरह की वेश-भूषा क्यों है। झुनु कब विधवा हुई ?

झुनु बोली, "बहिन वह बहुत बड़ा कांड है। तू यहाँ तो थी नहीं, इसीलिए तुझे मालूम नहीं हो सका। रहती भी तो पता भी नहीं चलता। जैसा वक्त आ गया है कि कौन किसकी खोज-खबर लेता है ?

मिनती बोली, "सचमुच मैं तुझे पहचान ही नहीं सकी।"

झुनु बोली, "मैंने तुझे ठीक-ठीक पहचान लिया था। कल मैं भैया के घर पर आयी हूँ। भैया इतने व्यस्त रहे कि उनसे मैं मिल ही नहीं सकी। पुलिस की नौकरी है न, भैया को नहाने-खाने का भी वक्त नहीं मिलता।"

फिर भी मिनती की समझ में कुछ नहीं आया।

पूछा, "तेरे भैया का मतलब....?"

झुनु बोली, "बाप रे, भैया को तू बिलकुल भुला बैठी ? तुम लोगों

के इस मुहल्ले के अशेष भैया ओ० सी० हैं। तेरा वही राजपुत्र! कुछ याद नहीं है?"

"इसका मतलब? मुझे कोई जानकारी नहीं थी।"

झुनु बोली, "मुझे ही कहाँ पता था कि तू इस मुहल्ले में है। भैया को भी मालूम नहीं था।

"कैसे पहचान गयी?"

झुनु ने उसी के बारे में बताया। जिन लड़कों को पकड़कर लाया गया था उनमें से हर लड़के के पिता का नाम और पता पूछ-पूछकर खाते में लिखा जा रहा था। एक नाम सामने आते ही थाने के ओ० सी० अशेषदत्त चौंक पड़े।

एस० आई० से कहा, "इस लड़के को मेरे पास भेज दें।"

"किस लड़के को, सर?"

यह जो शोभन सरकार नाम लिखा हुआ है।

शोभन सुन्दर सरकार को तत्क्षण बुलाया गया।

ओ० सी० अशेषदत्त ने गौर से लड़के के चेहरे की ओर देखा। चेहरा पहचाना-पहचाना जैसा लगा। ठीक उसी तरह का चेहरा—[illegible] है, हाँ, उसी तरह का चेहरा! हू-ब-हू एक जैसा। कोई अन्तर नहीं।

पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

लड़के ने कहा, "मेरा पुकार का नाम है [illegible], इसीलिए सब मुझे [illegible] कहकर पुकारते हैं।

"तुम्हारा अच्छा नाम क्या है? यहाँ स्कूल में तुम्हारा क्या नाम लिखा हुआ है?"

अशेषदत्त ने अब कोई सवाल नहीं किया। बोले, "तुम मेरे साथ आओ।"

यह कहकर वे मुन्ना को साथ लिए सीधे अपने क्वार्टर की ओर चल दिये। एस० आई० भादुड़ी ने पूछा, "सर, आप क्या अभी लौटकर आइएगा ?"

अशेषदत्त ने कहा, "कह नहीं सकता। एक काम करो, शोभन सुन्दर सरकार का नाम लिस्ट से काट दो। चालान लिख लो।"

"ठीक है, सर।"

अपने क्वार्टर के अन्दर प्रवेश करते ही अशेषदत्त ने पुकारा, "झुनु, ओ झुनु।"

झुनु एक दिन पहले अपने भैया के यहाँ घूमने-फिरने आयी थी और उसके दूसरे दिन ही ससुराल चली जाने वाली थी।

भैया की पुकार पर जैसे ही वह निकट आयी, अशेषदत्त ने कहा, "इसे देखा है ? पहचान रही है ?"

झुनु ने गौर से मुन्ना की ओर देखा। लेकिन कुछ समझ नहीं सकी। "मैं ठीक से पहचान नहीं पा रही हूँ, भैया। कौन है ?"

अशेषदत्त ने कहा, "पहचान नहीं रही है ? ऐसा क्यों ? इसका चेहरा-मोहरा तुझे पहचाना-पहचाना जैसा नहीं लगता ?"

झुनु ने कहा, "नहीं।"

अशेष ने कहा, "यह मिनती का बेटा है। अब पहचान में आया ?"

"मिनती—यह मिनती का बेटा है ? यहाँ कैसे आया ?"

अशेषदत्त ने कहा, "वे लोग उसे कल पकड़ कर ले आये हैं।"

झुनु ने पूछा, "तुमने कैसे पहचाना कि यह मिनती का लड़का है ? सुना है, मिनती पार्वतोपुर में रहती है।"

अशेष ने कहा, "इससे जिरह करने पर पता चला। इसने बताया कि इसके पिता का नाम सत्यसुन्दर सरकार है और माँ का मिनती।"

झुनु ने कहा, "इसका चेहरा-मोहरा भी मिनती की तरह ही है। लगता है, मिनती का चेहरा बिठा दिया गया हो।"

अशेष ने कहा, "कल जब इन लोगों के मुहल्ले की घेराबन्दी करने गया था, हमारे स्टाफ के लोग दूसरे-दूसरे लोगों के साथ इसे भी पकड़ कर ले आये थे।"

झुनु ने पूछा, "यह क्या रात-भर हवालात में था ?"

"हाँ। मुझे पहले मालूम ही नहीं था।"

"इसके पिता जी को कोई खवर नहीं मिली है ? तुमसे मिलने नहीं आये ?"

अशेष ने कहा, "पता नहीं। कितने ही आदमी मिलने आये थे, सवसे मिल नहीं सका था। कल रात वहुत देर तक लोग आते रहे, उनसे मिलते-जुलते रात का लगभग एक वज गया। वहुत से आदमी लौटकर भी चले गये थे।"

उसके वाद जरा रुक कर वोले, "तू एक काम कर सकती है ?"

"क्या ?"

अशेष ने कहा, "वहुत तकलीफ उठानी पड़ी है। एक काम कर। इसे नहला-धुलाकर अच्छी तरह खाना खिला दे। रात-भर इसे वहुत तकलीफ झेलनी पड़ी है। जरा अच्छी तरह खिला दे, झुनु, वरना मुझे वहुत ही लज्जित होना होगा।"

झुनु ने उसी समय मुन्ना को नहला-धुलाकर अच्छी तरह खाना खिलाया। उसके वाद अशेष ने आकर देखा।

मुन्ना को वुलाकर पूछा, "तुम्हारा पेट भर गया है न ?"

मुन्ना ने कहा, "हाँ।"

"कल रात तुम्हें तकलीफ हुई थी ?"

मुन्ना ने कहा, "हाँ, वहुत तकलीफ हुई थी।"

अशेष ने कहा, "अपनी माँ से जाकर कहना कि मुझे कुछ भी मालूम नहीं था।"

मुन्ना कुछ भी नहीं वोला। लेकिन इस वीच अशेष और एक कांड कर वैठे, पुलिस भेजकर वाजार से मुन्ना के लिए कमीज-पैंट खरीदवा-कर मँगवा दिया। उसे वही कपड़ा पहनने को कहा।

उसके वाद झुनु को गाड़ी पर विठाकर कहा, "इसी गाड़ी पर इसे विठाकर पहुँचा आ और कहना....."

यह कहकर अशेष रुक गया। उसके वाद वोला, "नहीं रहे, कुछ कहने की जरूरत नहीं। लोग-वाग मेरे वारे में वहुत तरह की वातें करते हैं। करने दे। पुलिस की नौकरी कर रहा हूँ, इसलिए वदनाम करने के वदले लोग क्या मुझे फूलों का गजरा पहनायेंगे ?"

यह कह कर वे चुप हो गये और वहाँ फिर खड़े नहीं रहे। सीधे अपने दफ्तर की ओर चले गये।

उसके बाद झुनु मुन्ना को सीधे यहीं ले आयी है।

मिनती ने पूरी कहानी सुनी। बोली, "मैं लेकिन बहिन, मुझे बिलकुल नहीं पहचान सकी। तुमसे यहाँ इस तरह मुलाकात हो जायेगी, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी।"

झुनु ने कहा, "वह बहुत बड़ा कांड है, बहिन। अब सब कुछ भूल भी चुकी हूँ।"

"मगर कैसे हुआ?"

झुनु बोली, "वह सब बात रहे। बाद में किसी दिन बताऊँगी। पहले तू खा-पी ले। तू जरूर ही कल से निराहार है। मगर इसके पहले अपने लड़के को सुला आ, इसकी आँखें नींद से झपक रही हैं। रात-भर इसे हवालात में रहना पड़ा है न। तेरे मिस्टर कहाँ हैं? सत्य-सुन्दर बाबू जी? उन्होंने भी खाया-पिया नहीं होगा।"

"नहीं, वे रुपये की तलाश में निकले हैं।"

"रुपये की तलाश में? इसका मतलब?"

मिनती ने कहा, "मुझे कुछ भी मालूम नहीं?

झुनु ने कहा, "क्या?"

मिनती ने कहा, "तेरे भैया ने दो हजार रुपये की रिश्वत माँगी है, इसलिए वे रुपये का इन्तजाम करने ऑफिस गये हैं। अपने भैया से जाकर कहना, इस तरह से रिश्वत लेने से न तो किसी की भलाई हुई है और न होगी।"

"इतनी बात सुनने के बाद भी तू यह बात कह रही है? इतने दिनों से उससे जान-पहचान रहने के बावजूद यद बात कहने में तुझे झिझक नहीं हुई।"

मिनती बोली, "पुलिस छू ले तो छत्तीस जख्म, यह बात हम बचपन से सुनते आ रहे हैं। मगर अपराध न रहने पर भी जख्मी होना होगा? मेरे मुन्ना ने कौन-सा अपराध किया था कि आज उसे इतनी बड़ी सजा भोगनी पड़ी? हो सकता है, जान-पहचान न रहती तो और भी बड़ी सजा मिलती।"

झुनु ने कहा, "जानती हूँ, तू भैया पर यकीन नहीं कर पायेगी। भैया

को भी यह बात मालूम है। चूंकि मालूम है इसीलिए उसने कहा था, उसके गले में कोई गजरा नहीं पहनाता है।"

मिनती ने कहा, "अगर इतना ज्ञान है तो खुद क्यों नहीं आ सके ? मुझे मुँह दिखाने में शर्म लगी ?"

यह कहकर मिनती ने मुन्ना को ले जाकर सुला दिया। बोली, "तू यहाँ सो रह।"

मुन्ना बिस्तर पर लेट गया। रात-भर न तो उसने खाया है और न ही वह सोया है। नींद की वजह से उसकी पलकें झपक रही हैं। मुन्ना को सुलाकर उसने कमरे की खिड़की दरवाजे बन्द कर दिये ताकि अँधेरा छा जाये।

झुनु भी उसके पीछे-पीछे आयी थी। कमरे का दरवाजा बन्द कर मिनती [illegible], वह झुनु के आमने-सामने खड़ी थी।

झुनु ने कहा, "जानती है, तेरा लड़का बड़ा ही सीधा-सादा है। देखने में ठीक तेरे ही जैसा लगता है, तेरा चेहरा बिठा दिया गया हो। उस चेहरे को देखकर ही भैया को यकीन हुआ कि यह जरूर ही तेरा लड़का है।"

मिनती ने कहा, "बार-बार अपने भैया का नाम क्यों ले रही है ?"

झुनु हँसती हुई बोली, "सचमुच तेरी जबान बड़ी तीखी हो गयी है। पहले तू ऐसी नहीं थी। ऐसा क्यों हुआ ?"

मिनती ने कहा, "यह बात तू समझ नहीं पायेगी।"

झुनु ने कहा, "क्यों ? मैं जरूर समझूंगी। तू [illegible] जाऊँगी। ले, कह।"

मिनती ने कहा, "जबान के तीखेपन की बाबत [illegible] है, तू मेरी क्लास फ्रेण्ड है। तुझसे भी मीठी [illegible] हालाँकि तुझसे इतने बरसों के बाद मुलाकात हुई है [illegible] की थी ?"

उसके बाद जरा रुक कर बोली, [illegible] नहीं खाया है। वे फिर भी कुछ देर [illegible] नींद नहीं आयी। हमारे [illegible] बड़ा लगता है, मगर क्या [illegible] है। कौन-सी कमीज और पैंट [illegible], पहनना नहीं है। और, तेरे भैया [illegible]

गये। इसके बाद भी मेरी जबान के तीखेपन की बात करेगी ? तूने सिर्फ मेरी जबान का तीखापन ही देखा ? मेरे मन की हालत के बारे में एक बार भी गौर नहीं किया ?"

झुनु बोली, "नहीं बहिन, मैं चलती हूँ, एक तो तूने खाना नहीं खाया है, उस पर यह सब बात कह कर तेरा दिमाग गरम क्यों कर दूँ ?

यह कह कर उसने सदर दरवाजे की ओर कदम रखे।

मिनती ने कहा "जानती हूँ, तुझे मुझ पर बहुत ही गुस्सा आयेगा।"

झुनु ने कहा, "गुस्सा तो आयेगा ही। भैया के घर एक दिन के लिए आयी थी, उस समय भी पता नहीं था कि तुझसे मुलाकत हो जायेगी। लेकिन भाग्यवश मुलाकात हुई भी तो मुंह मीठा करने के बदले गाली-गलौच सुनकर जाना पड़ रहा है।"

मिनती ने कहा, "मुझे क्या कम तकलीफ झेलनी पड़ी है ?"

झुनु बोली, "मैं, बहिन फिर आ नहीं पाऊँगी। आज ही यहाँ से चल देना है।"

"क्यों ? आज ही क्यों ? और दो-चार दिन रुक नहीं सकती ?"

झुनु बोलो, "कैसे रुकूं ? मेरी घर-गृहस्थी जलपाईगुड़ी में पड़ी हुई है।"

"हाँ तेरी शादी तो जलपाईगुड़ी में ही किसी जमींदार के घर में थी।"

झुनु बोली, "खाक जमींदार ! ससुर की वहाँ कुछ जमीन थी, इस-लिए सब कुछ देखने-सुनने का भार मुझ पर पड़ा है। ससुराल में बहिन, मिट्टी और धूल के सिवा कुछ मिला ही नहीं....."

यह कह कर झुनु ने एक लंबी उसाँस ली।

सड़क पर उस समय भी गाड़ी झुनु की प्रतीक्षा में खड़ी थी। मिनती के मन में एकाएक झुनु के लिए समवेदना जग उठी।

सचमुच ही वह झुनु से सुखी है। झुनु के विवाह के उपलक्ष्य में कितना विराट् आयोजन किया गया था, यह बात उसे याद है। कितने ही लोग कितनी दूर-दूर से आकर पत्तल बिछाकर खाना खाने बैठे थे !

और गहना ! झुनु को शादी के मौके पर जितना गहना मिला था, उसकी सहेलियों में से किसी को भी उतना गहना न मिला था। शायद एक अनन्त ही कुल मिलाकर डेढ़ सौ तोले का होगा।

लेकिन आज !

मनुष्य के भविष्य के बारे में कौन बता सकता है ! उसी झुनु का आज यह कपड़ा-लत्ता ! वह ससुराल की जायदाद के संबंध में अपने भाई से सलाह-मशविरा करने आयी है।

मिनती ने पूछा, "अपनी जायदाद के संबंध में भैया से तू क्या सलाह-परामर्श करेगी ?"

झुनु का चेहरा उतर गया।

बोली, "बहिन, देवर और जेठों ने मुकदमा दायर कर दिया है, उसी के बारे में सलाह-मशविरा करना है। मगर यह सब मैं किसके लिए कर रही हूँ, इसके बारे में भी मुझे कोई जानकारी नहीं है।"

"तेरे भैया का क्या कहना है ?"

झुनु बोली, "भैया ? भैया को तो तू पहचानती है री। किसी मर्द से सलाह-मशविरा करना चाहिए, यही सोचकर भैया के पास आयी थी। भैया खुद किससे सलाह-मशविरा करते हैं कि मुझे सलाह-मशविरा देंगे ?"

मिनती को आश्चर्य हुआ।

पूछा, "क्यों ? पुलिस की नौकरी में है तो तुझे मतलब की बात नहीं बता सकते ? क्या कह रही है ?"

झुनु बोली, "यही बात तो मैंने भैया से कही थी कि तुम पुलिस के नाम पर कलंक हो। इतने दिनों से नौकरी कर रहे हो, मगर बैङ्क में तुम्हारा एक भी पैसा जमा नहीं है। इस बात पर कोई यकीन करेगा ?"

मिनती सुनकर हैरान रह गयी।

बोली, "यह क्या, बैङ्क में तुम्हारे भैया का पैसा जमा नहीं है ?"

झुनु बोली, "कल यह देखकर मैं अवाक् हो गयी। भैया से कहा : 'भैया तुम हमेशा हिसाब-किताब में इसी तरह लापरवाह रहोगे ?' भैया सुनकर हँसने लगे। उसके बाद मुझसे क्या कहा, जानती है ?

मिनती तीव्र कौतूहल के साथ झुनु की बातें सुनने [illegible]

"क्या ?"

"भैया बोले : बैङ्क में पैसा जमा करके क्या [illegible] पैसा जमा करूँ ? मेरा है ही कौन जो उसका [illegible]

मिनती बोली, "क्यों, तेरे भैया के [illegible]

"बाल-बच्चे ? तू क्या कह रही है ? [illegible] है।"

झुनु तब गाड़ी पर बैठ चुकी थी।

मिनती गाड़ी के सामने आ झुक कर खड़ी हो गयी।

पूछा, "तेरे भैया ने शादी नहीं की? क्यों नहीं की?"

झुनु बोली, "अरी, भैया को तो तू पहचानती है। भैया किसी भी मामले में सीरियस नहीं है, इसलिए विवाह को भी उस वक्त सीरिअसली नहीं लिया। अब भैया के क्वार्टर में आकर देख रही हूँ, उसकी गृहस्थी घर के बजाय होटल बन गयी है। इसका कोई ठिकाना नहीं कि कितने आदमी आकर खाते और रहते हैं।"

बात सुनते-सुनते मिनती एकबारगी अपने जीवन के बीस वर्ष पीछे पहुँच गयी थी।

झुनु की बात सुनकर उसका ध्यान टूटा।

झुनु बोली, "अच्छा, चलती हूँ, बहिन, पता नहीं फिर कब मुलाकात होगी।"

गाड़ी मिनती की आँखों में धुआँ उगलती हुई मुहल्ले के बाहर आँखों से ओझल हो गयी।

से अधिक झंझट सत्यसुन्दर को ही उठानी पड़ी। जॉन एन्डरसन चालीस बरसों से हिन्दुस्तान में आयात-निर्यात का काम करती आ रही है। ब्रिटिश जमाने से ही। अलग-अलग जगहों में कम्पनी की शाखाएँ हैं। कानपुर, इलाहाबाद, मद्रास, बंबई और पार्वतीपुर में। सब जगह उसका दफ्तर है।

मगर असली दफ्तर इस कलकत्ते में ही है। यानी जिसे मुख्यालय कहते हैं।

हर कोई हेड-ऑफिस ही आना चाहता है। यहाँ आने का मानी सिर्फ मिलना-जुलना या समाज-सामाजिकता ही नहीं, बल्कि उसके साथ-साथ बहुत ज्यादा पैसा भी मिलता है। लगभग दो-तीन सौ रुपये अलग से मिल जाते हैं।

कलकत्ता आने का कारण मिनती ही है। मिनती ने बार-बार सत्य-सुन्दर पर कलकत्ता आने के लिए दबाव डाला था। मिनती ने ही

बंगाली और बङ्गाली-समाज के बीच रहना चाहा था। बात तो सच ही है, बङ्गाल छोड़कर कितने दिनों तक रहा जा सकता है ?

लेकिन यहाँ आते ही गड़बड़ शुरू हो गयी। स्कूल-कॉलेज की प्रयोगशालाएँ टूटने लगीं। बस-ट्राम की हड़ताल शुरू हो गयी। एकाएक बात-बात में ट्राम का होलिका-दहन होने लगा। बम के डर से लोगों ने शाम के बाद बाहर निकलना बन्द कर दिया। बेवजह कुछ लोग चुन-चुन कर आदमी की हत्या करने लगे।

तभी मिनती के मन में सवाल पैदा हुआ कि वह यहाँ क्यों आयी।

सत्यसुन्दर को दफ्तर से लौटने में देर होती तो मिनती चिन्ता से व्याकुल हो उठती थी। बार-बार खिड़की के पास आकर सड़क की ओर ताकती रहती थी—

क्यों, अब तक क्यों नहीं आये ?

और मुन्ना ?

स्कूल जाने से लेकर तीसरे पहर तक की अवधि मिनती गहरी चिंता में बिताती थी।

मुन्ना के सामने भोजन परोस कर बार-बार पूछती, "मुन्ना तुम किसी से मिलते-जुलते तो नहीं, मुन्ना ? किसी बुरे लड़के के साथ बातचीत तो नहीं करते ?"

मुन्ना कहता, "नहीं।"

मिनती कहती, "नहीं बेटा, नहीं मिलना। जो लोग पार्टी में हैं उनसे तो हर्गिज नहीं।"

मुन्ना कहता, "सभी पार्टी में हैं, माँ। मुझसे हर कोई पार्टी का चन्दा माँगता है।"

मिनती कहती, "कहना, माँ से पूछूँगा, माँ कहेगी तो चन्दा दूँगा।"

मुन्ना कहता, "चन्दा देना ही बेहतर है, माँ।"

"क्यों ?"

मुन्ना कहता, "हर रोज तंग करता है। इससे तो बेहतर है कि चंदा दे ही दिया जाय, फिर कोई गड़बड़ नहीं करेगा।"

मिनती कहती, "चन्दा लेकर वे लोगा क्या करेंगे ?"

मुन्ना कहता, "वे लोग चन्दे के पैसे से बीड़ी-सिगरेट पीते हैं, दुकान में घुसकर चॉप-काटलेट खाते हैं।"

मिनती कहती, "तुम वह सब चीज खाना-पीना नहीं। अच्छे लड़के वह सब चीज खाते-पीते नहीं, समझे? जो लोग बुरे हैं वे ही पैसे के लालच में पार्टी में रहते हैं। तुम उन सब चीजों में ध्यान मत लगाना, बेटा। सिर्फ अपनी लिखाई-पढ़ाई में ही ध्यान लगाओ, इससे भविष्य में तुम्हारी भलाई होगी, बाद में चलकर तुम उन लोगों की अपेक्षा बड़े आदमी होगे।"

यह सब प्रारंभ की बात है। तब घर में एकाकी बैठी मिनती पति और पुत्र की चिन्ता के अतिरिक्त दूसरा कोई काम नहीं कर पाती थी। फिर उसकी जैसी औरत इसके सिवा कर ही क्या सकती है?

उसके बाद ही यह घटना घटी।

सत्यसुन्दर ने उस दिन जाकर साहब से सारी बात खुलकर बतायी। साहब अँग्रेज है। सहानुभूति के साथ उसने सारी बात सुनी।

बोला, "बताओ तो सरकार, ऐसा क्यों हो रहा है? इसकी वजह क्या है? यह सब पॉलिटिक्स की बावत मैंने कभी माथा पच्ची नहीं की है। शुरू से सिर्फ ऑफिस का काम-धाम ही करता आ रहा हूँ। इसके अलावा मैं कलकत्ते में नया-नया आया हूँ।"

साहब ने कहा, "ठीक है, तुम जाकर थाने से लड़के को छुड़ाकर ले आओ।"

छुट्टी पाकर सत्यसुन्दर पहले बैङ्क गया। बैङ्क के काउन्टर पर ज्यादा देर नहीं लगी। कुल मिलाकर सात सौ पन्द्रह रुपया जमा था—सेविंग्स एकाउन्ट में। वहाँ से फिर ऑफिस आया।

दरवान सत्यनारायण से पहले ही कह दिया था। वह तेरह सौ रुपये का इन्तजाम करके तैयार रहेगा।

सत्यसुन्दर के आते ही सत्यनारायण ने कहा, "मैंने गिनकर रख दिया है, बाबू, फिर भी आप खुद गिन लें।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "तुमने गिन लिया तो फिर मेरे लिए गिनना कोई जरूरी नहीं है। ठीक ही होगा।"

यह कह कर वह रुपये जेब में रखने जा रहा था।

लेकिन सत्यनारायण माना नहीं। बोला, "नहीं बाबू, रुपया हराम की चीज होता है और हराम की चीज पर यकीन नहीं किया जा सकता। आप पहले गिन लें, फिर जेब में रखें।"

अन्ततः उसे गिनना पड़ा ।

गिनना खत्म होने के बाद सत्यनारायण के खाते में हस्ताक्षर कर सत्यसुन्दर उठ कर खड़ा हुआ । बोला, "अच्छा, चलूं, सत्यनारायण ।"

वहाँ से वह सीधे कोतवाली गया । उस समय भी कोतवाली में बहुत से आदमियों के आने-जाने का सिलसिला लगा हुआ था । दलाल किस्म के कुछ आदमी सत्यसुन्दर को देखते ही आगे बढ़ आये ।

बोला, "क्या चाहिए , सर ? किससे मिलना चाहते हैं ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "बड़े बाबू से मिलना है ।"

दलाल ने कहा, "बड़े बाबू से क्यों मिलना है ? कोई काम है ?"

"हाँ, बिना काम का कोई कोतवाली आता है ? पुलिस को अपना चेहरा दिखाने की इच्छा होती है ?"

"सो तो है ही । बताइये क्या काम है ? हो सकता है हमीं कर दें ।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "अपने लड़के को छुड़ाने आया हूँ ।"

"लड़के को ? अपने लड़के को ? कौन-सा मुहल्ला ? घर का नम्बर ? नाम ?"

सत्यसुन्दर ने जैसे ही मुहल्ले का और अपना नाम बताया, दलाल ने कहा, "आपके लड़के को कोर्ट ले जाया गया है ।"

"क्यों, कोर्ट क्यों ?"

दलाल ने कहा, "मुजरिम को कोर्ट नहीं ले जाया जाता है ? आप क्या कह रहे हैं ?"

सत्यसुन्दर किस तरह बात की चर्चा करे, उसकी समझ में नहीं आया । फिर भी एक बार चेष्टा करने की कोशिश की ।

बोला, "एक बात कहनी थी ।"

"क्या बात है, बताइए ।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मैं कुछ रुपया ले आया था । सुना था, रुपया मिलने पर बड़े बाबू लड़कों को छोड़ देते हैं । यह बात क्या सच है ?"

दलाल हँसकर बोला, "आपने जो कुछ सुना है, सही है । मगर यह बात किसी से मत कहिएगा । पता चल जाय तो बड़े बाबू बिगड़ेंगे ।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "सो तो है ही । कोई भी क्या खुल्लमखुल्ला पैसा लेता है । लोग छिपाकर ही लेते हैं ।"

उसके बाद जरा रुककर बोला, "कितना रुपया देना होगा ?"

दलाल ने कहा, "बड़े बाबू दो हजार से कम में नहीं छोड़ेंगे। बड़े बाबू ने यही रेट कायम कर दिया है।"

सत्यसुन्दर जेब से रुपया निकालने जा रहा था, तभी बड़े बाबू उस ओर आते हुए दिखे।

सामने आते ही पूछा, "आपको क्या चाहिए ?"

सत्यसुन्दर की आँखें छलछला आयीं। बोला, "मेरा लड़का पकड़ लिया गया है। वह आपकी हवालात में बन्द है।"

बड़े बाबू ने पूछा, "नाम क्या है ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "शोभन सुन्दर सरकार।"

"आपका नाम ?"

"सत्यसुन्दर सरकार।"

बड़े बाबू कुछ देर तक सत्यसुन्दर को आपादमस्तक ताकते रहे। उसके बाद बोले, "आपके लड़के को छोड़ दिया है।"

"छोड़ दिये हैं ?"

"हाँ, घर जाने पर उसे आप वहीं पाइएगा।"

सत्यसुन्दर के मुँह से बहुत देर तक एक भी शब्द बाहर नहीं निकला। उसके बाद उसने कहा, "मैं आफिस से दो हजार रुपया कर्ज लेकर आया था।"

"आये थे तो अच्छा किया था। आपको रुपया नहीं देना है। आप लाने क्यों गये ? आपसे रुपया लाने को किसने कहा ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "आपके आदमी ने ही मुझसे कहा था।"

बड़े बाबू कुछ भी नहीं बोले। इतना ही कहा, "जिसने कहा था, ठीक ही कहा है। पुलिस की नौकरी पर हूँ तो रिश्वत नहीं लूँगा ? यह क्या संभव है, आप ही बताइए।"

सत्यसुन्दर अब क्या कहे। वह कुछ देर तक खामोश रहा। इस घटना पर विश्वास करना उसे अच्छा लगा।

बोला, "फिर आपका कहना है कि मैं घर चला जाऊँ ?"

बड़े बाबू बोले, "हाँ, आप घर चले जाइए।"

"घर पहुँचने पर लड़का मिल जायेगा न ?"

"जरूर। मैं जबान दे रहा हूँ।"

सत्यसुन्दर अब खड़ा नहीं रहा। नमस्कार कर जल्दी-जल्दी घर की ओर कदम बढ़ाया। अगर सत्यसुन्दर उड़ पाता तो वह उड़कर ही

जाता। उसे महसूस होने लगा, कोतवाली से उसके घर की दूरी जैसे एकाएक बढ़ गयी है।

घर के सामने आकर सदर दरवाजे को जोर-जोर से खटखटाने लगा।

"मुन्ना, मुन्ना।"

पुकारते ही मिनती ने दरवाजा खोल दिया।

सत्यसुन्दर मिनती के चेहरे की ओर देखकर घर की हालत का अनुमान लगाने की कोशिश करने लगा। पूछा, "मुन्ना आ गया है?"

"हाँ।" मिनती ने कहा।

"कब आया?"

"दोपहर में।"

सत्यसुन्दर ने पूछा, "मुन्ना क्या कर रहा है? उसने खाना खा लिया?"

मिनती बोली, "हाँ, खा-पीकर सो रहा है।"

"तुमने खाना खा लिया है?"

"नहीं।" मिनती ने कहा।

"तुमने क्यों नहीं खाया है?"

मिनती ने कहा, "तुमने भी तो नहीं खाया है। तुम बिना खाये रहो तो मैं कैसे खाना खा लूँ?"

इस बीच सत्यसुन्दर कपड़ा बदल चुका है। वह जल्दी-जल्दी खाना खाने बैठ गया। मिनती भी खाने बैठी। खाना का सामान है ही क्या। मिनती ने रसोई नहीं पकायी थी। झुनु के जाते ही उसने चूल्हा सुलगाया था और चावल और आलू का भुरता बना लिया था।

खाना खाते-खाते सत्यसुन्दर ने एकाएक कहा, "मुन्ना को बहुत तकलीफ हुई थी?"

मिनती ने कहा, "हाँ।"

जरा रुककर सत्यसुन्दर फिर बोला, "कैसा कांड है! मैं दो हजार रुपया लेकर बड़े बाबू को देने पहुँचा मगर बड़े बाबू ने रुपया नहीं लिया। बोले : 'आपके लड़के को छोड़ दिया गया है। बिना पैसा लिये मुन्ना को छोड़ दिया। यह कैसे हुआ, बताओ तो सही।"

मिनती ने कहा, "मैं रुपया दे आयी हूँ।"

"तुम ? तुमने रुपया दिया है ?"

मिनती ने कहा, "हाँ, मैंने खुद कोतवाली जाकर दो हजार रुपया दिया और मुन्ना को छुड़ाकर ले आयी।"

"यह क्या ? तुम्हें रुपया कहाँ मिला ?"

मिनती ने कहा, "मेरे पास रुपया था।"

"तुम्हें रुपया कहाँ मिला ? दो हजार रुपया तुम्हारे पास था ? मुझसे तो तुमने कभी बतलाया नहीं था।"

मिनती ने कहा, "रुपया मेरे पास नहीं था मगर बाबूजी के द्वारा दी गयी बीस तोले की सोने की चूड़ियाँ थीं। उन्हीं चूड़ियों को सोनार के यहाँ बन्धक रखकर रुपया ले आयी हूँ।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "पहले तो तुमने मुझे यह बात नहीं बतायी थी। पहले बताया होता तो रुपये के लिए इतना चक्कर नहीं लगाना पड़ता।"

मिनती ने कहा, "पहले मैंने भी इस पर नहीं सोचा था। तुम जब दफ्तर चले गये तो घर पर नहीं रह पायी। दरवाजे पर ताला लगा सीधे एक सोनार की दुकान पर चली गयी।"

"उसके बाद ?"

"गहना बधक रख सीधे कोतवाली पहुँच गयी।"

सत्यसुन्दर को आश्चर्य हुआ। बोला, "तुम अकेली कोतवाली पहुँच थीं ? कोतवाली में लोगों ने तुम्हें पहचाना कैसे ? तुम्हें डर नहीं लगा ?"

मिनती ने कहा, "रास्ते में लोगों से पूछती-पूछती चली गयी। डर की बात कर रहे हो ? मैं किससे डरूँ ? तब मेरा मन मुन्ना के लिए बेहद छटपटा रहा था।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद कोतवाली में बड़े बाबू से मिलकर उन्हें रुपया दिया। नकद दो हजार रुपया।"

"रुपया मिलने पर बड़े बाबू क्या बोले ?"

"कहेंगे क्या ? रिश्वतखोर के मुँह में कहने लायक कोई शब्द होता है ? सिर पर चाँदी का जूता मारकर मुन्ना को छुड़ाकर ले आयी।"

सत्यसुन्दर को अपनी पत्नी के साहस पर हैरानी हुई।

बोला, "तुमने ऐसा काम कर लिया ?"

मिनती ने कहा, "इसमें न करने की कौन-सी बात है ? मेरे लड़के ने चोरी की है, या डाका डाला है कि डर लगे ?"

"तुमने बड़े बाबू से अपने देस की चर्चा नहीं की ?"

मिनती बोली, "वह बात मैं क्यों कहने जाऊँ ? नीच आदमी से बातचीत करने में भी मुझे नफरत होती है।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "न कहकर तुमने अच्छा ही किया, पुलिस के आदमी से यह सब न कहना ही अच्छा रहता है। वे लोग सब कुछ कर सकते हैं।"

मिनती ने कहा, "वह बात रहे, सुनो, तुम एक काम करो। कलकत्ते से तबादले के लिए तुम कल आवेदन-पत्र दे दो। अब मैं यहाँ एक दिन भी नहीं रहूँगी।"

"यह क्या !"

मिनती ने कहा, "हाँ, जो कह रही हूँ, वही करो। यहाँ रहने से मेरा मुन्ना आदमी नहीं बन पायेगा।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "यह कैसे होगा ? बड़े साहब क्या कहेंगे ? इतनी कोशिश कर पार्वतीपुर से तबादला कराकर यहाँ आया और फिर इतनी जल्दी तबादले के लिए कहूँ ? ऑफिस वाले ही क्या कहेंगे ?"

मिनती ने कहा, "तुम कहना कलकत्ते में कोई भला आदमी रह नहीं सकता। जिस स्थान में आदमी अपनी मर्जी से शान्तिपूर्वक नहीं रह सकता, उस स्थान में हम लोगों का न रहना ही बेहतर है।"

"लेकिन और-और लोग भी तो रह रहे हैं। कितने आदमी ऐसे हैं जो कलकत्ता छोड़कर भागे जा रहे हैं ?"

मिनती ने गुस्से में आकर कहा, "जो लोग रह रहे हैं वे सबके सब भेड़े हैं। भेड़े के झुंड हैं। यहाँ स्कूल में लिखाई-पढ़ाई नहीं चलती, घर में निश्चिन्तता के साथ बास करना मुश्किल हो गया है, बस-ट्राम जलायी जाती हैं और आदमी कचहरी-दफ्तर जाने के बाद जिन्दा वापस आयेंगे या नहीं, इसका कोई ठिकाना नहीं। यह शहर है या जंगल ?"

मिनती के मुँह के सामने अब बातचीत करने की सत्यसुन्दर को हिम्मत नहीं हुई। सचमुच वह गुस्से में आ गयी है। गुस्साने का उचित कारण भी है। उस बात का जवाब न देकर सत्यसुन्दर ने दूसरी बात की ही चर्चा छेड़ दी।

बोला, "किस सोनार के पास गहना बंधक रख आयी हो ?"

"तुम ? तुमने रुपया दिया है ?"

मिनती ने कहा, "हाँ, मैंने खुद कोतवाली जाकर दो हजार रुपया दिया और मुन्ना को छुड़ाकर ले आयी।"

"यह क्या ? तुम्हें रुपया कहाँ मिला ?"

मिनती ने कहा, "मेरे पास रुपया था।"

"तुम्हें रुपया कहाँ मिला ? दो हजार रुपया तुम्हारे पास था ? मुझ-से तो तुमने कभी बतलाया नहीं था।"

मिनती ने कहा, "रुपया मेरे पास नहीं था मगर बाबूजी के द्वारा दी गयी बीस तोले की सोने की चूड़ियाँ थीं। उन्हीं चूड़ियों को सोनार के यहाँ बन्धक रखकर रुपया ले आयी हूँ।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "पहले तो तुमने मुझे यह बात नहीं बतायी थी। पहले बताया होता तो रुपये के लिए इतना चक्कर नहीं लगाना पड़ता।"

मिनती ने कहा, "पहले मैंने भी इस पर नहीं सोचा था। तुम जब दफ्तर चले गये तो घर पर नहीं रह पायी। दरवाजे पर ताला लगा सीधे एक सोनार की दुकान पर चली गयी।"

"उसके बाद ?"

"गहना बधक रख सीधे कोतवाली पहुँच गयी।"

सत्यसुन्दर को आश्चर्य हुआ। बोला, "तुम अकेली कोतवाली पहुँच ? कोतवाली में लोगों ने तुम्हें पहचाना कैसे ? तुम्हें डर नहीं लगा ?"

मिनती ने कहा, "रास्ते में लोगों से पूछती-पूछती चली गयी। डर की बात कर रहे हो ? मैं किससे डरूँ ? तब मेरा मन मुन्ना के लिए बेहद छटपटा रहा था।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद कोतवाली में बड़े बाबू से मिलकर उन्हें रुपया दिया। नकद दो हजार रुपया।"

"रुपया मिलने पर बड़े बाबू क्या बोले ?"

"कहेंगे क्या ? रिश्वतखोर के मुँह में कहने लायक कोई शब्द होता है ? सिर पर चाँदी का जूता मारकर मुन्ना को छुड़ाकर ले आयी।"

सत्यसुन्दर को अपनी पत्नी के साहस पर हैरानी हुई।

बोला, "तुमने ऐसा काम कर लिया ?"

मिनती ने कहा, "तुम उसे पहचान नहीं पाओगे।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "क्यों, पहचान नहीं पाऊँगा ? तुम बताओगी तो पहचान लूँगा। उस दुकान में मैं अभी रुपया देकर गहना छुड़ाकर ले आऊँगा। इतना-इतना गहना है ! आजकल सोने की दर क्या है, मालूम है ?"

मिनती ने कहा, मुझे गहना नहीं चाहिए। गहना धो-धोकर पियूँगी ? तकदीर में होगा तो वैसा गहना मुझे फिर हो जायेगा।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मेरे पास अभी रुपया है। बैंक से भी कुछ रुपया निकालकर ले आया हूँ और हम लोगों के दरबान सत्यनारायण से तेरह सौ रुपये कर्ज ले आया हूँ।"

मिनती ने कहा, बैंक का पैसा बैंक में ही जमा करा दो। दरबान के पैसे पर व्याज देना पड़ेगा।"

"हाँ, बीस प्रतिशत व्याज।"

मिनती ने कहा, "फिर ? बेकार का इतना व्याज क्यों भरने जायें ? रुपया क्या इतना सस्ता है ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मगर सोने की कीमत के बारे में एक बार सोचकर तो देखो।"

मिनती ने कहा, "गहना बंधक रखकर मुझे लाभ ही हुआ। शादी के मौके पर बाबूजी ने जब सोना खरीदा था, उस समय के सोने के भाव के बारे में सोचकर देखो और अभी जो सोने का भाव है उस पर भी गौर करो। अभी दो सौ बीस रुपया तोला है।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "सोना लक्ष्मी है। कोई सोने को बेचता है या कि बंधक रखता है ?"

मिनती ने कहा, "नहीं, सोने से शान्ति कहीं अच्छी है, तुम मुझे सोना चाहे दो या न दो, मगर शान्ति से रहने दो।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मैं तुम्हारी शान्ति के लिए ही कलकत्ता आया। तुम तो जानती ही हो कि मुझे आने की कोई खास इच्छा नहीं थी। तुम बार-बार जिद करने लगी कि कलकत्ता जाऊँगी, तभी आया।"

मिनती ने कहा, "तब पता ही कहाँ था कि कलकत्ते का यह हाल है ! अब आने के बाद यहाँ के सारे हालात से वाकिफ हुई और इसीलिए तुम्हें कलकत्ता छोड़ने के बारे में कह रही हूँ। जितनी जल्दी हो सके यहाँ से चले चलो, अब मुझे यहाँ एक मिनट भी अच्छा नहीं लगता।"

सत्यसुन्दर को मिनती की बातें ठीक-ठीक समझ में नहीं आयीं। इतना अधीर होने की क्या बात है! कलकत्ते में कितने ही आदमी हैं मगर वे मिनती की तरह छटपटा नहीं रहे हैं।

मिनती फिर बोली, "कल ही जाकर आवेदन-पत्र दे देना। दोगे न?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "तुम जब कह रही हो तो जरूर ही आवेदन कर दूँगा। मगर सोचता हूँ, बड़े साहब क्या कहेंगे!"

"वही सब बात कहना जो मैंने तुमसे कही है।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "फिर भी तो कुछ वक्त लगेगा।"

"क्यों?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "मसलन मुन्ना को बीच में ही हटा लेने से उसकी क्षति हो सकती है।"

मिनती ने कहा, "यह सब वहाँ जाकर ठीक किया जायेगा। यहाँ रहने से उसका इम्तिहान होगा या नहीं, इसका भी कोई ठिकाना नहीं।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "जानती हो, कलकत्ता छोड़ने से सौ रुपया कम मिलने लगेगा, इस बात का पता है?"

"क्यों?"

"यही नियम है। कलकत्ते में रहने से बहुत तरह का एलाउन्स मिलता है, वह सब बन्द हो जायेगा।"

मिनती ने कहा, "होने दो। तीन सौ रुपया भी कम हो जाता है तो हम फायदे में ही रहेंगे। वहाँ कम से कम रात के वक्त निश्चिन्तता के साथ सो पायेंगे, तुम्हें भी दफ्तर से घर आने के समय इस तरह जान पर खेलकर नहीं आना होगा, मुन्ना की भी लिखाई-पढ़ाई ठीक से चलेगी।"

सत्यसुन्दर ने जबान दिया कि वह तबादले के लिए दरख्वास्त देगा, मगर उसे मिनती की जिद पर हैरानी हुई। यहाँ आने के वक्त भी वह इसी तरह जिद करती थी।

रात लेटने पर भी सत्यसुन्दर को बहुत देर तक नींद नहीं आयी। कलकत्ता छोड़ने की उसे इतनी तीव्र इच्छा क्यों हो रही है? अचानक क्या हो गया? सवेरे आँख खुलते ही मिनती ने कहा, "कल मैंने जो कहा था, याद है न?"

सत्यसुन्दर को ऊब महसूस हुई। बोला, "मैंने कह दिया है कि दरख्वास्त दूँगा, इसके लिए इतने तकाजे क्यों कर रही हो ?"

मिनती ने कहा, "नहीं, तुम्हें याद दिला रही हूँ। तुम्हारी याददाश्त जैसी है...."

सत्यसुन्दर ने कहा, "आज मैं दफ्तर जाते ही बड़े साहब के पास दरख्वास्त दे दूँगा।"

मिनती ने कहा, "सिर्फ देने से ही काम नहीं चलेगा, जिससे जल्दी से जल्दी तबादला हो जाये, इसके लिए भी इन्तजाम करना होगा। आज कहेंगे तो आज ही हम लोग चले जायेंगे। समझ गये न ?"

सत्यसुन्दर तब दफ्तर जाने की हड़बड़ी में था। बोला, "हाँ, हाँ, समझा, समझा, समझा।"

यह कहकर वह घर से निकल गया।

झुनु जैसे ही कोतवाली के क्वार्टर में पहुँची, उसके भैया ने आकर पूछना शुरू किया।

बोले, "क्या-क्या देख आयी ? हम लोगों की वही मिनती है न ?"

झुनु ने कहा, "हाँ भैया, वही मिनती है। तुमने ठीक ही पहचाना था।"

"तुझे पहचान सकी ?"

"अच्छी तरह।"

"मुझे बहुत ही गाली-गलौज किया होगा ? रिश्वतखोर कहा न ?"

झुनु ने कहा, "तुम पुलिस की नौकरी करते हो, लोग-बाग तुम्हारे गले में फूलों का गजरा डालेंगे ? यह तो तुम्हारी ही बात है।"

अशेष ने कहा, "बात तो सही है। यह मेरी नौकरी का ही गुनाह है। तूने मेरी ओर से समझा-बुझाकर नहीं कहा ?"

झुनु ने कहा, "जो तुमसे मन-प्राणों से घृणा करती है वह क्या मेरी बात मानेगी ?"

अशेषदत्त को ज्यादा देर तक बातचीत करने का वक्त नहीं था। हर वक्त टेलीफोन का सिलसिला लगा रहता है। या तो लाल बाजार से या जनता से। घर पर सोने पर भी शान्ति नहीं मिलती। किसी भी

वजह से आधी रात में भी बुलाहट आ सकती है। दारोगा की नौकरी में पहले की तरह मजा न रहा। पहले आम लोग पुलिस को जितनी नफ़-रत की निगाह से देखते थे, उतने ही भय और शक्ति की भी निगाह से देखते थे। ऊपरी ओहदे वाले चाहे जो कहें, जनता से पुलिस वाले को थोड़ी-बहुत इज्जत भी मिलती थी। मगर वह सब खत्म हो चुका है। भक्ति तो दूर की बात, लोग डरते तक नहीं।

नीचे के दफ्तर से एकाएक बुलाहट आयी। वहाँ का काम-धाम खत्म कर जल्दी-जल्दी झुनु के पास फिर चले आये।

झुनु को जलपाईगुड़ी लौट जाना है। वह सरो-सामान सहेज रही थी। भैया को देखकर अवाक् हो गयी।

बोली, "फिर चले आये ? काम खत्म हो गया ?"

अशेष ने कहा, "जिन्दगी में मेरा काम कभी नहीं खत्म होगा। तू इतने दिनों के बाद आयी मगर तुझसे अच्छी तरह बातचीत नहीं कर सका। मुझे अभी तुरन्त कचहरी जाना है। झंझट क्या एक है !"

झुनु ने कहा, "फिर नौकरी से इस्तीफा दे दो। किसके लिए नौकरी कर रहे हो ? तुम्हारा कौन है ही ! घर-गृहस्थी की हालत देखकर ही तुम्हारी दुर्दशा का अनुमान लगा रही हूँ। कल शाम से खाना तो दूर की बात, सो भी नहीं सके हो।"

अशेष ने कहा, "मेरी बात रहने दे। अपनी बता, फिर तू आज ही चली जा रही है ?"

झुनु ने कहा, "हाँ भैया, आज न जाऊँ तो काम नहीं चलेगा। तुम्हीं कुछ दिनों की छुट्टी लेकर मेरे साथ चलो।"

"मैं ? छुट्टी लूँगा ?

"क्यों ? आदमी छुट्टी नहीं लेते ?"

अशेष ने कहा, "नहीं, यह बात नहीं कह रहा हूँ। कलकत्ते की क्या हालत है, देख ही रही है। इस समय छुट्टी माँगना क्या उचित होगा ?"

झुनु ने कहा, "तुम्हारी बात पर हँसने का मन करता है, भैया। राजा मर जाता है, फिर भी राज-पाट चलता रहता है और तुम कह रहे हो कि छुट्टी लेने से कलकत्ता नहीं चलेगा ! यह क्यों नहीं कहते कि कलकत्ता छोड़कर तुम्हारी जाने की इच्छा नहीं है।"

अशेष ने कहा, "खैर, तुझसे बहसबाजी में नहीं पड़ूँगा। चलता हूँ।"

यह कह कर जाते-जाते फिर रुक गये, जैसे कोई बात याद आ गयी हो।

बोले, "मिनती क्या सचमुच ही मुझ पर बहुत ज्यादा खफा हो गयी है ? झुनु हँसी। बोली, "समझ गयी, तुम मिनती के बारे में ही जानना चाहते हो। अगर इतनी ही इच्छा हो रही है तो मेरे बजाय तुम्हीं उसके लड़के को उसके घर पर पहुँचा आते तो अच्छा रहता।"

अशोष को झेंप महसूस हुई। बोले, "नहीं, यह बात नहीं है''''तब हाँ, जानती है''''"

झुनु ने कहा, "भैया अब तुम कैफियत मत दो। अगर तुममें मिनती के प्रति इतना खिंचाव था तो शादी क्यों नहीं कर ली ?"

अशोष ने कहा, "धत्त, तू बूढ़े-बुजुर्गों जैसी बातें करती है। मैं क्या कह रहा हूँ और तू क्या कह रही है ! मेरा कहना था, इतने दिनों के बाद मुलाकात हुई और उसने धारणा बना ली कि मैं रिश्वतखोर हूँ। मुझसे अगर एक बार मुलाकात होती तो मैं उसे समझाकर कहता कि वह जो कुछ सोच रही है, उसमें सच्चाई नहीं है।"

"वह तो तुम अभी जाकर कह सकते हो। एक बार जाकर कह आओ न।"

अशोष ने कहा, "मैं अकेले जाऊँगा तो अच्छा नहीं रहेगा। तू साथ रहती तो अच्छा होता।"

झुनु ने कहा, "अभी मैं कैसे जाऊँ ? अभी तुरन्त हावड़ा स्टेशन जाना है। तुम अकेले ही चले जाओ न ! जाकर उसकी गलतफहमी दूर कर आओ।"

अशोष ने कहा, "नहीं, अकेले मुंह दिखाने में मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

"फिर किसी कॉन्सटेबल को साथ लेकर कल जाना। कल अगर न हो सके तो परसों। यह तो तुम्हारा ही इलाका है। तुम हर रोज गाड़ी से मुहल्ले-मुहल्ले का चक्कर काटते रहते हो। उसी बीच एक बार भेंट कर आना।"

"नहीं, रहे। खुद गाल बढ़ाकर तमाचा खाने की जरूरत नहीं है।"

यह कहकर वे कमरे से निकल गये और दफ्तर जाकर झुनु को स्टेशन भेजने का इन्तजाम करने लगे। बहिन अकेली ही जायेगी। दूरी भी कोई कम नहीं है। अशोष खुद स्टेशन जाकर बहिन को गाड़ी में बिठा

आयेंगे । दुकान से ढेर सारी मिठाई खरीदकर मँगा ली है। डाब और तरह-तरह के फल भी मँगा लिये हैं । विधवा वहिन है, रास्ते में जो-सो नहीं खायेगी । कितने दिनों के बाद फिर आयेगी, इसका भी कोई ठीक नहीं ।

गाड़ी जब स्टेशन से खुली तो अशेष ने कहा, "सावधानी से जाना । जाते ही चिट्ठी लिखना वरना मैं चिन्ता में डूबा रहूँगा ।"

झुनु ने कहा, "मेरे लिए तुम फिक्र मत करना, भैया । अकेले जाने-आने की मैं अभ्यस्त हूँ । तुम वल्कि सावधानी से रहा करो । तुम्हारे लिए ही मुझे भय बना रहता है ।"

"मेरे लिए भय ? क्यों ?"

झुनु बोली, "भैया, आजकल कलकत्ते की हालत ठीक नहीं । चारों तरफ खून-खराबा हो रहा है । अखबारों में देखती ही रहती हूँ ।"

अशोष ने कहा, "धत्, तू मेरे लिए फिक्र मत कर । मैं मर्द हूँ, मेरा कौन क्या विगाड़ लेगा ?"

ट्रेन चलने लगी है । अशेष कुछ देर तक ट्रेन के साथ पैदल चलता रहा । उसके वाद ट्रेन की गति तीव्र हो गयी ।

झुनु ने गरदन निकालकर कहा, "भैया, रहने दो, अब चलने की जरूरत नहीं । पहुँचते ही चिट्ठी भेजूंगी ।"

ट्रेन जब वहुत दूर निकलकर जा चुकी थी, उस समय भी अशेष कुछ देर तक उस ओर निहारता रहा । लालबत्ती का विन्दु जब एक मालगाड़ी की ओट में ओझल हो गया, तब अशेष को होश आया ।

उनके साथ हेडकॉन्सटेवल शिवशरण था ।

पुकारा, "हुजूर !"

"हाँ, चलो, शिवशरण ।" अशेष ने कहा ।

उस समय ऑफिस के सभी आदमी आश्चर्य में डूबे हुए थे । उस दिन जॉन एन्डरसन ऑफिस में इसी के संदर्भ में हर किस्म की चर्चा चल रही थी । सत्यसुन्दर सरकार का फिर तवादला हो गया है ।

वड़े साहव सचमुच आश्चर्य चकित हो रहे थे ।

वोले, "मगर तुम्हें तो टू हंड्रेड रुपये का घाटा उठाना होगा, सरकार।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "फिर किया ही क्या जा सकता है, सर! मेरी वाइफ अब यहाँ एक 'मोमेन्ट' भी नहीं रहना चाहती। रहने से मेरे लड़के का कैरियर चौपट हो जायेगा।"

साहब ने कहा, "मगर तुम्हारा अपना कैरियर? यहाँ रहने से तुम्हारा प्रमोशन होता।"

सत्यसुन्दर ने कहा, "यहाँ और कुछ दिन रहना पड़े तो मेरी फैमिली-लाइफ बर्बाद हो जायेगी। मेरी वाइफ स्यूसाइड कर लेगी।"

साहब ने हँस कर कहा, "फिर तुम चले ही जाओ सरकार, मैं तुम्हें रोककर नहीं रखूँगा। पहले फैमिली है, उसके बाद ही नौकरी। फैमिली फर्स्ट।"

ऑफिस के लोगों ने भी सत्यसुन्दर को घेर लिया।

बोले, "यह आप क्या कर रहे हैं, सरकार जी, हेडऑफिस आने का चान्स किसी को मिलता नहीं और आप उस चान्स को छोड़कर जा रहे हैं? हाथ में आयी लक्ष्मी को कोई त्यागता है? बाहर से कितने ही उम्मीदवार यहाँ आने की कोशिश कर रहे हैं, इस बात का आपको पता ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "यह बात तो मालूम है। मैं ही यहाँ आने के ... तीन साल से कोशिश कर रहा था, तब कहीं मुझे चान्स मिला और जाने में बस एक ही मिनट की देर लगेगी।"

यह घटना सबको हैरत में डालनेवाली थी। टिफिनरूम, कैन्टीन, डिस्पैच-सेक्शन हर जगह यही आलोचना चल रही थी।

"सुन रहे हो जी, सरकार जी ने ट्रान्सफर के लिए दरख्वास्त दिया है।"

"सचमुच? क्यों?"

"पता नहीं। उस दिन उसके लड़के को पुलिस पकड़कर चालान कर दिया था, इसीलिए डर गये हैं।"

"ऐसा होने से एकबारगी कलकत्ते से ट्रान्सफर करा लेंगे? हर महीने लगभग दो सौ रुपये का घाटा उठाना होगा।"

"अयँ, क्या कह रहे हो? डरपोक और नर्वस आदमी हैं, कलकत्ते में रहने के अभ्यस्त नहीं हैं, इसीलिए भागकर जा रहे हैं।"

"चाहे जो कहो, मगर बहुत बड़ी बेवकूफी कर रहे हैं। ऐसी बेवकूफी कोई करता है। महीने में लगभग दो सौ रुपया नुकसान उठाना पड़ेगा। साल में लगभग ढाई हजार रुपया। फिर बीस साल में....।"

इसी तरह दूसरे-दूसरे लोग भी सरकार बाबू के घाटे की मोटी रकम का हिसाब लगाने लगे। लेकिन आश्चर्य की बात है, जिसके नुकसान के बारे में इतना हिसाब-किताब किया जा रहा है, वह बेहद खुश है। ऑर्डर होते ही सत्यसुन्दर के चेहरे पर हँसी तिर आयी। महीने में दो सौ रुपया घाटा होने के बावजूद कोई आदमी इस तरह की निखालिस हँसी हँस सकता है, सत्यसुन्दर को देखे बिना इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता था।

सत्यसुन्दर ने कहा, "कल ही चला जाऊँगा, अब इस मनहूस जगह में एक दिन भी नहीं ठहरूँगा।"

सभी को आश्चर्य हुआ, "कल ही ?"

सत्यसुन्दर ने कहा, "हाँ भाई कल ही। क्योंकि यहाँ फिर कब क्या घटित हो जाये, इसका कोई ठिकाना नहीं। ऑर्डर हो चुका है तो देर करने से लाभ ही क्या ? शुभस्य शीघ्रम्।"

यह कह कर सत्यसुन्दर तृप्ति की दोहरी हंसी हँस पड़ा।

जब दफ्तर में छुट्टी हो गयी तो सत्यसुन्दर अपनी कुरसी से उठा। आज उसका हेडऑफिस में यह आखिरी दिन है। कल से उसे इस ऑफिस में नहीं आना है। कल वह इस वक्त ट्रेन पर रहेगा। परसों वह पार्वतीपुर पहुँच जायेगा। परसों तीसरे पहर उसका फिर वही पुराना क्वार्टर रहेगा। परसों के बाद वाले दिन ऑफिस ज्वाइन करेगा। इस समय से रात में बम की आवाज से जगकर नहीं रहना पड़ेगा। सत्य-सुन्दर दफ्तर से घर लौट सकेगा या नहीं, इसके बारे में मिनती को चिन्तित नहीं रहना होगा। मुन्ना के भविष्य के बारे में किसी को कोई सन्देह नहीं रह जायेगा। वह निश्चिन्तता के साथ स्कूल जायेगा, परीक्षा देगा और वृहत्तर परिणत की ओर पाँव बढ़ायेगा। तब कोई उसके रास्ते की रुकावट बनकर, उसकी हत्या करके अपना उल्लू सीधा नहीं कर पायेगा।

एकाएक सत्यसुन्दर को याद आया—पार्वतीपुर अब ज्यादा दूर नहीं है। वह इस बीच जैसे सचमुच ही पार्वतीपुर पहुँच गया है।

कई दिनों से कोतवाली के काम का जैसे अन्त ही नहीं हो रहा था। झुनु दो दिन के लिए आयी थी। उसके जाने के बाद कामों का ढेर सिर पर पहाड़ जैसे आकर सवार हो गया। अशेष काम से डरते हों, ऐसी बात नहीं लेकिन फालतू कामों से अवश्य ही डरते हैं। पहले भी वे काम कर चुके हैं। इस नौकरी में आने के बाद ढेर सारा काम किया है। लेकिन जितने ही दिन बीतते जा रहे हैं, उन्हें सिर्फ फालतू ही काम करना पड़ रहा है। फालतू काम करते-करते अशेष आहिस्ता-आहिस्ता अमानुष होते जा रहे हैं।

मित्रों से मुलाकत होने पर अशेष कहते, "भाई, अब इस नौकरी में अच्छा नहीं लग रहा है।

इतना जरूर है कि नौकरी करना किसी को भी अच्छा नहीं लगता। मगर अशेषदत्त की बात अलग है। और-और लोगों की तरह अशेषदत्त के सिर पर जिम्मेदारी का कोई बोझ नहीं है। अशेषदत्त हमेशा ही खेल-कूद का भक्त रहा है। जिन्दगी को वह हमेशा सहज-सरल दृष्टि से ही देखा करता था। लेकिन जिस दिन उन्होंने सुना मिनती की शादी हो चुकी है, उसी दिन से उनके जीवन की धारा दूसरी दिशा में मुड़ गयी।

यह सब बीते दिन की बात है। इतने दिनों के दरमियान अशेषदत्त यह सब बात भूल ही चुके थे। पुलिस की नौकरी में आने के बाद वे बिलकुल बेपरवाह हो गये। किसी ने पुलिस लाइन में ऐसा सीधा आदमी कभी नहीं देखा था।

लोग-बाग कहते, "अशेषदत्त आदर्श पुलिसमैन हैं।" यानी कोशिश करने से इस्पात को मोड़ा जा सकता है, लेकिन अशेषदत्त पुलिस लाइन में इस्पात से अधिक कठोर हैं।

लेकिन दो-तीन दिनों से लोग अशेषदत्त में अचानक एक परिवर्तन पा रहे हैं। साहब की बहिन के आने के बाद से ही ऐसा हुआ है। काम करते हैं तो बस करते ही जा रहे हैं। फाइल लेकर जब कोतवाली में बैठते हैं तो काम करते-करते रात के बारह-एक बज जाते हैं और उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं रहता।

उस दिन शाम के वक्त वे एकाएक जीप के अन्दर जाकर बैठ गये। आम तौर से ड्राइवर गाड़ी चलाता है और शिवशरण पिछली सीट पर बैठा रहता है।

साहब को अकेले ही जीप लेकर जाते देखकर शिवशरण सामने आकर खड़ा हो गया।

"हुजूर, मैं चलूँ ?"

"नहीं।"

जीप रवाना हो गया। तब चारों तरफ शाम उतर आयी थी। आमतौर से इस इलाके में शाम के वक्त बड़ी सड़क पर भीड़-भाड़ रहती है। मगर गली-कूचों की बात ही अलग है। पहले गलियों के बरामदे पर लड़के काफी रात तक अड्डेबाजी किया करते थे। अशेषदत्त ने इस कोतवाली में आकर यह सिलसिला खत्म कर दिया है। अड्डेबाजी ही करनी है तो किसी के घर के अन्दर बैठकर अड्डेबाजी करो। सड़क के किनारे बरामदे पर बैठकर अड्डेबाजी करना नहीं चलेगा।

जीप बड़ी सड़क को छोड़कर सब्जी बगान के अन्दर चली गयी। उस समय भी अशेषदत्त ने नहीं सोचा था कि वे सचमुच ही मिनती के घर के पास जाकर उसके दरवाजे की कुंडी खटखटायेंगे।

इसके अलावा वे मिनती से भेंट ही क्यों करें ? किस अधिकार के नाते ? अपने किस अपराध की कैफियत देने के लिए ? कर्त्तव्य-पालन को क्या अपराध की आख्या दी जा सकती है ? तुम्हारे लड़के को पकड़ कर मैंने कोई गुनाह नहीं किया है। मुझे आदेश मिला है कि हर किसी को पकड़ लूँ। पकड़कर उससे पूछताछ करनी है। यह तो मेरी ड्यूटी है।

और रिश्वत ? ब्रिटिश सरकार रिश्वतखोरी रोक सकी है ? भारत सरकार रिश्वतखोरी रोक सकेगी ? जो आदमी अपना नैतिक मूल्य खो देता है तो फिर किसी में भी यह सामर्थ्य नहीं कि उसकी रक्षा कर सके। हिन्दुस्तान के तमाम लोगों का नैतिक मापदण्ड जीरो डिग्री पर उतर आया है, इस हालत में उसकी रक्षा कौन करेगा ? करोड़ों पुलिस भी उस राष्ट्र को जिन्दा नहीं रख सकती। बल्कि इस समाज में जो रिश्वत लेता है, नौकरी में उसकी तरक्की होती है, सरकार उसका सम्मान करती है। वह पद्मश्री या पद्मभूषण के अलंकार से विभूषित होता है। हो सकता है, वह बहुत कुछ हो जाये। मगर उसके लिए एकमात्र कोतवाली के ओ० सी० अशेषदत्त को दोषी ठहराने से लाभ ही क्या है ?

जीप से उतर कर अशेषदत्त उस मकान के सामने उतरे और सदर दरवाजे की कुंडी खटखटाने लगे।

"कौन है ?"

दोमंजिले से झुककर किसी ने पूछा, "आप किससे मिलना चाहते हैं ?"

उसके बाद पुलिस पर नजर पड़ते ही वह लड़का नीचे उतर आया और पूछा, "किससे मिलना चाहते हैं, सर ?"

"इस मकान में सत्यसुन्दर नामक एक सज्जन रहते हैं न ?"

लड़के ने कहा, "हाँ सर, वे इस मकान को किराये पर लिए हुए थे, मगर अब चले गये हैं।"

"कहाँ चले गये ?"

"उनका तबादला हो गया।"

"कब चले गये ?"

"आज तीसरे पहर। कलकत्ते के दफ्तर में नौकरी करते थे, पार्वतीपुर उनका तबादला हो गया है। आज ही उन्होंने यह मकान छोड़ा है।"

अशेषदत्त ने वहीं खड़े-खड़े कुछ सोचा। आहिस्ता-आहिस्ता सीढ़ियाँ उतर कर फिर से स्टेयरिंग के पास बैठने लगे।

उस समय जोरों से एक धमाका हुआ और पूरे इलाके को कँपाता हुआ धुएँ के गुबार में समेट लिया।

एक ही पल की बात है। एक ही पल क्या घटित हुआ, किसी की समझ में न आया। तुरन्त ही आस-पास के तमाम मकानों के खिड़की-दरवाजे बन्द हो गये। जो लोग रास्ते से गुजर रहे थे, इस आकस्मिक आक्रमण की आधी बात उनकी समझ में आयी और आधी उनकी समझ से बाहर रही। और इसीलिए जिसको जिधर मौका मिला, भाग कर आँखों से ओझल हो गया।

जब धुएँ का गुबार हवा में खो गया तो लोगों ने देखा, अशेषदत्त का कद्दावर शरीर जीप के सामने बेहोश पड़ा है और उससे रक्त का फव्वारा छूटकर नाली की ओर बह रहा है।

उस समय पार्वतीपुर की रेलगाड़ी तीव्र गति से गंतव्यस्थान की ओर चली जा रही थी। गाड़ी में खचाखच मुसाफिर भरे हैं। मुसाफिरों के

सुख-दुःख की समस्याएँ गाड़ी से होड़ लगाती हुई चली जा रही हैं। दिन के बीतने के बाद रात आयेगी। उसके बाद फिर दिन। उस समय सवेरा होगा। दरअसल नियम भी यही है।

मिनती और सत्यसुन्दर आमने-सामने बैठे हैं। उनकी जबान बन्द है।

मुन्ना ने एकाएक खिड़की के बाहर ताका और पूछा, "वे लोग क्या कर रहे हैं, माँ ?"

मिनती ने गौर से देखा। किसान रूखी-सूखी मिट्टी को हल से जोत रहे हैं।

मिनती ने कहा, "वे लोग हल चला रहे हैं, बेटा।"

"हल चलाकर क्या कर रहे हैं ?"

मिनती ने कहा, "हल से खेत जोत कर वे लोग वहाँ धान का बीज बोयेंगे।"

"धान का बीज बोने से क्या होगा ?"

"धान से चावल होगा।"

अब मुन्ना की समझ में बात आयी। धान से चावल निकलता है, यह बात मुन्ना को पता है। लेकिन धान कैसे बोया जाता है, किस तरह खेत में हल चलता है, यह सब उसने देखा नहीं था। आने के समय रात का आलम था, इसलिए मुन्ना की आँखें इन सब चीजों पर नहीं गयी थीं।

मुन्ना एकटक किसानों का हल चलाना देखता रहा। मगर [illegible] क्षण मिनती को एक बात याद आने लगी—

बहुत दिन पहले पढ़ी हुई कविता की एक पंक्ति : नर ने [illegible], नारी ने सुधा, सुधा-क्षुधा मिल, जन्म ले रहा महामानव [illegible] तिल-तिल।.....' जीवन की मिट्टी में भी तो इसी तरह [illegible] खेती हो रही है, फसल उग रही है। मिनती को [illegible] हिस्सा अपने जीवन में प्राप्त हुआ है, उसका [illegible] किया था। मगर रेलगाड़ी से लगातार सफर [illegible] एक इच्छा हुई कि उसका हिसाब करे। [illegible] है ? क्या मिलता जो वह सार्थक होती ? [illegible] कि मुझे सब कुछ प्राप्त हो चुका है [illegible]

खोने पर भी प्राप्ति हुई है ? इसलिए प्राप्ति-अप्राप्ति के परम देवता के चरणों पर स्वयं को निवेदित कर आज मैं सार्थक हुई हूँ ।

सोचते-सोचते एक ऐसा वक्त आया कि मिनती की आँखों में आँसू की बूंदें छलछला आयीं और उसके सामने धुंधलापन रेंगने लगा । आँखों के आँसू की उन बूंदों को छिपाने के लिए उसने खिड़की के बाहर आँखें फैला दीं और अपने आप को ओट में कर लिया ।

पार्वतीपुर की रेलगाड़ी उसी रफ्तार से आगे की ओर बढ़ने लगी ।

इस कलकत्ता शहर से सत्यसुन्दर सरकार और मिनती सरकार चले गये और इसके बाद भी वे लोग अवश्य ही जिन्दा होंगे । शायद सुख से ही जीवन जी रहे हैं, शायद सुख से नहीं जी रहे हैं । लेकिन इस वजह से धरती का चलना क्या रुक गया है ? इसके अलावा किसी की वजह से क्या कोई काम रुका रहता है ? यही जीवन है । सत्यसुन्दर सरकार कौन है या अशेषदत्त ही कौन है—इसके लिए जीवन माथापच्ची नहीं करता । जीवन एकमात्र महाजीवन के लिए ही माथापच्ची करता है । जो लेखक महाजीवन को ही लक्ष्य बनाकर लिखता जाता है वही वास्तव में लेखक है । मैं उस महाजीवन का सपना देखता हूँ मगर उसके बारे में लिख नहीं पाता । वरना ऐसे और भी बहुत से जीवन के बारे में लिखता जो हमारी धरती के चारों ओर यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं; जो जीवन महा-जीवन को लक्ष्य बना कर आगे बढ़ रहे हैं । मैं चाहता हूँ, इन लोगों के बारे में कोई और लिखे, जिसकी लेखनी में और अधिक शक्ति है । वही इन लोगों के संबंध में महाजीवन को अर्घ्य दे । दरअसल इसी उद्देश्य के निमित्त मैं लिखता आ रहा हूँ ।

इसी सिलसिले में और एक व्यक्ति की कहानी सुनाता हूँ । वह है सनातन । सनातनदत्त । नहीं-नहीं, सनातनदत्त नहीं, मुकुल राय । दोनों नाम एक ही व्यक्ति का था । कैसे एक ही आदमी के दो नाम हो जाते हैं और क्यों होते हैं, उसी पर मेरी यह कहानी आधारित है ।

लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व 'मुकुल स्मृति विद्यालय' इतना नामी-गिरामी नहीं था।

अब मुकुल स्मृति विद्यालय का नाम कलकत्ते के बाहर रहने वाले लोगों को भी मालूम है। आज मुकुल स्मृति विद्यालय की पाँच-पाँच बसें शहर के अलग-अलग अंचलों से छात्र-छात्राओं को स्कूल ले आती हैं और फिर ठीक समय पर घर पहुँचा जाती हैं।

पाँच बीघे की रकबे में यह स्कूल फैला हुआ है। यहाँ नामी-नामी शिक्षक पढ़ाते हैं। बहुतेरे कवि और साहित्यकार यहाँ नौकरी कर महीने में मोटी तनख्वाह कमाते हैं। यहाँ लेडी टीचर भी हैं। सभी लेडी टीचर स्वस्थ-सुन्दर हैं और सज-धजकर स्कूल आती हैं।

मुकुल स्मृति विद्यालय में फीस के तौर पर मोटी रकम देनी पड़ती है। जो लोग बड़े और धनी हैं, उन्हीं के लड़के-बच्चे यहाँ पढ़ सकते हैं। और-और लोग, जो अपने बाल-बच्चों के लिए इतना पैसा खर्च करने में असमर्थ हैं, वे छोटे-मोटे स्कूलों में ही अपने बाल-बच्चों को भेज पाते हैं। उससे चाहे बाल-बच्चों की लिखाई-पढ़ाई हो या न हो, मगर माँ-बाप के सम्मान की रक्षा नहीं हो पाती है।

किसी से किसी की मुलाकात हो जाती है तो पूछता है, "आपका लड़का किस स्कूल में पढ़ता है ?"

उत्तर मिलता है, "मुकुल स्मृति विद्यालय में।"

नाम का पता चलते ही वह लड़के के पिता की आर्थिक स्थिति का अन्दाज लगा लेता है। जो आदमी अपने एक लड़के के लिए सत्तर रुपये खर्च कर सकता है, उसकी पूरी आमदनी की कल्पना करने में कोई दिक्कत नहीं होती। बच्चों के स्कूल के नाम पर जिस समाज में माँ-बाप का मान-सम्मान और मर्यादा निर्भर करती है, वह किस जाति का समाज है, इसकी कल्पना करने से भी घृणा होती है। लेकिन आज बंगाल में यही सिलसिला चल रहा है, यही नियम लागू है।

किसी विशेष उपलक्ष्य में यदा-कदा मुकुल स्मृति विद्यालय में सभा

का आयोजन होता है। वे सब सांस्कृतिक अनुष्ठान होते हैं और कलकत्ते के विख्यात आदमी उनका सभापतित्व करते हैं। अच्छी-अच्छी बातें कह कर वे लोग श्रोताओं का मनोरंजन करते हैं और उन्हें तालियाँ मिलती हैं। जो लोग सभा में सम्मिलित होते हैं उनके लिए काफी तादाद में नाश्ते का इन्तजाम रहता है। क्योंकि असली लक्ष्य वे लोग ही हुआ करते हैं, वाकी लोग उपलक्ष्य। इसीलिए दूसरे दिन समाचार-पत्रों में मुकुल स्मृति विद्यालय के समारोह की रिपोर्ट विस्तार के साथ छापी जाती है।

यह सब खबर वाहरी आदमी को मालूम नहीं है। उन्हें मालूम नहीं है कि यह मुकुल कौन था, क्यों इस मुकुल की यादगार को जिन्दा रखने के लिए इतना आयोजन किया जाता है और इसके प्रबन्धक कौन हैं?

आज जो इस मुकुल स्मृति विद्यालय की चर्चा चली तो इसका एक कारण है।

आज वही दिन है, जिस दिन मुकुल राय के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में हर साल एक स्मृति सभा होती है। आज शाम ठीक उसी तरह मुकुल राय का एक तैल-चित्र दीवार के वीच टाँगा गया है। उसके चारों ओर एक कीमती गजरा सजाया गया है। किसी ने बताया कि इस गजरे को स्पेशल ऑर्डर देकर तैयार कराया गया है। इसकी कीमत है एक सौ पचीस रुपया। फूलों के ऊपर जरी, राँगा और शोले की खासी-अच्छी नक्काशी की गयी है। उसके चारों तरफ धूपदानी में बहुत सारी जली हुई धूपवत्तियाँ अटकाकर रखी गयी हैं। पूरा सभाघर खुशबू से मह-मह कर रहा है।

सभा से वापस आने के बाद भी सारी बातें मन से दूर नहीं हो रही हैं। मुझे एक मात्र मुकुल की ही याद आ रही है। फिर सचाई किसमें है?—मनुष्य अपने आप जिस तरह का है उसमें या जिस तरह उसका प्रचार किया जाता है उसमें?

मिसेज राय से बहुत दिनों पर मुलाकात हुई।

देखा, मिसेज राय का चेहरा पहले जैसा ही है। वही प्रशान्त दृष्टि, जिसके पीछे एक भाव वोझिल उदासी की छाया तैर रही है। यह उदासी ही मिसेज राय की सुन्दरता की विशेषता है। बहुतों में खूबसूरती ऐसी होती है जो उसकी देह से छिटकती रहती है। जो आँखों के सामने आते ही चकाचौंध में डाल देती है। लेकिन यह खूबसूरती वैसी नहीं है। इसमें

एक ऐसी अपरूप मादकता है जो दीये की तरह रोशनी तो देती है जरूर मगर छुआ न जाये तो जलाती नहीं।

मुझ पर आँखें जाते ही मिसेज राय को शुरू में आश्चर्य हुआ।

उसके बाद हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

पूछा, "कब कलकत्ता आये ?"

"आज ही।" मैंने कहा।

"लगता है, आपको ठीक समय पर चिट्ठी मिल गयी।"

मैंने कहा, "चिट्ठी नहीं मिलने पर भी आता, यह तिथि मैं कभी भूलता नहीं हूँ।"

मिसेज राय का चेहरा करुणा और कृतज्ञता के कारण और भी अधिक सुन्दर दिखने लगा। उन्होंने कहा, "आप लोगों के कारण ही यह भारवहन करने की शक्ति मिली है। वरना इस संस्था को इतने दिनों तक जिन्दा रख पाने की मैंने कल्पना कहाँ की थी ? सब कुछ उन्हीं के आशीर्वाद का फल है।"

यह कहकर परलोकवासी पति की स्मृति में हाथ जोड़ा और उसे माथे से छुलाया।

लेकिन इस मुकुल स्मृति विद्यालय से मेरा कौन-सा संबंध है ? इतने लोगों के रहने के बावजूद मिसेज राय मेरा इतना सम्मान क्यों करती हैं ?

इसके पीछे एक इतिहास है।

बीच-बीच में जब कभी कलकत्ते में रहता हूँ और उस अवधि के दरमियान अगर मुकुल का जन्मदिन आ जाता है तो मैं उस उत्सव में अवश्य ही सम्मिलित होता हूँ।

कितनी चहल-पहल रहती है उस उत्सव में ! धूप की सुगंध से वातावरण गमकने लगता है। बड़ा ही पवित्र लगता है वह वातावरण ! एक विशाल आदमकद तैल-चित्र डेस पर खड़ा रखा जाता है। उस तैल-चित्र पर एक बहुत बड़ा कीमती हार झूलता रहता है। जो लोग जानकार हैं उन्हें पता है कि यह हार जो-सो हार नहीं है। सुनहरी-रुपहली खांटी जरी की नक्काशी किया हुआ उस हार का मूल्य एक सौ पचीस रुपया है। कुछ ही घंटों का उत्सव रहता है। मगर मिसेज राय उसके खर्च में कोई कंजूसी नहीं करतीं। जो लोग निमंत्रित होकर स्मृति-सभा में शामिल होते हैं, उनके खाने-पीने का भी इन्तजाम रहता है। वे लोग

भरपेट खाना खाते हैं। कोई-कोई ऐसा भी है जो कुछ भी नहीं खाता। वैसे लोग सुन्दर डिब्बे में भरा हुआ खाद्य पदार्थ घर ले जाते हैं। जो लोग लेक्चरबाज हैं, हर रोज लेक्चर दिये बिना जिनका खाना हजम नहीं होता, वे उदात्त स्वर में स्वर्गीय मुकुल राय की कीर्त्ति का बखान करते हैं, माइक्रोफोन के सामने लंबा-लंबा भाषण देते हैं। भाषण देने के समय ही तसवीर उतारी जाती है। समाचार-पत्रों के रिपोर्टरों के साथ जो लोग हर रोज बैठकबाजी करते हैं उनकी तसवीरें दूसरे दिन के अखबारों में बड़े-बड़े आकार में छपती हैं।

खबर छपने के लोभ से ही बहुतेरे व्यक्ति मुकुल स्मृति विद्यालय के इस उत्सव में हजारों काम छोड़कर चले आते हैं। इसके अलावा बात यह भी है कि मीटिंग में जाने और उसके संबंध में खबर छपने से लोगों को पता चल जाता है कि वे लोग अब भी जीवित हैं।

इस तरह की सभाओं में जब-जब शामिल हुआ हूँ, यह सब कारंवाई देखकर मुझे हँसी आयी है। सोचा है, दुनिया किस ओर जा रही है!

मगर मेरी बात रहे। मैं तो एक साधारण आदमी हूँ। मेरी बात कौन मानेगा? समाचार-पत्रों में रोज-रोज मंत्री और राजनैतिक नेताओं की झूठी बातें पढ़ते-पढ़ते किसी चीज को सहज रूप में लेना भूल चुका हूँ। जीवन में जो दिखायी पड़ता है वह समाचार-पत्रों में नहीं दीखता। उसी तरह समाचार-पत्रों में जो कुछ मिलता है, यथार्थ जीवन में खोजने से भी वह सब नहीं मिलता।

इस तरह की बेचैनी से परिस्थिति में हमें दिन बिताना पड़ता है। इसीलिए सभा-समिति तो दूर की बात, समाचार-पत्रों के संसर्ग से भी मैं यथासंभव दूर रहने की कोशिश करता हूँ।

लेकिन मिसेज राय के सुप्रसिद्ध मुकुल स्मृति विद्यालय के वार्षिकोत्सव से अपने आपको अलग नहीं रख पाता हूँ।

और अलग न रख पाने की वजह हैं मिसेज राय।

यही मिसेज राय मेरे आज के लेखन की विषय-वस्तु है। आज की इस मिसेज राय को जितना ही देखता हूँ, मुझे वे उतनी ही अच्छी लगती हैं। अच्छा लगने का कारण दूसरा ही है। बहुत-सी चीजें अच्छी इसलिए लगती हैं कि वे अच्छी होती हैं। वे या तो देखने या छूने में अच्छी होती हैं या फिर उनकी खुशबू अच्छी होती है।

मिसेज राय ऐसी अच्छी लगती हैं जैसे ताजमहल देख रहा होऊँ।

'ताजमहल' कहा तो जरूर, मगर मन में सन्देह होता है कि उपमा ठीक है या नहीं। तब हाँ, और-और पहलू से चाहे सादृश्य न हो मगर एक पहलू से ताजमहल से मिसेज राय का सादृश्य मेरे लिए बहुत ही स्पष्ट, बहुत ही तीव्र है।

ताजमहल के बारे में जो कहानी इतिहास से जुड़ी हुई है, उसका आवेदन इस अच्छा लगने से बहुत कुछ जुड़ा हुआ जैसा है। ताजमहल कहते ही बादशाह औरंगजेब की याद आ जाती है और उसी के साथ-साथ पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य की भी स्मृति। अतीत के एक बहुत बड़े युग के सामने ताजमहल जैसे एक भयावह सौंदर्य का विशिष्ट साक्षी है।

उसी तरह की हैं मिसेज राय।

मिसेज राय भी एक ऐसे आदमी के बीते जीवन की साक्षी हैं जिसे मैं भलीभाँति पहचानता था। आज से तीस-चालीस वर्ष के पीछे की जिन्दगी से कितने आदमी प्रत्यक्ष तौर पर जुड़े हुए हैं? जो लोग उस युग के आदमी होने के बावजूद अब भी हमारे बीच जीवित बचे हुए हैं वे दरअसल वर्तमान को लेकर ही व्यस्त हैं। वे लोग बीते दिनों को भूल जाना चाहते हैं। और चूँकि भूल जाना चाहते हैं इसीलिए अपने प्राणों के विनिमय में वर्तमान से कसकर चिपके हुए हैं और टिके रहना चाहते हैं। उनके लिए ब्रिटिश शासनकाल असत्य है। असत्य है शान्त-निर-विच्छिन्न सस्ती के जमाने की स्मृति और एकमात्र सत्य है आज का यह कठोर यथार्थ। यह दो रुपया किलो की दर के आलू का यथार्थ ही उनके लिए अटूट सत्य है।

मगर मेरी बात ही जुदा है। मेरे लिए इस वर्तमान की तरह अतीत भी पूर्ण सत्य है। इसीलिए जब कभी किसी चीज का मैं वर्तमान देखता हूँ तो तत्क्षण उसके अतीत की गहराई में पैठ जाता हूँ। उसके शुरुआत की तलाश करने की कोशिश करता हूँ। अगर उसकी शुरुआत की तलाश न कर पाऊँगा तो उसके अन्त की विवेचना कैसे करूँगा?

याद है, हर साल मिसेज राय के निमंत्रण-पत्र के साथ ही उनका फोन भी मिलता था।

"मैं मिसेज राय बोल रही हूँ। मेरा पत्र आपको मिल गया है?" वे कहती।

"हाँ-हाँ," मैं कहता, "पत्र मिल गया है, जरूर ही आऊँगा, आप चिन्ता मत करें।"

भरपेट खाना खाते हैं। कोई-कोई ऐसा भी है जो कुछ भी नहीं खाता। वैसे लोग सुन्दर डिब्बे में भरा हुआ खाद्य पदार्थ घर ले जाते हैं। जो लोग लेक्चरबाज हैं, हर रोज लेक्चर दिये बिना जिनका खाना हजम नहीं होता, वे उदात्त स्वर में स्वर्गीय मुकुल राय की कीर्त्ति का बखान करते हैं, माइक्रोफोन के सामने लंबा-लंबा भाषण देते हैं। भाषण देने के समय ही तसवीर उतारी जाती है। समाचार-पत्रों के रिपोर्टरों के साथ जो लोग हर रोज बैठकबाजी करते हैं उनकी तसवीरें दूसरे दिन के अख-बारों में बड़े-बड़े आकार में छपती हैं।

खबर छपने के लोभ से ही बहुतेरे व्यक्ति मुकुल स्मृति विद्यालय के इस उत्सव में हजारों काम छोड़कर चले आते है। इसके अलावा बात यह भी है कि मीटिंग में जाने और उसके संबंध में खबर छपने से लोगों को पता चल जाता है कि वे लोग अब भी जीवित हैं।

इस तरह की सभाओं में जब-जब शामिल हुआ हूँ, यह सब कार्रवाई देखकर मुझे हँसी आयी है। सोचा है, दुनिया किस ओर जा रही है!

मगर मेरी बात रहे। मैं तो एक साधारण आदमी हूँ। मेरी बात कौन मानेगा? समाचार-पत्रों में रोज-रोज मंत्री और राजनैतिक नेताओं की झूठी बातें पढ़ते-पढ़ते किसी चीज को सहज रूप में लेना भूल चुका हूँ। जीवन में जो दिखायी पड़ता है वह समाचार-पत्रों में नहीं दीखता। उसी तरह समाचार-पत्रों में जो कुछ मिलता है, यथार्थ जीवन में खोजने से भी वह सब नहीं मिलता।

इस तरह की बेचैनी से परिस्थिति में हमें दिन बिताना पड़ता है। इसीलिए सभा-समिति तो दूर की बात, समाचार-पत्रों के संसर्ग से भी मैं यथासंभव दूर रहने की कोशिश करता हूँ।

लेकिन मिसेज राय के सुप्रसिद्ध मुकुल स्मृति विद्यालय के वार्षिको-त्सव से अपने आपको अलग नहीं रख पाता हूँ।

और अलग न रख पाने की वजह हैं मिसेज राय।

यही मिसेज राय मेरे आज के लेखन की विषय-वस्तु है। आज की इस मिसेज राय को जितना ही देखता हूँ, मुझे वे उतनी ही अच्छी लगती हैं। अच्छा लगने का कारण दूसरा ही है। बहुत-सी चीजें अच्छी इसलिए लगती हैं कि वे अच्छी होती हैं। वे या तो देखने या छूने में अच्छी होती हैं या फिर उनकी खुशबू अच्छी होती है।

मिसेज राय ऐसी अच्छी लगती हैं जैसे ताजमहल देख रहा होऊँ।

'ताजमहल' कहा तो जरूर, मगर मन में सन्देह होता है कि उपमा ठीक है या नहीं। तब हाँ, और-और पहलू से चाहे सादृश्य न हो मगर एक पहलू से ताजमहल से मिसेज राय का सादृश्य मेरे लिए बहुत ही स्पष्ट, बहुत ही तीव्र है।

ताजमहल के बारे में जो कहानी इतिहास से जुड़ी हुई है, उसका आवेदन इस अच्छा लगने से बहुत कुछ जुड़ा हुआ जैसा है। ताजमहल कहते ही बादशाह औरंगजेब की याद आ जाती है और उसी के साथ-साथ पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य की भी स्मृति। अतीत के एक बहुत बड़े युग के सामने ताजमहल जैसे एक भयावह सौंदर्य का विशिष्ट साक्षी है।

उसी तरह की हैं मिसेज राय।

मिसेज राय भी एक ऐसे आदमी के बीते जीवन की साक्षी हैं जिसे मैं भलीभाँति पहचानता था। आज से तीस-चालीस वर्ष के पीछे की जिन्दगी से कितने आदमी प्रत्यक्ष तौर पर जुड़े हुए हैं? जो लोग उस युग के आदमी होने के बावजूद अब भी हमारे बीच जीवित बचे हुए हैं वे दरअसल वर्तमान को लेकर ही व्यस्त हैं। वे लोग बीते दिनों को भूल जाना चाहते हैं। और चूंकि भूल जाना चाहते हैं इसीलिए अपने प्राणों के विनिमय में वर्तमान से कसकर चिपके हुए हैं और टिके रहना चाहते हैं। उनके लिए ब्रिटिश शासनकाल असत्य है। असत्य है शान्त-निर-विच्छिन्न सस्ती के जमाने की स्मृति और एकमात्र सत्य है आज का यह कठोर यथार्थ। यह दो रुपया किलो की दर के आलू का यथार्थ ही उनके लिए अटूट सत्य है।

मगर मेरी बात ही जुदा है। मेरे लिए इस वर्तमान की तरह अतीत भी पूर्ण सत्य है। इसीलिए जब कभी किसी चीज का मैं वर्तमान देखता हूँ तो तत्क्षण उसके अतीत की गहराई में पैठ जाता हूँ। उसके शुरुआत की तलाश करने की कोशिश करता हूँ। अगर उसकी शुरुआत की तलाश न कर पाऊँगा तो उसके अन्त की विवेचना कैसे करूँगा?

याद है, हर साल मिसेज राय के निमंत्रण-पत्र के साथ ही उनका फोन भी मिलता था।

"मैं मिसेज राय बोल रही हूँ। मेरा पत्र आपको मिल गया है?" वे कहती।

"हाँ-हाँ," मैं कहता, "पत्र मिल गया है, जरूर ही आऊँगा, आप चिन्ता मत करें।"

फिर भी मिसेज राय मुझे बता देती थीं कि इस बार कौन-से विख्यात व्यक्ति सभापतित्व कर रहे हैं और किसने प्रधान अतिथि बनने की स्वीकृति प्रदान की है। उसके बाद वे कहतीं, "अबकी और बड़ा पंडाल तैयार करना पड़ रहा है। वेस्ट बेंगाल गवर्नमेंट ने अबको हमारे स्कूल के ग्रान्ट में तीस हजार रुपये की बढ़ोत्तरी कर दी है।"

मैं सब कुछ सुनता था। मन लगाकर सुनने के बाद और भी अधिक प्रोत्साहित करता था।

मैं कहता, "यह सब आपकी कोशिश का नतीजा है, मिसेज राय। आप किस तरह इस संस्था के लिए जी-जान से लगी हुई हैं। ऐसी कितनी महिलाएँ हैं जो अपने पति के लिए इतना त्याग करती हैं?"

मिसेज राय को झेंप महसूस होती।

वे कहतीं, "छिः-छिः, यह बात कह कर मुझे लज्जित न करें। सब कुछ उनके आशीर्वाद का फल है। उनका आशीर्वाद न होता तो मैं क्या इतनी बड़ी संस्था का निर्माण कर पाती? वरना उनके तिरोधान के साथ ही सब कुछ बर्बाद हो जाता। और सिर्फ उनके आशीर्वाद का फल ही नहीं है। उस आशीर्वाद के साथ आप जैसे असंख्य देशवासियों की शुभेच्छा और सहयोग न रहता तो मैं क्या इतना बड़ा बोझ ढो पाती?"

मिसेज राय की विनम्रता-प्रकाशन की ये पद्धतियां उनके चरित्र की विशेषता थीं।

वे कहतीं, वास्तव में मैं हूँ ही कौन? दूसरे-दूसरे लोग चाहे जो कहें मगर आपसे कोई बात छिपी हुई नहीं है। आप राय को सबसे अधिक जानते-पहचानते थे।"

मैंने कहा, "नहीं-नहीं यह सब बात मत कहें। आदमी अपने चरित्र के गुण से ही बड़ा होता है, कोई किसी को ठेलकर बड़ा बना सकता है?"

मिसेज राय कहतीं, "इस विषय में मैं आपसे सहमत हूँ। आपके मित्र अपने गुणों के कारण ही आज प्रातःस्मरणीय बने हैं, हम उनके पैरों की धूल के योग्य भी नहीं हो सके।"

उसके बाद उन्हें कोई बात याद आ जाती।

"आपको एक और सुसंवाद सुना रही हूँ," वे कहतीं, "उस दिन मैं चीफ मिनिस्टर के पास गयी थो। जानते हैं, उन्होने क्या कहा?"

"क्या ?"

उन्होंने कहा, मिसेज राय इस युग में आपने जो कीर्ति स्थापित की है, वह इतिहास के पृष्ठ पर स्वर्णाक्षरों में अंकित होगी।"

मुझे तारीफ करनी ही पड़ी। मैंने कहा, "किसने कहा ? आप चीफ मिनिस्टर मिस्टर सेन के वारे में कह रही हैं ?"

"हाँ, चीफ मिनिस्टर हमारे मुकुल स्मृति विद्यालय के पेट्रॉनों में से हैं।"

"सो तो मालूम है। तब हाँ, उन्होंने कुछ वढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहा है। आपका नाम सचमुच ही इतिहास के पृष्ठ पर स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा।" मैंने कहा।

"क्या कह रहे हैं आप ! मुझे पता है, आप मेरे साथ मजाक कर रहे हैं। मगर मैंने जो कुछ किया है, वह प्रशंसा पाने के लिए नहीं। मुझे बस इच्छा यही है कि जिसकी स्मृति में यह संस्था है, उसका आदर्श देश के निवासियों के बीच प्रचारित-प्रसारित हो।

मिसेज राय दरअसल इस संस्था के लिए नहीं हैं बल्कि अपना उल्लू सीधा करने के लिए ही इस संस्था के नाम पर जो इतना कांड कर रही हैं, यह बात चाहे किसी की समझ में आये चाहे न आये, मगर मैं अच्छी तरह समझता हूँ।

मगर यह बात कह कर मैं मिसेज राय के दिल में ठेस पहुँचाना नहीं चाहता। क्योंकि चाहे जो हो, मिसेज राय चाहे जो कहें, दरअसल वे औरत ही हैं। अवला औरत को ठेस पहुँचाने में मेरा विवेक गवाही नहीं देता। सोचता, अहा, मिसेज राय जरा आत्म-प्रशस्ति करना चाहती हैं तो मैं उनकी राह में रुकावट वनकर क्यों खड़ा होऊँ ?

सो उस दिन भी जब एक लम्बे अरसे के बाद कलकत्ता पहुँचा तो वर्षान्ति का वह फोन आया। मिसेज राय का वही मधुर स्वर।

फिर भी मैंने पूछा, "आप कौन बोल रही हैं ?"

मिठास भरी आवाज में उत्तर आया, "मैं मिसेज राय बोल रही हूँ। आप कलकत्ते में ही हैं ?"

"नमस्कार", मैंने कहा, "परसों ही आया हूँ।"

मिसेज राय ने कहा, "बहुत ही अच्छी बात है। आगामी रविवार को मुकुल का जन्म दिवस है, आपको आना है। आप ना नहीं कह सकते।

इस बार हम लोगों के होम मिनिस्टर ने सभापतित्व करने की स्वीकृति प्रदान की है।

मैंने कहा, "जरूर आऊँगा, आप फिक्र मत करें।"

उसके बाद नियमानुसार निमन्त्रण पत्र मिला। मैं भी रविवार को निश्चित स्थान में पहुँच गया।

मुकुल स्मृति विद्यालय नाम सुनने में छोटा जैसा लगता है, मगर वह कोई छोटी-मोटी संस्था नहीं है। जब इसकी शुरुआत की गयी थी, तो बहुत छोटी थी मगर आगे चलकर वह एक विराट् संस्था के रूप में परिणत हो गयी।

पूछने पर पता चला था, छात्र-छात्राओं की तादात तकरीबन दो हजार है। छात्र-छात्राओं को पढ़ाने की फीस चालीस रुपये से कम नहीं। एक ही बात में समझ गया कि इसका आय-व्यय और संगठन बहुत बड़ा है। मैंने उसकी आलीशान इमारत की ओर गौर से देखा। पहले की तुलना में आज की इमारत का आकार-प्रकार बहुत बड़ा हो गया है। स्टाफ की संख्या में भी वृद्धि हुई है। पहले की तुलना में चमक-दमक और रौनक बहुत आगे बढ़ चुकी है। खासकर होम मिनिस्टर के आने की वजह से चमक-दमक में इतनी वृद्धि हुई है। लगा, सादे लिबास में कुछ पुलिस के आदमी भी घूम-फिर रहे हैं।

उद्बोधन संगीत शुरू हुआ।

समवेत गान में नामी-गरामी गायक-गायिकाएं सम्मिलित हुए हैं। लगा, गीत भी खासकर इसी उपलक्ष्य के लिए लिखाया गया है। उसके बाद सभापति का निर्वाचन। फिर माल्यार्पण, उसके बाद मुख्य अतिथि का भाषण।

मैंने मन लगाकर भाषण सुना।

उसे भाषण कहना गलत होगा। वह प्रशस्ति थी। स्वर्गीय मुकुल राय की प्रशस्ति। मुकुल राय कितने बड़े समाज-सेवी मनीषी और चरित्रवान थे, कितने दिशाओं में उनकी खोज-पड़ताल जारी थी, वे कितने बड़े प्रतिभाशाली थे और सबसे बड़ी बात यह कि वे कितने महान् पुरुष थे—मुख्य अतिथि इन्हीं बातों को विस्तार के साथ एक-एक घटना का उल्लेख करते हुए कह गये।

मैं चुपचाप सुनता रहा। सोचा, यह किसकी कहानी सुन रहा हूँ। अपने मित्र मुकुल राय की या रामकृष्ण परमहंस देव की? हालांकि

मुझे मुकुल के जीवन का प्रारंभ से अन्त तक का वृत्तांत मालूम था लेकिन यह सब बात मुझे कहाँ मालूम थी ?

मिसेज राय एक गेरुआ रङ्ग की साड़ी, जिस पर सफेद किनारी अलग से लगायी गयी है, पहने मञ्च पर एक किनारे बैठी हुई हैं। लेकिन इस आयोजन के हर कार्य की देख-रेख भी कर रही हैं। पहले के बनिस्बत जरा ज्यादा मोटी हो गयी हैं। देह में चर्बी बढ़ जाने के कारण कुछ और अधिक गोरी लग रही हैं।

मैं समझ गया, इस आयोजन की समस्त योजना और कार्यक्रम की रूपरेखा उन्होंने ही तैयार की है। वे इसकी प्रबंधिका ही नहीं हैं, बल्कि इन सारी बातों के पीछे उन्हीं के दिमाग की सूझ रही है।

मुख्य अतिथि के बाद एक और गण्यमान सदस्य भाषण देने के लिए खड़े हुए। उनके भाषण में भी मुकुल राय का गुणगान है। उन्होंने कहा : यह बङ्गाल के लिए सौभाग्य की बात है कि यहाँ मुकुल राय जैसे महापुरुष ने जन्म-ग्रहण किया था। बङ्गाल ही महामनीषी परमहंस देव की जन्म-भूमि है, करुणा-सागर विद्यासागर की जन्म-भूमि है, क्रान्तिकारी-साधक स्वामी विवेकानन्द की जन्म-भूमि है। इसी प्रान्त की मिट्टी में देशबन्धु, चितरंजन दास, महाप्राण चैतन्य देव ने जन्म लिया था और इसी बङ्ग भूमि में हमारे इस उत्सव और महाविद्यालय के उद्-गाता मुकुल राय का आविर्भाव हुआ था....

भाषण के बीच मिसेज राय मेरे पास आयीं। मैं सामने की कतार में ही बैठा था।

मेरे पास आकर उन्होंने कहा, "आपके आने से मुझे इतनी प्रसन्नता हुई है कि मैं इसे शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने में असमर्थ हूँ।"

इस तरह की मीठी बातें बोलना मिसेज राय का हमेशा से ही स्वभाव रहा है। कहा जा सकता है कि मिसेज राय के जीवन की यही पूंजी है। इसी पूंजी को लगाकर उन्होंने करोड़ों रुपये की संपत्ति अर्जित की है।

संपत्ति कहने से, हो सकता है, बहुतेरे व्यक्ति नाराज हो जायें। स्कूल कैसे संपत्ति हो जायेगा ? स्कूल का अर्थ है शिक्षण-संस्था, जिसका उद्देश्य है सेवा। इसे भी एक तरह की देश-सेवा की संज्ञा से आभूषित किया जा सकता है।

सो यह शायद देश-सेवा ही है। हो सकता है, यह मेरी कुटिल दृष्टि का दोष हो। मगर जब-जब मैं मिसेज राय के घर पर गया हूँ, उनका सरो-सामान, माल-असबाब, फर्नीचर और साज-सज्जा की शोभा देखकर मुझे अच्छा नहीं लगा है। मिसेज राय स्कूल से संलग्न मकान में वास करती हैं। मिसेज राय का ड्राइंग रूम वातानुकूलित है। भूटान के क्यूरिओ से सजी हाथी दाँत की तिपाई है, चीनी ऑर्किड बाँस के गिलास में झूल रहा है। अतिथि-अभ्यागत अगर मिसेज राय से मिलने आते हैं तो कोच पर बैठते ही छाती तक नरम डनलोपिलो की गद्दी के अन्दर धँस जाते हैं। उसके बाद गरमी के दिनों में उनके लिए शीतल पेय आता है और सरदियों में एसप्रेसो कॉफी। उसके साथ काजू-नॉट्स। नहीं तो फिर क्रिस्प, बिस्कुट या स्नैक्स।

आम तौर से उनके इस ड्राइंग रूम में छात्र-छात्राओं के अभिभावकों का प्रवेश-निषेध है। उनके लिए स्कूल की इमारत में विजिटर्स-रूम है। इस कमरे में वी० आई० पी० के अलावा किसी को भी प्रवेश करने का अधिकार नहीं है।

मिसेज राय के उस कमरे में बैठकर मैंने बहुत बार सोचा है, इस ऐश्वर्य के लिए उन्हें संपत्ति कर देना पड़ता है या नहीं। या जिनके पास इतने नौकर-चाकर, आया-बावर्ची और खानसामे की भीड़ लगी रहती है, उन्हें वर्ष में कितना आयकर देना पड़ता है।

मगर मिसेज राय खुद यह जरूर कहती थीं, "देखिए न, कैसा जमाना आ गया, टीचरों को अबकी महँगाई भत्ता नहीं दे पाऊँगी।"

मैं पूछता, "क्यों?"

मिसेज राय कहती, "गवर्नमेंट ने ग्रान्ट में कमी कर दी है। आप अखबार नहीं देखते?"

"ग्रान्ट में कितनी कमी कर दी?"

मिसेज राय कहतीं, "मेरा यह कोई साधारण इंस्टिट्यूशन तो है नहीं, सरकार इसे स्पेशल ग्रान्ट देती थी। मुझे क्वार्टरली डेढ़ लाख रुपया मिलता था, इसके अलावा नर्सरी डिपार्टमेन्ट के लिए हर महीने पचास हजार रुपया।"

मिसेज राय की बात सुनकर मैं दंग रह जाता था। इतना रुपया इस स्कूल के लिए!

मुझे अजीब तरह का एक कौतूहल होता था। कहता, "छात्रों से तो

आपको ट्यूशन फी के रूप में भी तो मोटी रकम मिलती है।" मिसेज राय के चेहरे पर दयनीयता तैरने लगती थी।

वे कहतीं, "आप इसे मोटी रकम कह रहे हैं? यह सब दुखदायी बात मुझसे मत कहें। मैंने मिस्टर चटर्जी से उस दिन यही बात कही थी। मिस्टर चटर्जी यहीं इस कमरे में बैठे हुए थे।"

"मिस्टर चटर्जी कौन?" मैंने पूछा।

मिसेज राय ने कहा, "यहाँ के एजुकेशन सेक्रेटरी। मिस्टर चटर्जी यहाँ अकसर आया करते हैं। मैंने उनसे कहा था: छात्रों से पैंतीस रुपये बतौर ट्यूशन फी लेती तो हूँ जरूर, मगर मैं उन्हें कितनी 'सर्विस' और 'फैसेलिटी' दे पाती हूँ? बहुत दिनों से ख्वाहिश है कि एक अच्छी-सी लाइब्रेरी बनवाऊँ। मुकुल चाहता था कि यहाँ एक ऐसी लाइब्रेरी कायम की जाये जो लोगों की आँखों में चकाचौंध पैदा कर दे। मगर कहाँ कायम कर पायी हूँ? देशी पुस्तकों से क्या लाइब्रेरी होती है? केमेस्ट्री की एक किताब विदेश से मँगाने में डेढ़ सौ रुपया खर्च हुआ था। मगर मैं गरीब आदमी हूँ, इतना खर्च कहाँ से करूँ? फॉरेन एक्सचेंज कहाँ मिलेगा? सेंट्रल गवर्नमेन्ट उसके लिए मुझे पैसा क्यों देगी? मेरा अपना है ही कौन? लेकिन उधर रामकृष्ण आश्रम जितने भी रुपये की माँग करता है, उसे मिल जाता है। मेरी बारी आयेगी तो अभाव का रोना रोने लगेगी। आप ही बताइए, मेरा भी यह स्कूल तो एक मिशन ही है। यह स्कूल खोलकर मैं क्या अपने पेट का खर्च चला रही हूँ? हजारों लड़के-लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा की जिम्मेदारी अपने मत्थे पर ले ली है तो इससे क्या देश की भलाई नहीं हो रही है? हालाँकि इन झंझटों को उठाने की जरूरत ही क्या थी? मैं विधवा औरत हूँ, थोड़ा-सा भात और कच्चे केले की सब्जी से ही मेरा काम चल जाता है।"

उसके बाद रुकीं, शायद किसी चीज पर उनकी नजर पड़ गयी थी। बोलीं, "यह क्या, आपने कुछ भी नहीं खाया, आपको एक अदद कटलेट देने कहती हूँ।"

मैं आपत्ति कर ज्यों ही उठने लगा, मिसेज राय बोलीं, "क्यों, कट-लेट खराब है क्या? मैं तो हमेशा न्यू मार्केट से फ्रेश चिकेन ले आती हूँ।"

मैंने कहा, "ऐसी बात नहीं, अब खाना अच्छा नहीं लग रहा है।"

मिसेज राय को अब कोई सन्देह नहीं रहा। तुरन्त तिपाई के नीचे का बटन दबाया। तत्क्षण उधर घंटी टुनटुनाने लगी और वर्दीधारी खानसामा आकर हाजिर हुआ। वह अदब के साथ मिसेज राय के सामने खड़ा हो गया और हुक्म का इन्तजार करने लगा।

मिसेज राय ने उसकी ओर ताकते हुए कहा, "केदार, अब्दुल को जरा मेरे पास भेज दो तो।"

केदार तुरन्त अब्दुल को बुलाने चला गया। अब्दुल कौन है और उसकी क्यों बुलाहट हुई, यह मेरी समझ में न आया।

थोड़ी देर बाद ही अब्दुल मुजरिम की तरह आकर मिसेज राय के सामने खड़ा हो गया।

उस पर नजर पड़ते ही मिसेज राय चीनी पटाखे की तरह भभक उठीं।

बोलीं, "अब्दुल तुमने यह कैसा काटलेट तैयार किया है? चिकेन कहाँ से ले आये थे?"

अब्दुल ने नौकरी जाने के डर से काँपते हुए कहा, "जी मेम साहब, न्यू मार्केट से।"

"न्यू मार्केट तो समझा, मगर न्यू मार्केट के किस स्टॉल से?"

अब्दुल ने कहा, "रहीम की दुकान से मेम साहब, जिसकी दुकान से आपने मुझे खरीदने को कहा था।"

मिसेज राय का चेहरा बिलकुल बदल गया। बोलीं, "मैंने तुम्हें रहीम की दुकान से खरीदने को कहा था, एक तो गलती की है और उस पर झूठ, मैंने तुम्हें कब रहीम के स्टॉल से चिकेन खरीदने को कहा था? तुम्हें मालूम नहीं कि रहीम के स्टॉल से मैं सिर्फ अंडा ही खरीदती हूँ। चिकेन छक्कू के स्टॉल से खरीदती हूँ।"

यह कहकर मिसेज राय मेरी ओर मुखातिब हुई और बोलीं, "देखा न, मैंने उससे बार-बार कहा है कि छक्कू के स्टॉक से चिकेन खरीदा करे। अभी वह मेरे सामने झूठ बोल रहा है। उसकी इतनी बड़ी ऑडोसिटी!"

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। मिसेज राय क्यों अब्दुल पर बिगड़ रही हैं, उसकी गलती क्या है, यह सब समझ नहीं पा रहा था। रहीम के स्टॉल से खरीदकर उसने कौन-सा अपराध किया है। काटलेट मुँह में रखने पर अलगाव मेरी समझ में नहीं आया था। लेकिन वे अब्दुल पर बिगड़ रही हैं।

मिसेज राय फिर अब्दुल की ओर मुखातिब हुईं और बोलीं, "तुम यह कैसा चिकेन ले आये और काटलेट बनाया कि बाबू इसे मुँह में रख ही नहीं पा रहे हैं।"

अब्दुल सिर झुकाये खड़ा रहा।

उसके बाद अब्दुल पर बिगड़ने का जो सिलसिला शुरू हुआ तो वह रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। मिसेज राय इतने कड़े स्वभाव की हैं और उनकी जबान से इतनी फटकार निकल सकती है, इसका मुझे पहले पता नहीं था।

आखिर में उन्होंने अब्दुल से कहा, "इसके बाद अगर तुमने [illegible] काटलेट तैयार किया तो तुम्हारी नौकरी नहीं रहेगी, यह बात मैं [illegible] से कहे देती हूँ। जाओ।"

अब्दुल तमाम गलतियों को स्वीकार कर वहाँ से [illegible]।

मिसेज राय मेरी ओर मुड़कर बोलीं, "देखा न, [illegible] को लेकर मुझे काम चलाना पड़ता है जो काम करने [illegible] हो पायेगा। मैं अकेली किस-किस तरफ ध्यान रखूँ? [illegible] लेकर चंडी पाठ तक मैं अकेले कैसे करूँ? जानते हैं, [illegible] तनख्वाह में टीचरों की नियुक्ति की है, मगर एक [illegible] काम नहीं करता, हालाँकि तनख्वाह लेने के वक्त [illegible] पैसे की माँग करेंगे। आप ही बताइए, यह क्या मेरा [illegible] मेरा व्यक्तिगत काम होता तो कुछ भी नहीं कहती। [illegible] नुकसान क्यों न होता, किसी से मैं कैफियत तलब नहीं [illegible] जबकि पब्लिक का काम है तो हर काम के लिए मुझे [illegible] जिम्मेदार रहना होगा, हर गलती के लिए मुझे [illegible] होगी।"

उसके बाद अचानक उनके मन में कोई [illegible]

बोलीं, "उफ्, एक गलती हो गयी।"

"क्या?"

"आपको ड्रिंक्स ऑफर करना [illegible] भुलक्कड़ हो गयी हूँ, कुछ भी याद नहीं [illegible] बात नहीं थी। अपने यहाँ मैंने हर तरह के [illegible] है। ह्विस्की भी मिल जायेगी, [illegible] चाहें तो वह भी है···बड़े-बड़े [illegible]

हैं, इसीलिए यह सब इन्तजाम करके रखना पड़ा है। बताइए, क्या लीजिएगा ?"

मैं मिसेज राय की बात पर अवाक् हो गया था। बोला, "वी० आई० पी० लोगों को शराब भी पिलानी पड़ती है ?"

मिसेज राय ने दाँत से जीभ काटते हुए कहा, "मैंने यह नहीं कहा कि सभी आदमी को पिलानी पड़ती है। मगर रखनी जरूर पड़ती है, इसलिए कि अगर कोई माँग बैठे। तब हाँ, स्कूल के पैसे से नहीं पिलाती हूँ। वह मेरा व्यक्तिगत खर्च है। आप क्या कह रहे हैं ? स्कूल के पैसे से मैं शराब पिलाऊँगी ? आजकल शराब सोसायटी में चाय-कॉफी की तरह चालू हो गयी है। पहले चाय-कॉफी-काजू-काटलेट देने से काम चल जाता था, आजकल उन चीजों के बदले ड्रिंक्स चलता है। वरना मेरा अपना खर्च है ही क्या, मेरा तो काम एक मुट्ठी भात और कच्चे केले की सब्जी से चल जाता है।"

यह सब पहले की घटना है। तब मुकुल स्मृति विद्यालय की इतनी बड़ी इमारत नहीं थी। तब कुल मिलाकर उन्नति का दूसरा अंक चल रहा था। तब कुल मिलाकर मुकुल स्मृति विद्यालय का नाम फैलना शुरू हुआ था।

उसके बाद कलकत्ते में आदमी की संख्या बढ़ने लगी। कुल मिलाकर हर मुहल्ले में दो-चार स्कूल-बसों का आना-जाना शुरू हो गया था। बस पर बड़े-बड़े अक्षरों में स्कूल का नाम लिखा रहता था। खासकर लड़कियों के स्कूलों के मामले में ऐसी बात थी। उसके बाद नर्सरी स्कूलों का तहलका मचा। सवेरे आँख खुलते ही देखने में आता, बाप-माँ छोटे-छोटे यूनीफार्म पहने लड़के-लड़कियों के साथ सूटकेस और पानी का फ्लास्क लिए खड़े हैं। बहुत देर तक खड़े रहने के बाद एक-एक कर स्कूल की बसें आती थीं और लड़के-लड़कियों को बिठाकर चली जाती थीं। माँ-बाप हाथ उठाकर बाल-बच्चों को 'टा-टा' करते थे।

यह युग इसी तरह का है। इसी युग में मुकुल स्मृति विद्यालय की ख्याति का पारा बैरोमीटर के आखिरी बिन्दु तक पहुँच गया। हर मुहल्ले के माँ-बाप अपने-अपने बच्चों को मुकुल स्मृति विद्यालय में

दाखिल कराने के लिए मिसेज राय के पास दौड़-धूप करने लगे। लिखाई-पढ़ाई के मानदंड पर किसी ने विचार नहीं किया, स्कूल की ट्यूशन फीस के बारे में किसी ने नहीं सोचा। बाप और माँ की नजर किसी दूसरे बच्चे के माँ-बाप पर पड़ती तो वे पूछते, "आपका लड़का किस स्कूल में पढ़ता है?"

अगर सुनते कि 'ब्यॉटरा बालिका विद्यालय' या 'विन्ध्येश्वरी हाई-स्कूल' में तो समझ जाते कि बेचारा गरीब आदमी है। दस-पंद्रह रुपया से अधिक खर्च करने की सामर्थ्य नहीं है। उसके ऊपर उन्हें तरस आतो।

लेकिन अगर मुकुल स्मृति विद्यालय का नाम सुनते तो श्रद्धा और भक्ति से विगलित हो जाते थे। चालीस रुपये फीस का स्कूल! इन लोगों के पास पैसा है। ये लोग बड़े आदमी हैं, इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं।

मिसेज राय ने इस मौके का पूरा फायदा उठाया।

तभी से मिसेज राय की दौड़-धूप बड़े-बड़े लोगों के पास होने लगी। तभी मिसेज राय एक-एक सीढ़ी को तय करती हुई सफलता की चोटी पर पहुँच गयी थीं। बड़े-बड़े लोग उनके कार्यालय में पहुँचने लगे। उन लोगों की स्थिति से ताल-मेल रखने के लिए मिसेज राय को अपना मकान वातानुकूलित करवाना पड़ा, बावर्ची, बेयरा, बॉय और खानसामा रखना पड़ा, चॉप-कटलेट-फ्राइ-चाय-कॉफी-काजू-नॉट्स के साथ-साथ ह्विस्की, रम, जिन, बीयर का इन्तजाम करना पड़ा। और जैसा कि स्वाभाविक है, मिसेज राय की देह की चर्बी, पद-मर्यादा, पोशाक, साड़ी, ब्रेसियर की क्वालिटी भी बदलने लगी। वे दिन-दिन और भी अधिक खूबसूरत दिखने लगीं।

एक बार में यदि कहा जाये तो चाँद जिस तरह सोलह कलाओं से पूर्ण हो जाता है, मिसेज राय भी उसी तरह चौंसठ कलाओं से परिपूर्ण हो गयीं।

तभी से हर वर्ष तड़क-भड़क के साथ मुकुल राय की स्मृति-वार्षिकी आयोजित होने लगी।

बहरहाल मिसेज राय मेरे पास बैठी हुई थीं। उनकी देह या साड़ी से कस्तूरी सेन्ट की खुशबू आकर मेरे नथुने में समा रही थी।

मिसेज राय ने धीमी आवाज में कहा, "आपको कुछ न कुछ कहना ही है, नहीं तो मैं छोड़ूंगी नहीं।"

मैंने कहा, "हर बार तो बोलता ही हूँ, इस बार अगर कुछ नहीं बोलूँ तो हर्ज ही क्या है ?"

मिसेज राय ने कहा, "ऐसा कहीं होता है ? आप मुकुल के बचपन के दोस्त हैं, आपका लेक्चर सुनने के लिए बहुत से आदमी उत्कंठित हैं।"

मैंने कहा, "मुझे कोई नयी बात तो कहनी नहीं है।"

मिसेज राय ने कहा, "मुकुल के बारे में कुछ नयी बात कहने का आपके पास नहीं है ? आप क्या कह रहे हैं ? मुकुल के बारे में एक बार कहने से ही बात खत्म हो जाती है ?"

मैंने कहा, "नहीं, खत्म नहीं होती। मगर श्रोतागण क्या व्यक्तिगत बातें सुनना पसन्द करेंगे ?"

मिसेज राय ने कहा, "उन्हीं लोगों के अनुरोध पर मैं आपसे बोलने के लिए कह रही हूँ। मैं उनके बारे में बहुत-सारी बातें करती हूँ। उन लोगों का कहना है, आप लोग उन पर एक पुस्तक लिख डालिए। मैं भी बहुत दिनों से यही बात सोच रही हूँ। ऐसा क्यों न हो कि आप ही एक नयी किताब लिख डालें। उसे मैं आठवें और नवें दर्जे में टेक्स्टबुक के तौर पर रख दूँगी। आपको भी खासी अच्छी रॉयल्टी मिलेगी। साल में कम से कम तीन हजार पुस्तकों की खपत हो जायेगी, मैं आपको इस बात की गारन्टी दे सकती हूँ।"

मैंने सीधे मिसेज राय के चेहरे की ओर देखा और देखकर यह ...नना चाहा कि वे मुझसे दिल्लगी कर रही हैं या मेरी परीक्षा ले रही ।

मगर एकाएक हमारी बातचीत में खलल पहुँचा। जो सज्जन भाषण दे रहे थे वे अपना भाषण समाप्त कर बैठ चुके थे। उसके बाद दूसरे वक्ता का भाषण शुरू हुआ।

उन्होंने कहा, "अब आपको उठना पड़ेगा। अब तैयार रहें, मैं आपको आकर ले जाऊँगी।"

वे किसी काम से मंच के बीच चली गयी थीं। मैं सोचने लगा, यह अभिनय और कितने दिनों तक चलेगा ? हर साल मैं इस आयोजन में उपस्थित होता रहूँगा और हर बार टोकरी-भर झूठी बातें बोलता रहूँगा ? इस असत्य की पुनरावृत्ति कितने दिनों तक चलेगी ! सभी क्या मिसेज राय की खुशामद से बहकावे में आकर मुकुल राय के बारे में

यह सब सजी-सजायी और रटी-रटायी बातें अनन्तकाल तक दुहराते जायेंगे और कोई इसका प्रतिवाद नहीं करेगा ? मिसेज राय के वातानुकूलित कमरे में बैठकर चाय-कॉफी-काजू, ह्विस्की, रम, बीयर की रिश्वत लेते रहेंगे और समाज की इतनी बड़ी हानि करते रहेंगे ? मेरे जैसे वे लोग जो मुकुल को जानते हैं, जब दुनिया से चले जायेंगे तो बाकी लोग तो यही समझेंगे कि मुकुल राय एक निःस्वार्थ, सच्चरित्र और देव-दुर्लभ पुरुष थे। इतना बड़ा असत्य ही तब चरम सत्य बनकर आदमी को भुलावे में रखे रहेगा। हो सकता है किसी दिन सचमुच ही मुकुल राय की जीवनी प्रकाशित हो। आज के विभिन्न वक्ताओं के मुख से जो झूठ बार-बार उच्चारित होकर वायु-मण्डल में फैला हुआ है, भविष्य में प्रेस के प्रताप से आने वाली पीढ़ी को वही वेद-वाक्य प्रतीत होगा। यह मुकुल स्मृति विद्यालय एक झूठ है, इस विद्यालय की जो अधिष्ठात्री देवी मिसेज राय हैं, वे झूठ हैं, और आज के आयोजन के जो अध्यक्ष होम मिनिस्टर हैं, उनके भाषण का हर अक्षर, हर शब्द, हर शब्द का अर्थ एक सफेद झूठ है। ये लोग सभी मिसेज राय के वातानुकूलित कमरे में ह्विस्की-रम जिनकी रिश्वत हलक के नीचे उतार कर यहाँ मुकुल राय स्मृति वार्षिकी का आयोजन कर आत्म-प्रचार कर रहे हैं, अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। कल सवेरे के अखबारों में इस सभा की जो रिपोर्ट छपेगी वह सब भी झूठ ही झूठ रहेगी। ये लोग सभी झूठ बोलने वाले की जमात के हैं। यह असत्य ही किसी दिन सत्य के रूप में स्वीकार लिया जाता है तो उस दिन का कोई सत्यवादी व्यक्ति, हो सकता है, अतीत काल के हम जैसे व्यक्तियों से कैफियत माँगें। तब हमें मसान की राख के तले से कैफियत देनी होगी। उस दिन हमें कहना होगा कि हमने मिथ्या आचरण का सहारा लिया था, इसके लिए हमें दंड दो।

अचानक मिसेज राय की आवाज सुनकर मेरी चेतना वापस आयी।

मिसेज राय ने कहा, "चलिए, अब आपकी बारी है।"

मैं उठकर खड़ा हो गया। सीढ़ियाँ तय कर मंच पर पहुँचा। मेरी लम्बाई की माप के अनुसार माइक्रोफोन को ठीक कर दिया गया।

मैंने अपना भाषण शुरू किया :

लेकिन मैं क्या कहूँ ? मन ही मन मैं पूरे अतीत के चारों तरफ का चक्कर काटने लगा। सब कुछ जैसे गड़बड़ा गया। मैं भूल गया कि मैंने

क्या कहने को सोचा था। एक ही पल में तीस-चालीस वर्ष पीछे की ओर लौट गया।

मुकुल। मुकुल राय। मुकुल राय की याद आते ही जो दृश्य पहले-पहल मेरी आँखों के सामने आया, वह है मैट्रिक का परीक्षा-फल निकलने के बाद की वह रुलाई।

उन दिनों मैट्रिक का परीक्षा-फल दरभंगा बिल्डिंग के एक मंजिले की दीवार पर टाँग दी जाती थी। सुबह से ही खड़े-खड़े जब हम धीरज खो बैठते तो शाम के वक्त लम्बे-लम्बे कागज पर लिखा हुआ परीक्षा-फल दीवार पर चिपका दिया जाता था। तब चारों तरफ अँधेरा रहता था। कलकत्ता युनिवर्सिटी की ओर से बिजली की कोई बत्ती नहीं जलायी जाती थी। हम जैसे परीक्षा का पैसा जमा कर चोरी के अपराध में पकड़ लिए गये हों। यानी जो भी जिम्मेदारी थीं, वह छात्रों की ही, युनिवर्सिटी की नहीं। आज के छात्रों पर दोषारोपण कर जो लोग लंबा-लंबा भाषण देते हैं, उन्हें समझना चाहिए कि ऊपर वालों का पाप ही इतने दिनों के बाद फल रहा है। आज यदि इस तरह का वाकया होता तो विद्यार्थी-समुदाय बम से पूरी इमारत को उड़ा देते।

मैं जब अपना नम्बर देखकर लौट रहा था तो मुकुल को फाटक के पास खड़ा पाया।

पूछा, "क्या जी, क्या हुआ, पास हो गये हो ?"

मुकुल ने कहा, "मैं खुदकुशी कर लूंगा, भाई।"

"क्यों ? फेल हो गये हो ?"

याद है, उसकी बात सुनकर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ था। आज का मुकुल राय उर्फ उन दिनों का सनातन दत्त किसी दिन मैट्रिक पास नहीं कर सकता है, यह बात हमें मालूम थी। उन दिनों परीक्षा-हॉल में आज की तरह नकल करने की सुयोग-सुविधा नहीं थी। पास करने से पास होता था और फेल करने से फेल। उन दिनों फेल का मानी था सर्वनाश होना। एक साल बर्बाद हो जाता था। यही नहीं, किसी-किसी के लिए घर में खाना-पीना बन्द कर दिया जाता था। यहाँ तक कि बहुत से माँ-बाप लड़के को घर से निकाल देते थे। उन दिनों फेल होने से बदनामी फैलती थी। लोग उँगली दबाते थे। कहते : "देखो-देखो, यह लड़का फेल हो गया है।"

याद है, मैंने सनातन को सांत्वना दी।

मैंने कहा, "रो क्यों रहे हो ? अगले साल फिर परीक्षा में बैठ जाना, जरूर ही पास हो जाओगे। चलो अभी घर चलो।"

सनातन ने कहा, "तुम घर जाओ, मैं नहीं जाऊँगा।"

मैंने कहा, "घर नहीं जाओगे तो फिर कहाँ जाओगे ?"

सनातन ने कहा, "यह बात तुम्हें सोचना नहीं है, तुम घर चले जाओ।"

पता नहीं, मुझे क्यों डर लगा कि वह कहीं आत्महत्या न कर ले।

आज के युग में कोई फेल हो जाने से कोई आत्महत्या नहीं करता। लेकिन उस युग में इस तरह की बहुत सारी घटनाएँ घट चुकी हैं। ऐसा बदलाव क्यों आया, इस पर मैंने बहुत सोचा-विचारा है। इस युग में आदमी का आदर्श ही शायद बदल गया है। खास तौर से राज-नैतिक नेताओं का चरित्र देखकर उनकी धारणाओं में इतना परिवर्त्तन आ गया है। आज के नेताओं में जब कि अधिसंख्य फेल किये हुए छात्र हैं तो आत्महत्या करने से लाभ ही क्या ? इन नेताओं की तरह वे भी एक दिन बड़े आदमी होंगे, जनता की श्रद्धा के पात्र होंगे—इसका दृष्टान्त ये लोग अपने आस-पास ही पा रहे हैं।

मगर सनातन राय ने उस दिन आत्महत्या जो नहीं की [illegible] है यह मुकुल स्मृति विद्यालय।

आज यदि आप अपने बच्चों को मुकुल स्मृति [illegible] कराने जायें तो सीधे रास्ते से आप यह काम नहीं कर [illegible]। [illegible] दत्त स्वयं स्कूल के बाड़े को लाँघ नहीं सका, [illegible] परलोक से इसी की चेष्टा कर रहा है कि [illegible] नहीं कर सके।

सिर्फ चालीस रुपया ही फीस के तौर [illegible] साथ पेंतीस रुपया बस के किराये के [illegible] कापी, ड्राइंग बुक। उस पर आज [illegible] के पीछे एक सौ रुपये की मोटी [illegible]

मिसेज राय ने यह सब [illegible] उद्देश्य से किया है। वरना [illegible] नहों के बराबर है। एक [illegible] उनके दिन कट जाते हैं।

खैर, दूसरे ही दिन [illegible]

सनातन के वृद्ध पिता हाँफते हुए मेरे घर आये और बोले, "सनातन पर नजर पड़ी है, बेटा ?"

मैंने कहा, "हाँ, कल शाम दरभंगा-बिल्डिंग में मुलाकात हुई थी।"

"तुम्हें मालूम है, बेटा, कि वह पास हुआ है या फेल ?"

मैंने कहा, "मैंने देखा नहीं था, उसी ने मुझसे बताया था कि वह फेल हो गया है।"

"रात में वह घर क्यों नहीं गया ?"

मैंने कहा, "उसने कहा था कि वह घर नहीं जायेगा।"

'आत्महत्या' की मैंने चर्चा नहीं की। इकलौता बेटा है, उसकी आत्महत्या के संकल्प की बात सुन लें तो हो सकता है वे मर जायें। मगर उनकी समझ में सब कुछ आ गया। लड़के के लिए उन्होंने बहुत-कुछ किया है। खुद अभाव में रहकर लड़के की लिखाई-पढ़ाई और खाने का खर्च जुटाते हैं। लेकिन निठल्ले लड़के ने बाप के स्नेह का खूब बदला लिया। कहीं दिखायी नहीं पड़ा। परिवार में माँ-बाप और एक विधवा बुआ थी, एक-एक कर सभी चल बसे। उस समय भी सनातन का कोई पता नहीं चला।

इसके बाद धरती ने अनजाने ही किस दिशा में अपना कक्ष परिवर्तित कर लिया, उसे हम आँखों से देख नहीं सके, हालाँकि इसका अहसास हमें जरूर हुआ। हमने अपनी आँखों से मूल्य में बदलाव आने की घटना देखी। आज परीक्षा में फेल होने से पहले की तरह कलंक का टीका नहीं लगता है। कोचिंग स्कूल के माध्यम से स्कूल के शिक्षक पैसा लेकर परीक्षा का प्रश्न बतला देते हैं। दूध, खाद्य पदार्थ, दवा, वायु और आकाश में मिलावट का दौर चलने लगा है।

लेकिन शिक्षण के क्षेत्र में मिलावट का जो दौर चला तो वह सबको पीछे छोड़ गया। अन्ततः एक दिन ऐसा वक्त आया जब फेल होने पर छात्र पास हो जाते थे, और पास होने पर फेल हो जाते थे।

तब कुल मिलाकर दुनिया में लड़ाई का दौर शुरू हो गया था। अपनी-अपनी किस्मत के कारण हम इधर-उधर छिटक कर चले गये। दोस्त-मित्रों की खोज-खबर रखने की जरूरत हमें महसूस नहीं हुई और उस समय उसका सुयोग भी नहीं था।

तभी मेरी पोस्टिंग राजस्थान के अजमेर शहर में हुई। वहाँ मैं दिन

में दफ्तर में काम करता था और तीसरे पहर घर चला जाता था। काम की भीड़ के कारण छुट्टी विताने का सुयोग नहीं मिलता था।

छुट्टी का दिन था। शाम के वक्त घर में बैठे रेडियो समाचार सुन रहा था। अचानक बाहर के सदर दरवाजे की कुंडी खटखटाने की आवाज आयी।

"कौन ?"

दरवाजा खोलते ही कालेज के कुछ छात्रों पर नजर पड़ी, जो मुझसे मिलना चाहते थे। उन लोगों के कॉलेज में रवीन्द्रनाथ का नाटक मंचित होने जा रहा है। शहर में जितने भी बङ्गाली हैं, हिन्दी भाषा में रूपान्तरित नाटक का अभिनय देखने के लिए उन्हें आमन्त्रित कर रहे हैं।

मैं जाने के लिए सहमत हो गया। "निर्धारित समय पर पहुँच जाऊँगा।" मैंने कहा।

नाटक का नाम है 'विसर्जन'। बंगला में इसका अभिनय बहुत बार देख चुका हूँ। लेकिन गैर बङ्गाली इसका अभिनय किस तरह करते हैं, यह देखने के लिए मन में तीव्र कौतूहल था।

निर्धारित दिन अभिनय देखने गया। जो लोग स्थानीय बङ्गाली हैं, वे लोग सपरिवार आये हैं एक तो रवीन्द्रनाथ का नाटक उस पर राजा-रानी की पृष्ठभूमि। खास तौर से सभी में उत्सुकता इस बात की है कि इस उपलक्ष्य पर एक-दूसरे से मिलने-जुलने का मौका मिलेगा। आयोजन भी काफी सफल रहा। रवीन्द्रनाथ की एक तसवीर फूलों के हार से सजी हुई थी। आयोजन के अन्त में संस्था के अध्यक्ष ने सूचना दी कि इस आयोजन को जो श्रेय प्राप्त हुआ है, उसमें प्रोफेसर मुकुल राय का ही सबसे बड़ा हाथ रहा है। वे बङ्गाली हैं, मगर यहाँ बहुत दिनों से अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। इस नाटक के अभिनय की तालीम उन्होंने ही दी है यहाँ तक कि निर्देशन और परिकल्पना का सारा श्रेय एकमात्र उन्हीं को है।

उत्सव के अन्त में मेरे मन में इच्छा जगी कि निर्देशक से एक बार मिल लूँ।

अन्दर जाकर मैंने आयोजकों से कहा, "मैं भी बङ्गाल से ही आया हूँ, इसलिए आपके निर्देशक महोदय से एक बार मिलकर उन्हें बधाई देना चाहता हूँ।"

भले आदमी ने कहा, "ठीक है आइए।"

यह कह कर मञ्च से होते हुए हमें नेपथ्यशाला में ले गये। जाने के वाद एक व्यक्ति की ओर इशारा करके कहा, "आप हैं प्रोफेसर मुकुल राय।"

जिस व्यक्ति के सामने मुझे ले जाकर खड़ा किया गया, उसे देखते ही मैं चिहुँक उठा। सनातन है न!

सनातन भी मुझे देखकर चौंक उठा और दूसरी ओर जाने लगा। मैंने उसकी ओर बढ़कर कहा, "तुम सनातन हो न!"

सनातन का चेहरा एक क्षण के लिए बुझ गया और उसके बाद फिर स्वाभाविकता लौट आयी। मेरी बात समाप्त हो कि उसके पहले ही उसने मुझे छाती से लगा लिया। बोला, "ओह, कितने दिन पर तुमसे मुलाकात हुई!"

यह कर कर उसने अब देर नहीं की। मुझे खींचता हुआ बाहर सड़क पर ले आया।

तब आयोजन समाप्त हो चुका था। दर्शकों की भीड़ से सड़क भरी हुई थी। भीड़ से निकल कर सनातन मुझे दूर खड़े एक तांगे के पास ले गया। उसके बाद मेरे पास बैठ गया और तांगे वाले से कहा, "आदर्श नगरी कॉलोनी।"

मेरी आँखों के सामने उस समय जैसे जादू का खेल चल रहा था।

मैं अब ज्यादा देर तक चुप्पी साधे नहीं रह सका। अपने सनातन को यहाँ इस अजमेर में इस रूप में देख पाऊँगा, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की। सनातन यहाँ मुकुल राय कैसे हो गया? प्रोफेसर कैसे बन गया?

सनातन ने पूछा, "तुम्हारा यहाँ कैसे आना हुआ?"

"मैं भी तो तुमसे यही सवाल करना चाहता हूँ। मैं यहाँ अपने बैङ्क ब्रांच के ब्रांच आफिस का ऑडिट करने आया हूँ। एक महीने से यहीं हूँ। मगर तुम?" मैंने कहा।

सनातन गंभीर हो गया। चेहरे पर और अधिक गम्भीरता लाकर बोला, "मैं? मैं मर चुका हूँ, भाई, मैंने खुदकुशी कर ली है।"

"इसका मतलब?"

सनातन ने कहा, "हाँ, अब तुम मुझे सनातन नाम से मत पुकारना।"

मैंने कहा, "मगर बात क्या है ? इतनी-इतनी जगहों के रहने के बावजूद तुम यहाँ कैसे आ टपके ? तुम्हारे लिए चिन्ता करते-करते तुम्हारे बाप चल बसे ! उसके बाद बहुत दिनों तक तुम्हारी माँ और बुआ तुम्हारा इन्तजार करती रहीं, अन्त में वे भी चल बसीं। मुझे याद है, तुम्हारे लिए अखबारों में विज्ञापन दिया गया था। आखिर में हमने मान लिया कि तुम मर चुके हो।"

सनातन ने कहा, "तुम लोगों की धारणा ही सही है, मैं मर चुका हूँ, जिन्दा नहीं हूँ।"

मैंने कहा, "यह तो नखरेबाजी हुई, असली बात क्या है, यही बताओ।"

सनातन ने असली बात ताँगे पर बैठकर नहीं बतायी। बोला, "घर चलकर तुम्हें सारी बात बताऊँगा। मगर मेहरबानी कर मुझे सनातन दत्त कहकर मत पुकारना। मैं मुकुल राय हो गया हूँ। यहाँ मैं एम० ए० पास हिस्ट्री का प्रोफेसर हूँ।"

मैंने कहा, "यह कैसे हुआ ?"

सनातन ने कहा, "पहले जबान दो कि यह सब बात किसी से नहीं कहोगे। पहले मुझे छूकर प्रतिज्ञा करो।"

मैंने वैसा ही किया। तब सनातन ने कहा, "भाई, यहाँ इस नौकरी में मुझे ढाई सौ रुपया तनख्वाह मिलती है। मगर कब पकड़ा जाऊँगा, कह नहीं सकता।"

तब तक हम आदर्शनगर कॉलोनी पहुँच चुके थे। ताँगे से उतरने के बाद सनातन ने किराया चुकाया और एक मकान के सामने पहुँच दरवाजे की कुंडी खटखटाने लगा।

एक महिला ने आकर दरवाजा खोल दिया। महिला ने विस्मय के साथ जैसे ही मेरी ओर ताका, सनातन ने कहा, "इसे तुम पहचान नहीं सकी, माया ? इसने और मैंने एक साथ एक ही कॉलेज से एम० ए० पास किया है।"

यह कहकर मेरा नाम भी बता दिया।

हमने एक दूसरे को नमस्कार किया। सनातन ने कहा, "लो, देख लो, यही मेरी कुटिया है। अब जब भी ऑडिट करने के लिए अजमेर आओ, मेरे यहाँ ही ठहरना।"

माया ने भी कहा, हाँ, "हमारे यहाँ ही ठहरिएगा।"

उसके वाद जैसा कि रिवाज है, चाय-नाश्ता वगैरह आया। मैंने ध्यान से देखा, कमरा करीने से सजा हुआ है। महिला में खासा-अच्छा रुचि-वोध है। घर के सरो-सामान करीने से सजे हुए हैं।

वातचीत के दौरान कई छात्र आये। वे लोग सनातन के घर पर आकर पढ़ते हैं। उसके लिए फीस के तौर पर मोटी रकम देते हैं।

मास्टर साहब ने उनसे कहा, "आज लिखाई-पढ़ाई नहीं चलेगी, क्योंकि उनके घर पर मेहमान आये हैं।

वे लोग प्रसन्नता के साथ लौट गये।

सनातन ने कहा, "ये लोग मेरे प्राइवेट छात्र हैं। मैं उन्हें यहाँ हिस्ट्री पढ़ाता हूँ।"

मैं सनातन की वातें सुन रहा हूँ और मेरे मन में भय समा रहा है। सनातन ने मैट्रिक पास नहीं किया है, यह वात मैं भूल नहीं पा रहा हूँ। सनातन दत्त दरअसल सनातन दत्त क्यों नहीं है, यह वात अभी मेरी समझ में नहीं आ रही है। मैं इस समय सिर्फ यही सोच रहा हूँ कि यह कैसे संभव हुआ! फिर क्या इस धरती पर सव कुछ संभव है? फिर क्या दिन को रात समझ लेना होगा?

उन दिनों युद्ध की शुरुआत थी। चारों तरफ नौकरी बिखरी हुई थी। जो लोग वेकार थे, घर में वैठे-वैठे हर दफ्तर में नौकरी के लिए दरख्वास्त भेजते रहते थे, वे भी अन्ततः वेकार नहीं रहे।

सिनेमा में दरवाजे के सामने लंवी-लंवी कतारें लगने लगी थीं। 'क्यू' किसे कहा जाता है, यह बात उसी वक्त कलकत्ते के लोगों को मालूम हुआ। लोगों को इस वात की भी जानकारी प्राप्त हुई कि रुपया कमाने के कितने तरह के रास्ते हैं।

हमारे जीवन में वह युग एक स्मरणीय काल बनकर रेखांकित है।

एक तरफ जहाँ अभाव अपनी चरम सीमा में था, दूसरी तरफ उसी रूप में सुख-सुविधा थी। एक ओर अकाल मृत्यु का दौर चल रहा था, दूसरी ओर दुर्निवार व्यभिचार। उसी दिन से मान लिया गया कि विद्यासागर ने अपनी पुस्तक 'वोधोदय' में जो कुछ कहा है, वह असत्य है, असल में सत्य वोलना ही पाप है। जो सत्य वोलता था, लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे।

इन सव वातों की चर्चा हम दोस्त-मित्रों की जमात में करते थे।

हम लोगों में से जिन लोगों को मिलिटरी की ठेकेदारी मिल गयी,

उन लोगों का अद्‌भुत रूपान्तर अपनी आँखों से देखा। जो चीज हम आँखों से देख नहीं पाये, वह अखबार के माध्यम से हमारी नजरों से गुजरी।

ठीक ऐसे ही वक्त में हमारे सनातन के जीवन में इस तरह का प्रभाव पड़ेगा, यह बात मेरी कल्पना के बाहर की चीज थी।

उस दिन मैं सनातन के घर पर ज्यादा देर तक नहीं था। कुछ देर बाद ही मुझे वहाँ से लौट आना पड़ा।

आने के पहले मैंने कहा, "अब मैं चलता हूँ, भाई।"

सनातन की पत्नी ने कहा, "फिर कब आइएगा?"

मैंने कहा, "जल्दी ही आऊँगा। घर पहचान लिया, अब मुझे कहने की जरूरत नहीं।"

माया ने कहा, "नहीं, पहले ही बता दें कि कब आइएगा, मैं डिनर का इन्तजाम करके रखूँगी।"

सनातन ने भी कहा, "हाँ-हाँ, बता दो कि कब आओगे। कल ही आओ न।"

मैंने कहा, "नहीं, कल नहीं, कल मुझे एक काम है। समय निकालकर कभी आऊंगा।" माया भी मुझे छोड़ने के लिए दरवाजे के बाहर बगीचे तक आयी। उसके बाद मैं नमस्कार कर बाहर निकल आया।

सनातन और मैं टहलते हुए कुछ दूर तक आये। जब तक कोई ताँगा नहीं मिल जाता है, होटल पहुँच नहीं पाऊँगा।

सनातन ने कहा, "सड़क पर ही ताँगा मिल जायेगा। अभी बस बन्द हो गयी है वरना बस से ही तुम जा सकते थे।"

आदर्श नगर कॉलोनी नयी-नयी बसी है। जितने भी मकान हैं, सबके सब नये हैं। सभी मकान बंगला टाइप के हैं। आकाश के माथे के ऊपर उगे चाँद ने उस जगह को खासी-अच्छी रोशनी से भर दिया है।

एकाएक मैं पूछ बैठा, "तुम्हें यह नौकरी कैसे मिली? तुमने क्या सचमुच ही एम० ए० पास किया है?"

सनातन ने कहा, "आदमी जब अभाव में होता है तभी वह वास्तव में अपने आपको पहचानता है। कलकत्ते से भागकर जब मैं इलाहाबाद पहुँचा तो उस समय मेरी समझ में आया कि भूख किसे कहते हैं। उसी समय मेरी समझ में आया कि मैंने गलती की है। न पढ़ने की गलती तभी मेरी समझ में आयी। मैंने तय किया, आत्महत्या कर लूँगा।"

इतना कहकर सनातन कुछ देर के लिए खामोश हो गया।

"उसके बाद ?" मैंने कहा।

"उसके बाद तो आत्महत्या ही कर ली।" सनातन ने कहा।

"इसका मतलब ?"

"इसका मतलब यह कि सनातन दत्त ने आत्महत्या कर ली।"

"सनातन दत्त ने आत्महत्या कर ली तो वह मुकुल राय कैसे हुआ ?"

सनातन ने कहा, "मुकुल राय हिस्ट्री में एम० ए० था। वह मेरा मित्र था। मित्र कहने का मतलब है मेरा भक्त। उस समय मैं उसे जो कुछ कहता था, वह वही काम करता था।"

मैंने पूछा, "उससे तुम्हारी कैसे जान-पहचान हुई ?"

उसके बाद उसने जो कुछ संक्षेप में कहा, उसे मैं यहाँ संक्षेप में ही कह रहा हूँ। उस समय ताँगा नहीं मिला था। मुझे यद्यपि घर लौटने की जल्दबाजी नहीं थी, मगर उसे तो थी ही। उसके लिए उसकी पत्नी माया खाना परोसकर बैठी होगी। और मैं ठहरा होटलवासी।

सनातन ने मेरी ओर देखकर कहा, "देखो, माया के सामने मैं तुमसे यह सब बात नहीं करना चाहता था। वादा करो कि तुम माया से नहीं कहोगे। और सिर्फ माया से ही क्यों दुनिया के किसी आदमी से भी नहीं।"

मैंने कहा, "नहीं कहूँगा, वचन देता हूँ।"

सनातन ने कहा, "देखो, जब तक तुम मेरे कमरे में बैठकर बातचीत करते रहे, मुझे यही डर लगता रहा कि कहीं तुम मुझे सनातन नाम से पुकार न बैठो।"

मैंने कहा, "अपनी पत्नी से भी तुमने असल बात नहीं बतायी है ?"

"पागल हुए हो ? यह बात सिर्फ तुम्हें ही मालूम है वरना लोग मुझे मुकुल राय के नाम से ही जानते हैं। जानते हो, यहाँ के छात्र प्रोफेसर राय का नाम लेकर गद्गद हो जाते हैं। आसपास के तमाम स्कूल-कॉलेज के लड़के मेरा भाषण सुनने आते हैं।"

"तुमने हिस्ट्री कब पढ़ी ?"

सनातन ने कहा, "नौकरी पाने के बाद। वह जो तुमने ढेर सारी पुस्तकें देखीं, उन्हें मैंने रात में जग-जगकर पढ़ा है।"

उसके बाद जरा रुककर फिर कहने लगा, "लेकिन सिर्फ पढ़ने से ही

काम नहीं चलेगा। जिस आदमी ने मैट्रिक भी पास नहीं किया है उसे लोग प्रोफेसर की नौकरी क्यों देंगे ? आज जो मुझे ढाई सौ रुपया मिल रहा है, वह मेरी डिग्री देखकर ही दे रहा है। मेरे पास एम० ए० की डिग्री का अर्थ ही है छपा हुआ एक कागज। उस छपे हुए कागज की इतनी कीमत है, यह बात मैं अगर बचपन में जानता तो आज मुझे मुकुल राय का नाम बेचकर रोजी-रोटी नहीं चलानी पड़ती। छपे हुए एक जाली कागज के लिए मुझे हमेशा मुकुल राय बनकर रहना होगा।"

उसके बाद उसने मुझे फिर सावधान कर दिया।

बोला, "भाई, गलती से भी तुम मुझे कभी सनातन दत्त के नाम से पत्र मत भेजना। कलकत्ता लौटने के बाद किसी से मत कहना कि मुझसे तुम्हारी यहाँ मुलाकात हुई थी।"

मैंने कहा, "मगर यह मुकुल राय कौन है ? उसके कोई सगे-संबंधी, भाई-भतीजा वगैरह नहीं हैं ?"

"वह एक अजीब ही कांड है, भाई। यह भी शायद मेरा सौभाग्य ही है। मेरे भाग्य में परिवर्त्तन लाने के लिए ही शायद उसने जन्म लिया था और एम० ए० पास किया था।"

मैंने कहा, "कैसे ?"

सनातन ने कहा, "दरअसल उसके पास कलकत्ता युनिवर्सिटी की नहीं, रंगून युनिवर्सिटी की एम० ए० की डिग्री थी। बर्मा में ही उसका मकान था। घर से भागकर नौकरी की खोज में हिन्दुस्तान आया था। इलाहाबाद में उससे मेरी मुलाकात हुई। हम दोनों ने तय किया कि हम मिल-जुलकर लकड़ी का कारोबार करेंगे। मगर पैसा कहाँ था जो कारोबार करें ? हम धर्मशाला से स्टेशन तक यात्रियों का बोझा ढोने लगे। उससे जो पैसा मिलता, उससे ही दोनों वक्त का खाना जुटाने लगे। उसी वर्ष इलाहाबाद में कुंभ का मेला लगा और [illegible] [illegible] भाग्य में एक परिवर्त्तन आया। एक महिला तीर्थयात्री कुंभमेला देखने आयी थी और धर्मशाला ही में टिकी थी। उस बुढ़िया के पास [illegible] [illegible] रुपया था। हम दोनों ने उसकी देख-रेख की जिम्मेदारी ली। उसकी गठरी की हम देख-भाल करने लगे। लौटने के वक्त हमारी [illegible] [illegible] होकर बुढ़िया हमें पचास रुपया दे गयी। उसी पचास [illegible] [illegible] [illegible] हमने पान-सिगरेट को दुकान खोल दी।"

"उसके बाद ?"

सनातन ने कहा, "आज रहे, बहुत रात हो चुकी है, बाद में किसी दिन कहूँगा। देखो, एक ताँगा आ रहा है, उसी पर बैठ जाओ।"

मैंने कहा, "इसका अन्त सुनने की इच्छा हो रही है। बाद में ताँगा नहीं मिलेगा ?"

सनातन ने कहा, "मिल जायेगा। बल्कि कई ताँगे मिल जायेंगे। लेकिन घर पर मेरी पत्नी को सन्देह होने लगेगा। कहेगी :

'इतनी देर तक तुम क्या कर रहे थे ?' तुम्हें अपने जीवन की गुप्त बातें बता रहा हूँ, यह बात तो वह समझेगी नहीं।"

उसके बाद जरा रुक कर बोला, "फिर बात यह है कि यह सब गुप्त बातें तुम्हें भी नहीं बताता। लाचार होकर बता रहा हूँ, वरना तुम चाहो तो मुझे ब्लैकमेल कर सकते हो ?"

मैंने कहा, "मैं तो वादा कर ही चुका हूँ किसी से भी नहीं कहूँगा। फिर बार-बार तुम एक ही बात क्यों दुहरा रहे हो ?"

"नहीं, मत कहना, भाई। अभी कुल मिलाकर खड़ा हुआ हूँ और थोड़ा-बहुत सुख का उपभोग कर रहा हूँ। ऐसे में तुम मेरा सर्वनाश मत करना, भाई। पुरानी जान-पहचान के आदमी से अब मिलना नहीं चाहता। बीते दिनों को धो-पोंछ कर मिटा देना चाहता हूँ। मगर तुमसे एकाएक मुलाकात हो गयी। तुमने मुझे पहचान भी लिया, यही वजह है कि तुमसे इतनी बातें कही। देखना भाई, ब्लैकमेल मत करना।"

मैंने कहा, "ठीक है, उसके बाद क्या हुआ, यही बताओ। जल्दी बताओ। तुम्हें भी देर हो रही है और मुझे भी।"

सनातन ने कहा, "मेला खत्म होने पर बुढ़िया को गाड़ी पर बिठा दिया। जीवन में यदि मैंने कोई पुण्य किया है तो बस वही एक बार। एकमात्र उसकी मैंने भलाई की है।"

"उसके बाद ?"

"मगर बहुत दिनों तक उस तरह चल नहीं सका। पचास रुपये की पूंजी कितने दिनों तक चलेगी ? हम राह-बाट में घूम-घूमकर पूड़ी-कचौड़ी-सब्जी और चना-चबेना खाकर दिन गुजारते और व्यापार कर बड़े आदमी बनने का सपना देखते थे। मेरा कोई सगा-संबंधी नहीं था, उसके साथ भी वही बात थी। उसी समय एक दिन शहर में हिन्दू-मुसलिम दंगा छिड़ गया। दङ्गा क्या चीज होता है, यह कलकत्ते के आदमी को समझा कर कहना न होगा। एक दिन मुकुल दुकान से लौट रहा था कि

हिन्दुस्तान में एक दूसरे काला पहाड़ ने जन्म लिया। मैं ही वही दूसरा काला पहाड़ वन गया। आज वही आदमी तुम्हारे पास खड़ा है।"

वात करते-करते सनातन थोड़ी देर के लिए चुप हो गया।

उसके वाद उसने कहा, "मैंने सोचने-विचारने के वाद पाया कि हम लोग सब धोखेवाज हैं। दरअसल वाहर हम सफेद कपड़ों का पालिश लगाकर घूमते-फिरते हैं, इसीलिए भले आदमी कहे जाते हैं। छात्रों के पढ़ाने के वक्त मैं अच्छी-अच्छी वातें उन्हें सुनाता हूँ, मगर मैं जो कुछ कहता हूँ उसका एक भी शव्द अपने जीवन में अमल में नहीं लाता और न ही वे लोग लाते हैं। हममें से जो लोग पकड़ लिए जाते हैं, वे क्रिमिनल हैं और जो पकड़ में नहीं आते हैं वे साधु कहे जाते हैं। इसलिए साधु और क्रिमिनल में एक इंच का भी फासला नहीं है।

"उसके वाद मैंने मुकुल का सूटकेस तोड़ डाला। दो-चार-कपड़े-लत्ते के साथ उसके मैट्रिक, आई० ए०, वी० ए० और एम० ए० के सर्टिफिकेट मिले। उन्हें अपने साथ क्यों ढोये चल रहा था, पता नहीं।" शायद उसे उम्मीद थी कि वह सव दिखाने के वाद उसे कोई नौकरी मिल जायेगी। उन सवों को अपने साथ लिए इलाहावाद स्टेशन आया और फर्स्ट क्लास की टिकट कटा कर मुकुल राय के नाम से बर्थ रिजर्व कर लिया। और मुकुल राय दिल्ली रवाना हो गया।

"उसके वाद क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

तव शायद वहुत रात हो चुकी थी। अव देर करने से ताँगा नहीं मिलेगा। आदर्श नगर कॉलोनी से अजमेर शहर की दूरी करीव तीन मील होगी। उतनी दूर तक पैदल ही चलना होगा। चारों तरफ सन्नाटा रेंगने लगा। मन में भय पैदा होने लगा। तभी एक खाली ताँगे पर नजर पड़ी। सवार उतार कर शहर की ओर लौट रहा था।"

सनातन ने कहा, "ठीक है, अव तुम चले जाओ। कल मैं कॉलेज से होटल आऊँगा और मिलकर सारी वातें वताऊँगा।"

ताँगे पर वैठकर मैंने अपने होटल का नाम और कमरे का नम्बर वताया और वहाँ से विदा हो गया।

होटल वापस आते ही मुझे एक तार मिला जो मेरे नाम हेड-ऑफिस से आया था। वहुत ही जरूरी था। तार मिलते ही मुझे वहाँ से लौटकर चला जाना है—सबसे पहले जो ट्रेन मिले उसी से।

क्या करूँ, समझ में नहीं आता। ऑडिट के जितने भी कागज-पत्तर पास थे, उन्हें सहेज कर तैयार हो गया। कुछ कपड़े-लत्ते धोवी के यहाँ थे। उसी रात आदमी भेज कर कपड़ों को उसी हालत में मँगा लिया। उसके बाद सवेरे की गाड़ी से अजमेर से विदा हो गया।

हेड-ऑफिस पहुँचने के बाद मुकुल राय को उसके घर के पते पर एक पत्र भेजा। लिफाफे के ऊपर नाम की जगह मैंने लिखा—मुकुल राय एम० ए०। लिखा : वैङ्क के हेड-ऑफिस से तार आ जाने के कारण मुझे जल्दी ही लौट आना पड़ा है। अन्यथा मत लेना। इसके बाद अगर वहाँ जाना हुआ तो तुमसे जरूर ही मिलूँगा। इत्यादि।

सोचा था, सनातन से मेरा संपर्क यहीं खत्म हो गया। इस तरह के कितने ही आदमी से जीवन में मुलाकात हुई है जिनका आरंभ अवश्य ही देखा है, परन्तु अन्त भी देखूँगा, यह उम्मीद रखना ही व्यर्थ है। जिसका आरंभ है उसका अन्त भी स्वाभाविक है। लेकिन असल में किसी भी चीज का अन्त नहीं होता। मृत्यु को ही यदि जीवन का अन्त मान लिया जाये तो मृत्यु के बाद के जीवन को अस्वीकार करना होगा। या यों कह सकते हैं कि जिसे हम 'अन्त' कहते हैं, वह एक नये परिच्छेद का आरंभ है। पता नहीं, बात क्या है! और हम तो ठहरे दुनियादार आदमी। दुनियादार आदमी की दृष्टि छोटी परिधि में सीमावद्ध है। इसलिए जो 'अन्त' नहीं है उसे ही हम अन्त समझ कर दुःख प्रकट करते हैं, यातना जीते हैं।

मगर सनातन के आरंभ को लेकर ही यह कहानी है। अन्त में तो मैंने पहले ही बता दिया है। वह किस तरह उस परिणिति में पहुँचा, यही बात यहाँ कहने जा रहा हूँ।

जब हेड-ऑफिस के काम-धाम से बुरी तरह व्यस्त था, उसी समय एक महिला ने मुझसे मुलाकात करनी चाही।

महिला मुझसे क्यों मिलना चाहती है, मेरी समझ में नहीं आया। मैंने चपरासी से कहा कि महिला को कमरे के अन्दर ले आये।

शुरू में सोचा था, महिला वैङ्क से संवंधित किसी काम से मु मिलना चाहती है।

लेकिन जैसे ही वह मेरे सामने आयी मैं अवाक् हो गया। देखा, सनातन की पत्नी माया है।

मैंने उनका स्वागत किया। खड़े होकर कहा, "बैठिए, बैठिए। आप ? किस काम से ?"

माया देवी बैठ गयीं। देखा, उनकी आँखें सूजी हुई हैं।

उनके मुँह से बहुत तकलीफ से शब्द बाहर आये।

बोलीं, "आपको अपने मित्र के बारे में कोई हाल-चाल मालूम है ?"

मैंने कहा, "इसका मतलब ? आप मुकुल के विषय में कह रही हैं ?"

"हाँ, कई दिनों से उनका पता नहीं चल रहा है।"

"इसका मानी ? मुकुल अजमेर में नहीं है ?"

माया देवी बोली, "नहीं।'

"फिर कॉलेज ? कॉलेज की नौकरी ?"

माया देवी बोलीं, "वे अब कॉलेज भी नहीं जा रहे हैं। कॉलेज के आदमी भी उनकी तलाश कर रहे हैं। उन्होंने पुलिस को सूचना दे दी है।"

मैंने कहा, "क्यों ? पुलिस को किस बात की सूचना दी है ? खोज कर पता लगाने के लिए ?"

माया देवी बोलीं, "नहीं, उन्हें गिरफ्तार करने के लिए।"

"क्यों उसने कौन-सा गुनाह किया है ?"

माया देवी ने गंभीर स्वर में कहा, जाली सर्टिफिकेट दिया था और अपने को एम० ए० पास कह कर नौकरी में आये थे। असल में वे एम० ए० पास नहीं हैं। आप तो उनके मित्र हैं, आपको मालूम ही होगा कि उन्होंने एम० ए० पास किया है या नहीं।"

एक ही निमिष में सारी स्थिति मेरी समझ में आ गयी।

मैंने कहा, "अच्छी तरह मालूम है। हम दोनों ने एक ही साथ एम० ए० पास किया था। मुकुल एम० ए० पास कर अजमेर चला गया और मैं एम० कॉम० की परीक्षा देकर बहुत कोशिश-पैरवी के बाद बैङ्क का नौकर हो गया।"

माया देवी बोलीं,"देखिए, कैसा कांड है ! उधर कॉलेज में बात फैल

गयी है कि मुकुल ने एम० ए० पास नहीं किया है। दूसरे आदमी के सर्टिफिकेट की चोरी कर कॉलेज को धोखा दिया है।"

मैंने कहा, "खैर वह बात तो हो चुकी, मगर वह भाग क्यों गया ?"

"पता नहीं।"

"कॉलेज में उसका कोई दुश्मन था ?"

माया देवी बोलीं, "जरूर था। वे कॉलेज के छात्रों के बीच बहुत पॉपलर थे। आपने देखा था कि स्टूडेन्ट की जमात उनका कितना 'रेसपेक्ट' करती थी। इसी वजह से हाल में ही उनकी तनख्वाह एक सौ रुपया अधिक बढ़ा दी गयी थी।"

मैंने कहा, "दुश्मन तो हर आदमी का हुआ करता है। चाहे कम हो, चाहे ज्यादा ! इसके चलते नौकरी से इस्तीफा दे सकता था। भाग क्यों गया ? भागने की जरूरत क्या थी ? आपको इसकी सूचना क्यों नहीं दी ?"

माया देवी बोलीं, "मुझसे अलबत्ता बीच-बीच में कहा करते थे कि नौकरी करना उन्हें अब अच्छा नहीं लग रहा है।"

"क्यों ? नौकरी करना उसे क्यों नहीं अच्छा लगता था।

माया देवी बोलीं, "नहीं, उन्हें बिलकुल अच्छा नहीं लगता था। बस इतना ही कहते थे कि व्यवसाय करने से ढेर सारा पैसा आता है। नौकरी कर समय बर्बाद कर रहा हूँ।"

"यह बात कहते थे ?"

"हाँ, अक्सर कहा करते थे। बहुत ही महत्त्वाकांक्षी थे न ! कम पैसे से उनका मन संतुष्ट नहीं होता था। मुझे सस्ती साड़ी पहनने नहीं देते थे, अपने लिए भी कीमती-कीमती कपड़े खरीदने की सनक थी। सबसे ज्यादा शौक उन्हें गाड़ी का था। नौकरी करने से यह सब कभी नहीं होगा, यह कह कर नौकरी छोड़ना चाहते थे। मैं उन्हें रोके रहती थी। मैं कहती : 'पहले व्यवसाय कर पैसा जमा कर लो, फिर नौकरी छोड़ देना।' मेरी इस बात पर उन्हें गुस्सा आ जाता था। कहते : तुमसे शादी करने की वजह से ही आज मैं नौकरी नहीं छोड़ पा रहा हूँ। तुम्हीं मेरी सबसे बड़ी बाधा हो।"

उनकी बात सुनकर मैं खामोश हो गया।

उसके बाद मैंने कहा, "फिर आप अभी क्या कीजिएगा ?"

माया देवी बोलीं, "मैंने अजमेर वाला मकान छोड़ दिया है। तीन महीने का किराया बाकी था, सब चुकाकर मैं चली आयी हूँ। बनारस में मेरे मामा रहते हैं, वहीं जा रही हूँ।"

मैंने पूछा, "आपसे मुकुल की जान-पहचान बनारस में ही हुई थी ?"

माया देवी बोलीं, "हाँ बनारस में मेरे मामा होमियोपैथी डॉक्टर हैं। वहाँ वे धर्मशाला में बेहोश पड़े थे। मामा ने दवा देकर उन्हें होश में लाया। उसके बाद वे हमारे ही घर पर आकर रहने लगे।"

माया देवी को अचानक कोई बात याद आ गयी और बोलीं, "अच्छा, आपको तो उनके बारे में सारी बातों की जानकारी है, एक बात बताइएगा ?"

"क्या ?" मैंने पूछा।

माया देवी बोलीं, "उनके पिताजी जमींदार थे न ?"

मैं उत्तर दूँ तो क्या दूँ !

कुछ कहूँ कि इसके पहले ही माया देवी बोलीं, "तो फिर उन्होंने बुढ़ापे में शादी क्यों की ? और अगर शादी भी की तो पहली पत्नी के लड़के को इस तरह निकाल क्यों दिया ?"

मैंने गोल-मटोल-सा जवाब दिया, "सब नियति है।"

माया देवी बोलीं, "आप ठीक ही कह रहे हैं। सचमुच, सब नियति ही है। वरना पिता के बड़े आदमी रहने के बावजूद कोई सारी संपत्ति वंचित हो सकता है ? सुना था, कलकत्ते में उनकी विशाल हवेली थी और वे प्रचुर संपत्ति के मालिक थे।"

सब सफेद झूठ है, यह सब जानते रहने के बावजूद मैंने कहा, "आपने जो कुछ सुना है।"

"कहीं वे लौटकर वहीं तो नहीं चले गये ?"

मैंने कहा, "वहाँ कैसे जायेगा ?"

माया देवी बोलीं, "सो तो सही है। वहाँ भी तो उनका अपना कोई नहीं है। पिता के मरने के बाद किसके पास जाकर खड़े होंगे ?"

मैंने कहा, "इसके अलावा बात यह है कि वह मकान भी बिक चुका है सौतेली माँ भी अब जिन्दा नहीं हैं। सौतेले भाई भी इधर-उधर चले गये हैं। बहुत दिन पहले मैं एक बार कलकत्ता गया था जाने पर देखा,

मकान को भी एक मारवाड़ी ने खरीद लिया है और छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर उसकी शक्ल ही बदल डाली है।"

यह बात मेरी समझ में आ गया कि विवाह के मौके पर सनातन ने यह सब कहकर इस लड़की को भुलावे में डाला था। जमींदार का लड़का, बाप के द्वारा दूसरी शादी कर लेने पर घर से भाग जाना—इस बात में कहीं जैसे रहस्य-रोमांच की कहानी का अभाव है। यह सब जो सुनता है, उसे सुनने में अच्छा लगता है और जो सुनाता है, उसे सुनाने में अच्छा लगता है। सबसे बड़ी बात है कि इससे सुनने वाले की सहानुभूति अर्जित की जा सकती है। यह बात मेरी समझ में आ गयी कि सनातन जब इलाहाबाद से मुकुल राय नाम धारण कर भागा तो बनारस जाकर उसने यह सब कारनामा किया। इलाहाबाद में पान की दुकान करने के बाद वह बनारस की धर्मशाला पहुँच गया। और उस धर्मशाला से सीधे इस महिला के मामा के घर पहुँचकर [illegible]

आदमी के जीवन में कितनी अजीब घटनाएँ घटित होती हैं। एक परिच्छेद के बाद दूसरा परिच्छेद। जैसे उपन्यास की [illegible] घट-नाएँ हों।

माया देवी उठकर खड़ी हुईं और बोलीं, "[illegible] में ही अपना ट्रंक-सूटकेस वगैरह रखकर चली आयी हूँ। [illegible] मेरी गाड़ी खुलती है।"

"रिजर्वेशन मिल गया है न?"

माया देवी बोलीं, "हाँ मिल गया है।"

मैंने कहा, "मैं ऑफिस से [illegible] जाऊँगा।"

माया देवी ने कहा, "नहीं, [illegible] मैं अकेली ही चली जाऊँगी।"

खैर, मैं ऑफिस से [illegible] रही थी। रिटायरिंग [illegible] कुली माथे पर सामान [illegible] पर पहुँचे, मुसाफिरों [illegible]

थोड़ी देर [illegible] जाकर बैठ [illegible]

माया देवी ने मुझसे कहा कि मैं उनका बनारस का पता लिख लूं। जब मैंने अपने नोटबुक में उनका पता लिख लिया तो वे बोलीं, "अगर कभी आपको अपने मित्र से मुलाकात हो जाये तो मुझे कृपाकर इस पते पर सूचित कर दें।"

मैंने सहमति जतायी।

"इस तरह आपको छोड़ जाने का मतलब क्या है? आपने उसके साथ कोई अन्याय किया है।" मैंने कहा।

माया देवी बोलीं, "सब कुछ जानने-सुनने के बाद ही मैंने उनसे शादी की थी। मगर मुझे बिना कुछ बताये क्यों चले गये, समझ में नहीं आता। अगर कहकर जाते तो मैं क्या उन्हें बाधा पहुँचाती! मैंने कभी उनकी किसी बात पर अविश्वास नहीं किया है। और अविश्वास करने की बात ही क्या है? उन्होंने मुझसे कभी कोई झूठी बात नहीं कही है। उस दृष्टि से देखा जाये तो आपके मित्र की कोई मिसाल नहीं। वे चूंकि मेरे पति हैं, इसलिए ऐसी बात नहीं कह रही हूँ। सचमुच, वैसा आदमी नहीं मिलता। उस तरह के आदमी को पति के रूप में पाना सौभाग्य की बात है। जानते हैं, उन्होंने मुझसे बहुत बार कहा है, "तुमसे शादी कर मैं तुम्हें बहुत ही कष्ट दे रहा हूँ। मेरे पास ज्यादा पैसा होता तो तुम्हारे लिए ढेर सारा गहना बनवा देता।" उन्हें सिर्फ गहना, रुपया-पैसा, घर, गाड़ी के प्रति लोभ था। रुपया न मिलता था इसलिए मन ही मन छटपटाते रहते थे। जानते हैं, रात में गहरी नींद में रहने पर भी रुपये का ही सपना देखा करते थे। एक सौ दो सौ रुपये का नहीं, बल्कि हजारों, लाखों और करोड़ों का। आपके मित्र मुझसे अकसर कहते: 'दुनिया में जिसके पास पैसा नहीं, वह आदमी नहीं है।' आपने उनकी जबान से यह सब बात नहीं सुनी थी? आप तो उनके बचपन के मित्र ठहरे।"

मैंने यह जाहिर नहीं किया कि सनातन के संबंध में मुझे विशेष कुछ मालूम नहीं है और बचपन में ही उससे मेरा संबंध-विच्छेद हो चुका था।

"हाँ, वह मेरा बचपन का मित्र है।" मैंने कहा।

"रुपये का यह नशा उनमें बचपन से ही है?"

मैंने कहा, "हाँ, स्कूल में पढ़ने के वक्त से ही। वह रुपये के अलावा और कुछ भी नहीं जानता था।"

माया देवी बोलीं, "हालाँकि उनके पिता जी बहुत बड़े जमींदार थे। उनके पास अगाध संपत्ति थी।"

"सो तो है ही। बाप के पास अपार संपत्ति रहने के बावजूद उसमें रुपयों के प्रति लोभ था। किसी-किसी आदमी का एक खास तरह का स्वभाव होता है न! उसके साथ भी वही बात थी।"

इसके बाद ही ट्रेन रवाना हो गयी।

"सकुशल पहुँचने की सूचना दीजिएगा।" मैंने कहा।

"दूँगी।" मिसेज राय ने कहा।

उसके बाद आहिस्ता-आहिस्ता ट्रेन अँधेरे में ओझल हो गयी।

इसके बाद फिर कभी सनातन या माया देवी से मुलाकात होगी, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। लेकिन बात यह है कि धरती गोल रहने से जीवन भी गोलाकार नहीं हो जायेगा। जीवन की गति बहुत कुछ सरीसृप जैसी होती है। ऋजु पथ से वह चलता है तो जरूर, मगर उसकी ऋजुता एकमुखी टेढ़े-मेढ़े पथ जैसी होती है। उसकी दिशा का निर्णय करना हालाँकि दुःसाध्य है, किन्तु दिग्भ्रमित होना उसके स्वभाव के विरुद्ध है। एक दिशा को अपना लक्ष्य बनाकर वह दौड़ता है। उसकी आँखों में चकाचौंध पैदा करने की लाखों चेष्टाएँ करने के बावजूद वह इधर-उधर नहीं भटकता।

इसी का नाम जीवन है। खासकर सनातन का जीवन। सनातन अन्ततः कौन दिशा की ओर जायेगा, उसके विधाता-पुरुष ने शायद पहले से ही इसका निश्चय कर लिया था, ठीक उसी तरह जिस तरह वह सब आदमी का करता है। लेकिन सनातन के मामले में कुछ और भी खासियत जुड़ी हुई थी। उसके भाग्य का निर्णय करने के समय विधाता जब रेखा खींच रहा था तो उसका हाथ शायद जरा काँप उठा होगा।

नहीं तो मैट्रिक फेल करने के बाद आत्महत्या का संकल्प कर वह सीधे इलाहाबाद क्यों चला गया? और इलाहाबाद गया भी तो अपने नाम-धाम और वंश-परिचय में मिलावट क्यों करने गया? मिलावट की भी तो इस भली औरत को अपने जीवन से संबद्ध क्यों कर लिया? और अन्ततः वह भाग भी गया तो इस महिला को छोड़कर क्यों भागा?

इस "क्यों' का उत्तर कौन देगा ? किसे पूछने से इसका उत्तर मिलेगा ?

इसके बाद कलकत्ते की घटना है। एक बदनाम मुहल्ले की गली से मैं इसलिए जा रहा था कि दूरी कुछ कम पड़े। आमतौर से इस तरह के रास्ते से शाम के वक्त जाना खतरे से खाली नहीं रहता। बात की बात में, हो सकता है, सोडे की बोतलें बरसने लगें। ऐसी हालत में भागने का भी रास्ता नहीं मिलता। पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुजर जाने के बाद बहुतेरे भले खानदान के लोग इस मुहल्ले के आसपास ही बस गये हैं।

मैं एक जाने-पहचाने आदमी से मिलने जा रहा था।

सड़क के दोनों तरफ लोगों की खासी अच्छी भीड़ थी, दुकानों में चहल-पहल का आलम था। अचानक वहाँ लोगों की भीड़ कुछ ज्यादा हो गयी। तमाम शहर के आदमी शाम के समय शान्ति की उम्मीद में यहाँ आते हैं। गाँठ से पैसे खर्च कर दो क्षण के लिए शान्ति खरीदते हैं। यह शान्ति भी आजकल कौन कहाँ भोगने देता है ? उसके बाद रात काफी गहरा जाती है तो उस मुहल्ले की रौनक और बढ़ जाती है। तब पियक्कड़ लड़खड़ाते हुए चलते हैं, संगीत के ताल-ताल पर सिंगल रीड का हारमोनियम बेसुरे राग में पें-पें करता रहता है।

यह सब बात कलकत्ते के पुराने बाशिन्दों को अच्छी तरह मालूम है।

ऐसी बात नहीं कि मैं इससे अनजान था। मगर रात उस समय गहराई नहीं थी और यही एकमात्र भरोसा था। इसीलिए जल्दी-जल्दी फासला तय कर रहा था।

अचानक एक आदमी को अपने सामने देखकर मैं जैसे आसमान से नीचे गिर पड़ा। मद्रासी लुंगी पहने है, बदन में बिना बाँह की गंजी। चेहरे पर खूंटीदार दाढ़ी-मूंछें।

सामने पड़कर मैं ठिठकर खड़ा हो गया।

"सनातन ! तुम यहाँ ?" मैंने कहा।

सनातन झट से अपना हाथ मेरे मुंह पर रख दिया। उसके बाद वह धीमी आवाज में बोला, "चुप रहो, सनातन नहीं, मैं केदार सरकार हूँ।"

मैं हतप्रभ हो गया। कुछ कहूँ कि इसके पहले ही सनातन मेरा हाथ खींचते हुए मुझे एक अँधेरी जैसी जगह में ले गया और वहाँ खड़ा हो गया।

बोला, "तुम मुझे शान्ति से जीवन जीने नहीं दोगे ? जहाँ-जहाँ जाता हूँ, तुम वहीं-वहीं पहुँचकर मेरा पीछा करते रहते हो। मैंने तुम्हारी कौन-सी हानि की है ?"

उस समय भी मैं ठीक से सँभल नहीं पाया था। एकटक सनातन की ओर ताक रहा था।

सनातन ने कहा, "अजमेर गया तो वहाँ तुम मेरा पीछा करने लगे, फिर कलकत्ता आया तो यहाँ भी। दिल्ली जा रहा था मगर तुम्हारे डर से नहीं गया। तुम दिल्ली छोड़कर कलकत्ता क्यों आ गये ?"

मैंने कहाँ, "यहीं तबादला हो गया है।"

सनातन ने कहा, "एकमात्र तुम्हीं हो जिससे मेरी बार-बार मुलाकात हो जाती है। मैंने क्या तुमसे कर्ज लिया है ?"

इतनी देर के बाद मुझे बातचीत करने का अवकाश मिला।

"तुम्हारी पत्नी तुम्हारी तलाश कर रही है।" मैंने कहा।

सनातन ने कहा, "पत्नी ? कौन-सी पत्नी ? मुकुल राय की पत्नी ?"

मैंने कहा, "एक ही बात है। तुम्हारी पत्नी माया। तुम उसे अकेली आदर्श नगरी कॉलोनी में छोड़कर भाग आये थे ? वह मेरे दिल्ली ऑफिस में तुम्हारी खोज में आयी थी।"

सनातन को ऊब महसूस हुई। बोला, "वह सब अब बीता हुआ अध्याय है, भाई। वह सब अब मैं भूल चुका हूँ।"

मैंने कहा, "तुमने उसकी हालत पर एक बार भी नहीं सोचा ? वह अपना पेट कैसे पालेगी ? देह के गहनों को बेचकर मकान-मालिक का किराया चुकाने के बाद ही बेचारी को मुक्ति मिली थी। उसके बाद वह अपने माता के पास बनारस लौटकर चली गयी। मैं उसे ट्रेन पर बिठा आया था।"

सनातन ने कहा, "इन बातों को गोली मारो। सभी अपनी-अपनी किस्मत लेकर दुनिया में आये हैं। दुनिया में कौन किसका है ? जब तक स्वार्थ है तभी तक संबंध है। उसके बाद तुम अपनी राह चलो, मैं अपनी राह चलूँगा। असली बात यह है कि अभी मैं अपने धंधे में व्यस्त हूँ। किसी के बारे में सोचने का वक्त मेरे पास नहीं है।"

"तो तुम इस तरह अपनी पत्नी को दर-दर की भिखारिन बना दोगे ?" मैंने कहा।

सनातन झुंझला उठा, "पत्नी ? किसने कहा कि वह मेरी पत्नी है ?

मैंने क्या शालग्राम को साक्षी रखकर उससे शादी की है जो उसके लिए चिन्ता करूँ ?"

मैं और अधिक आश्चर्य में आ गया।

मैंने कहा, "तुमने उससे शादी नहीं की है ?"

सनातन ने कहा, "अरे नहीं, मैं क्या उतना बेवकूफ हूँ ? मुझे क्या कोई काम नहीं है कि उससे शादी करने जाऊं ? फुसलाकर उसे ले भागा था।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद और क्या ! उसके बाद उसे पत्नी के रूप में रखकर अजमेर कॉलेज में प्रोफेसर की नौकरी का इन्तजाम कर लिया। उसकी खूबसूरती के चलते ही मुझे नौकरी मिली थी।"

मैंने कहा, "तो फिर अजमेर से तुम इस तरह भाग क्यों खड़े हुए ?"

सनातन ने कहा, "भागूं नहीं तो क्या करूँ ! जब तक माया को किराये पर चलाता रहा तब तक सुविधा हासिल होती रही। आखिर में माया ने किराये पर खटना नहीं चाहा।"

"इसका मतलब ?"

सनातन ने कहा, "मतलब यही कि उसने सती-साध्वी स्त्री बनना चाहा। आदमी को खाना मिल जाय तो वह टाँग पसारना चाहता है। उसके साथ भी वही बात हुई। हालांकि माया को अगर किराये पर न लगाता तो मुझे फायदा ही क्या था ?"

मैंने कहा, "तुम्हारी स्त्री ने कहा कि तुम पकड़ लिये गये थे। सभी को मालूम हो गया था कि तुम्हारा सर्टिफिकेट जाली है, तुम्हारा नाम मुकुल राय नहीं है और तुमने मुकुल राय के सर्टिफिकेट की चोरी की है।"

सनातन ने कहा, "किसने कहा ? माया ने यह सब बताया था ?"

मैंने कहा, "माया ने तो यही कहा।"

"देख रहे हो न, कितनी शैतान औरत है अरे, मैं क्या इतनी कच्ची गोली खेलनेवाला हूँ ? राशनकार्ड से शुरू कर हर चीज पर मेरा नाम मुकुल राय लिखा हुआ है। जाली सर्टिफिकेट कहने से ही हो जायेगा ! फिर बर्मा की रंगून युनिवर्सिटी जाकर पता लगा सकते हो। जाओ न भाई, बर्मा चले जाओ, जाकर खाता उलटकर रेकार्ड देख लो।

जानते हो, असली बात क्या है ? मेरी पॉपलरिटी देखकर कुछ शत्रु

पैदा हो गये थे। मुझसे भी एक अपराध हो गया था और वह यह कि मैं बंगाली हूँ। बङ्गाली को कोई फूटी आँखों से भी नहीं देखना चाहता, यह बात जानते हो न? एक बङ्गाली अपनी औरत को किराये पर लगाकर पैसा पैदा कर रहा है, यह बात पट्ठे बरदाश्त नहीं कर सके। मेरे नाम से बदनामी फैला दी।"

मैंने कहा, "मगर बात तो सच है। यह तो तुमने ही मुझसे कहा है। उन लोगों ने व्यर्थ ही कलंक नहीं लगाया था।"

सनातन ने कहा, "चाहे झूठ हो या सच, ऐब किसमें नहीं है? चाहे बड़े आदमी हों, चाहे गरीब, उनके जीवन की गहराई में जाकर देखो, ऐब किसमें नहीं है? सभी के जीवन में ऐब है।"

मैंने हँसकर कहा, "और मैं? मुझमें कौन-सा ऐब है?

सनातन उपेक्षा की हँसी हँस पड़ा।

बोला, "अरे, तुम्हारा भी जीवन क्या कोई जीवन है! तुम में ऐब! तुम लोग ठहरे साधारण आदमी, न तो बड़े आदमी और न ही गरीब। साधारण आदमी का जीवन भी क्या कोई जीवन है! गाय और भेड़ की जो हालत है, एक साधारण आदमी की भी वही हालत है। तुम लोगों के लिए दुनिया में कोई भी माथापच्ची नहीं करता। दुनिया या तो धनी-मानी या फिर गरीबों के लिए ही माथापच्ची करती है। उन्हीं के कारण देश के शासक वर्ग रात में सो नहीं पाते हैं। जितने भी कानून हैं, जितने भी इनकमटैक्स और सेलसटैक्स के झमेले हैं, सब कुछ उन्हीं लोगों के संबंध में हैं। जो लोग साधारण आदमी हैं, वे जिन्दा हैं या मर गये—इसके लिए कोई फिक्र नहीं करता।"

सनातन की बात सुनकर मैं भौंचक-सा उसके चेहरे की ओर ताकने लगा।

"क्या बात है? तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा?"

मैंने कहा, "नहीं, ऐसी बात नहीं है, मैं अगर साधारण आदमी हूँ तो तुम फिर क्या हो?"

"मैं चूंकि साधारण आदमी होकर रहना नहीं चाहता इसलिए मेरे साथ इतनी परेशानी है। मैं यदि तुम लोगों की तरह साधारण आदमी होना चाहता तो मुझे जाली सर्टिफिकेट का इन्तजाम नहीं करना पड़ता और दूसरे की खूबसूरत लड़की को भुलावे में लाकर भागना नहीं पड़ता। इतिहास में जितने भी असाधारण आदमी देखोगे, वे लोग सभी मेरे ही

जैसे हैं। वे लोग चूँकि सफल हो गये इसलिए हमारे जैसे महापुरुष हैं। जो लोग विफल हो जाते हैं उनका नाम इतिहास के पृष्ठ में अंकित नहीं रहता मैं अब भी सफल नहीं हुआ हूँ इसीलिए इस सोनागाछी में औरत लेकर पड़ा रहता हूँ। मगर देखना, जब मेरे पास पैसा-कौड़ी, घर और गाड़ी हो जायेगी, तब मेरे सारे काले कारनामे लोग भूल जायेंगे। तब महापुरुष के रूप में मेरा नाम इतिहास में लिखा जायेगा। मैं वही चेष्टा कर रहा हूँ जी।"

मैं हतप्रभ जैसा सनातन की बातें सुन रहा था। सोच रहा था, सनातन ने यह सब बात कहाँ सीख ली।

मैंने पूछा, "यह सब बात तुमने कहाँ सीखी ?"

सनातन हँस पड़ा। वह हँसी एक अनुभवी आदमी की हँसी थी।

बोला, "यह सब क्या सीखना पड़ता है ? आँख रहे तो यह सब देखकर सीखा जा सकता है। जो लोग हमारे देश के बड़े-बड़े आदमी हैं—जिनमें से कुछ लोग चीफ मिनिस्टर हैं, कुछ बड़े-बड़े लीडर—जिनका नाम सुबह आँख खुलते ही अखबारों में देखते हो—सबके सब इसी किस्म के हैं। मैंने कुछ लिखा-पढ़ा नहीं, युनिवर्सिटी की कोई परीक्षा पास नहीं की, मगर बाद में मैंने इतिहास की पुस्तकें पढ़ी हैं। उन पुस्तकों में मैंने देखा है, जो लोग असफल रहे, वैसे व्यक्तियों का नाम इतिहास में नहीं है। जो लोग सफल रहे, उन्हीं लोगों की प्रशंसा की गयी है। जुलियस सीजर से स्टालिन तक को गहराई से देखोगे तो क्रिमिनल ही पाओगे। सभी खून करने के बाद ही बड़े हुए हैं।"

मैंने कहा, "खैर, तुम यहाँ क्यों हो, यही बताओ।"

सनातन ने कहा, "अभी मैं यहीं रह रहा हूँ।"

"यहाँ ? यह तो खराब मुहल्ला है।"

सनातन ने कहा, "हाँ, अभी मैं इसी सोनागाछी में रह रहा हूँ।"

"क्यों ? तुम यहाँ क्यों रह रहे हो ? कहीं दूसरी जगह किराये पर मकान नहीं मिला ?"

सनातन ने कहा, "किराये का मकान ? किस तकलीफ के चलते मकान किराये पर लेने जाऊँ ? मैं अपने घर में रहता हूँ—बल्कि मुझे ही मकान का किराया मिल रहा है। मेरे बहुत से किरायेदार हैं।"

"अपना मकान का मतलब ? यहाँ तुमने मकान बनवाया है ?"

सनातन ने कहा, "अरे नहीं, तुमसे सकना मुश्किल है। मैं मकान

बनवाने क्यों जाऊँगा और मकान बनवाने का पैसा कहाँ से लाऊँगा ? मेरे पास क्या उतना पैसा है ? इतना पैसा रहता तो अब तक कोई न कोई कारोबार चालू कर देता। यह मेरी औरत का मकान है।"

"तुम्हारी औरत का ?"

"हाँ, मैंने यहाँ एक रखेल रखी है। चलो न मेरी औरत के पास। देखोगे, कि कितना चोखा माल है। चलो, चलो।"

यह कहकर सनातन मुझे खींचकर ले जाने लगा और एक आलीशान तीन मंजली इमारत के गेट के अन्दर घुस गया।

मैंने कहा, "नहीं भाई, अभी रहने दो।"

सनातन ने कहा, "नहीं-नहीं, अब फिर कब तुमसे मुलाकात होगी, इसका ठिकाना नहीं। देखो, इस मकान का किराया तीन हजार मिलता है।"

"महीने में तीन हजार ?"

सनातन ने कहा, "इसीलिए तो कहा कि इस औरत के पास बेहद पैसा है। इसी पैसे को तो हथियाने के लिए यहाँ पड़ा हुआ हूँ।"

मैंने चारों तरफ गौर से देखा। मन में हुआ, यह मैं कहाँ चला आया। यहाँ आना मेरे लिए निषिद्ध है। अपने मन से मैंने सवाल किया, यहाँ आना क्या मेरे लिए उचित है ? मगर एक दुर्निवार लोभ ने उस समय मुझे अभिभूत कर लिया था। हाँ, वह लोभ ही था। किसी चीज या स्थान के प्रति मनुष्य में जो एक सहजात लोभ रहता है उसको अन-देखा करना क्या आसान है। चारों तरफ की खिलखिलाहट और कुल-बुलाते जीवन ने मुझे निश्चेष्ट कर दिया। अपने अन्तर की जिस आंगिक लिप्सा को इतने दिनों तक मैं शिक्षा-दीक्षा और परंपरा के आवरण से ढँक कर रखे हुए था, वह फन फैलाकर खड़ी हो गयी। मैं जी-जान से स्वयं को संयत रखने की चेष्टा करने लगा।

सनातन आगे-आगे चल रहा था और मैं उसके पीछे-पीछे।

सीढ़ियों से ऊपर जाने के पहले सनातन पीछे मेरी तरफ मुड़ा।

बोला, "सब कुछ देख रहे हो न। देख लो, ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा।"

मैंने कहा; "तुम यहाँ कैसे रह रहे हो ?"

सनातन ने कहा, "मैं यहाँ हूँ और रहना होगा। न रहने से चलेगा नहीं, इसीलिए रह रहा हूँ।"

मैंने कहा, "मगर भाई सनातन....।"

सनातन ने तत्क्षण मेरा मुँह अपने हाथ से बन्द कर दिया। बोला, "चुप रहो, सनातन नहीं, केदार, केदार सरकार—यहाँ तक कि मुकुल भी नहीं। सनातन और मुकुल मर चुके हैं, अब सिर्फ केदार। केदार सरकार। तुमने वचन दिया है, याद है न ! किसी से मेरे बारे में यह सब बात नहीं कहोगे।"

उसके बात सीढ़ी से ऊपर जाने के पहले एक बार और ठिठककर खड़ा हो गया और धीमी आवाज में बोला, "किसी से मत कहना, भाई। जीवन में जब सक्सेसफुल हो जाऊँगा तो यह सब घटना किसी को याद नहीं रहेगी। कोई यह नहीं कहेगा कि किराये पर लगाने के लिए एक लड़की को भगाकर मैं अजमेर ले गया था। किसी को यह याद नहीं रहेगा कि उसे किराये पर लगाकर मैंने नौकरी हासिल की थी। किसी को याद नहीं रहेगा कि मैंने दूसरे का सर्टिफिकेट चुराकर स्वयं को एम० ए० पास बताया था। किसी को याद नहीं रहेगा कि मैंने सोनागाछी में एक औरत रख छोड़ी थी या कोई औरत मुझे रखे हुई थी। अभी मैं औरत का बाबू हूँ। मगर जिस दिन मैं सक्सेसफुल हो जाऊँगा, उस दिन मैं आलीशान इम्पाला गाड़ी पर सवार होकर सैर-सपाटा करूँगा। जिस दिन मैं मल्टिमिलिऑनर हो जाऊँगा, उस दिन तुम पाओगे कि यह सब बात किसी को भी याद नहीं है—उस समय सभी कहेंगे कि मैं महापुरुष हूँ....।"

उसके बाद बोलना चाहकर भी वह रुक गया।

बोला, "तुमसे चुपके-चुपके एक बात कह रहा हूँ, किसी से कहना मत जानते हो, मेरी जन्म-पत्री में क्या लिखा है ? एक ज्योतिषी ने गणना कर मुझे बताया था। उसने कहा था, मुझे एक औरत की जायदाद मिलनेवाली है और वह लाखों रुपये की जायदाद होगी। इसीलिए तो औरत का आशिक बनकर इस नरक में पड़ा हुआ हूँ। पहली औरत को इसी वजह से छोड़ दिया है। उसके मामा के पास कोई प्रॉपर्टी नहीं है। अबकी और ही तरह की मिली है। यह औरत दमदार पार्टी है। यह जो मकान है, उसकी वही मालकिन है, इसका किराया मिलता है तीन हजार रुपया महीना। इसके अलावा बगल में ही इसी तरह का एक मकान है और उसका किराया है दो हजार रुपया महावार। उसे कुल पाँच हजार की माहवार आमदनी है। इन दोनों मकानों को अपने नाम

से लिखा लिया तो फिर किला फतह समझो। इसके सिवा उस औरत के पास ढेर सारा गहना है, बहुत-सी सोने की अशर्फियाँ हैं। सब कुछ मुझे ही मिलनेवाला है। उसके अपने सगे-संबंधी नहीं हैं। लेकिन देखो, इस आय पर कोई आयकर नहीं देना पड़ता, कोई संपत्ति कर भी नहीं।"

तब तक हम दोमंजिले पर पहुँच चुके थे।

ऊपर वाले बरामदे पर पहुँचते ही सनातन ने जोर से पुकारा, "पटोल, पटोल!"

और मुझे एक कमरे के अन्दर ले जाकर बिठा दिया। कमरे के चारों तरफ आदमकद आईने हैं, फर्श पर दो इंच ऊँचा कालीन और उस पर एक बित्ता मोटी गद्दी। गद्दी पर मोटे-मोटे गावतकिये रखे हुए हैं।

तभी सनातन अपनी पटोल को साथ लिए कमरे के अन्दर आया।

सनातन ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा, "देखो, किसे अपने घर पर ले आया हूँ। और यह रही मेरी पटोल।"

उसके बाद पटोल की ओर ताकता हुआ वह बोला, "मेरे दोस्त का जरा आदर-सत्कार करो। मेरा दिली दोस्त है—बचपन का दोस्त।"

मैंने सनातन की पटोलरानी की ओर ध्यान से देखा। देह का रंग काला। शरीर गहनों से लदा हुआ। सीमन्त में सिन्दूर की लंबी रेखा। मुँह में पान। पान-जर्दा खाने की वजह से दाँत बिलकुल काले पड़ गये हैं।"

मेरी ओर ताकती हुई बोली, "क्या पीजिएगा, बताइए—ह्विस्की, ब्राण्डी, रम या जिन? इसके साथ मुर्ग-मुसल्लम भी लेना है।"

मैं मना करने जा रहा था, मगर सनातन बीच ही में बोल उठा, "लो न, यहाँ हर चीज मौजूद है, मेरे घर में मिलावट वाली चीज नहीं मिलेगी।"

मैंने कहा, "मुझे भूख नहीं है, अभी तुरन्त खाना खाकर निकला हूँ।"

सनातन ने कहा, "तो फिर किसी [illegible] से कहकर [illegible], उसके लिए मैं इन्तजाम कर दे सकता हूँ।"

पटोलरानी बोली, "आप नहीं जानते। मैं सब लड़कियों को इस कमरे में ले आती हूँ। [illegible] हूँ, [illegible] नहीं है [illegible]। [illegible] नहीं, [illegible] कहाँ [illegible] है।"

सनातन ने पटोल के हाँ में हाँ, मिलाते हुए कहा, "हाँ शरमाओ नहीं। शरमाओगे तो छले जाओगे। मेरे घर को अपना ही घर समझो।"

मुझे सनातन के तौर-तरीके और बर्ताव से सचमुच ही बड़ा मजा आ रहा था। कई वर्ष पहले की एक शाम की बात याद आ रही थी। जब वह मुझे अपनी आदर्श नगरी कॉलोनी में ले गया। तब वह मुकुल राय था और अब है केदार सरकार! बस, इतना ही अन्तर है। मगर असल में वह एक ही व्यक्ति है। सनातन ने मुझसे कोई बात छिपाकर नहीं रखी थी। अपना उद्देश्य मुझे साफ-साफ बता दिया है। वह पैसा चाहता है—अथाह पैसा। उसके लिए औरत तुच्छ वस्तु है, भोग और सुख तुच्छ वस्तु है, खाना-पीना तुच्छ वस्तु है, विलास-वैभव तुच्छ वस्तु है। उसके लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है पैसा। चाहे जैसे हो, उसे पैसे चाहिए। वह जानता है कि पैसा हो जाने से उसके पास तमाम चीजें हो जायेंगी। वह जानता है कि पैसा हो जाने से उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होगी, पैसा होने से लोग उसका गुणगान करेंगे, यहाँ तक कि वह एक बहुत बड़ा साहित्यकार भी हो जायेगा। वह जो भी चाहेगा, पैसे से उसे वह वस्तु मिल जायेगी। इसीलिए उसने इस पथ का अवलंबन किया है। इस घर और बगलवाले घर की मालकिन है पटोलरानी। इससे माहवार जो तीन हजार रुपये की आय होती है, उसकी भी वही मालकिन है। अतः एक दिन जब यह पटोलरानी इस दुनिया से चल देगी तो सनातन ही सब कुछ का मालिक बन बैठेगा। आज सनातन फटी हुई लुंगी और बिना बाँह की गंजी पहने मेरे पास खड़ा है, उस दिन वह ऐसी हालत में नहीं रहेगा। तब वह इम्पाला गाड़ी पर सवार होगा, समाज का एक गण्यमान्य व्यक्ति समझा जायेगा, उसकी बात पर दस आदमी ठेंगे-बैठेंगे, उसकी जीवनी लिखी जायेगी, इतिहास के पृष्ठ में महापुरुषों की सूची में उसका नाम लिखा रहेगा। कदाचित् ऐसा ही होगा और उसकी इतने दिनों की मनोकामना सचमुच ही पूरी हो जायेगी। कदाचित् क्यों, जरूर ही होगी। यह सनातन की कोई सारहीन कल्पना नहीं है, ऐसा तो हर रोज इस धरती पर घटित होता रहता है। सनातन कोई नयी बात नहीं करना चाहता। दूसरे-दूसरे लोग इतने दिनों से जो कुछ करते आये हैं, सनातन उन्हीं लोगों का अनुकरण और अनुसरण करना चाहता है। यह चाहना कोई अन्याय नहीं है। उसका इतना धैर्य, इतना अध्यवसाय, इतनी साधना क्या विफल हो सकती है? सना-

तन ने ही बताया है, इतिहास की पुस्तकों में इसकी मिसाल है। जुलियस सीजर से शुरू कर स्टालिन तक इसी की साधना करते आये हैं।

"अब चलूँ, भाई।" मैंने कहा।

सनातन ने पटोल से कहा, "नहीं-नहीं, उसे जाने दो, रोको नहीं। उसे बहुत काम है। मेरे जैसा बेकार आदमी नहीं है, बल्कि काम-काजी आदमी है।"

सनातन मुझे पहचानता था, बल्कि अच्छी तरह ही। इसलिए उसने दबाव नहीं डाला। बोला, "चलो, थोड़ी दूर जाकर तुम्हें छोड़ आता हूँ। यह अच्छी जगह नहीं है।"

यह कहकर मेरे आगे-आगे चलने लगा।

चलने के पहले अपनी आदत के अनुसार मैंने हाथ जोड़कर पटोल-रानी को नमस्कार किया। पटोलरानी ने भी हाथ जोड़कर नमस्कार किया। बोली, "फिर किसी दिन आइएगा।"

मैंने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया लेकिन मेरी तरफ से सना-तन ने जवाब दिया।

उसने कहा, "हाँ-हाँ, उसे कहने की जरूरत नहीं, वह फिर आयेगा।"

नीचे आने के बाद बोला, "तुम उजबक हो।"

मैं स्तंभित रह गया। समझ नहीं सका कि अनजाने ही मैं कौन-सा अपराध कर बैठा।

सनातन ने कहा, "तुम कैसे आदमी हो जी! वेश्या को नमस्कार कर बैठे? तुम्हें कोई अक्ल नहीं है?"

मैंने कहा, "वह वैसी कोई बात नहीं, महज भद्रता के नाते ऐसा किया।"

सनातन बोला, "दुर, ये सब सोनागाछी की औरतें हैं! इन लोगों को हमारी भलमनसाहत क्या समझ में आयेगी? ये लोग मेरे काबू में रहती हैं। मैं इन लोगों को रास्ते के कुत्ते की तरह घृणा की दृष्टि से देखता हूँ।"

उसकी बात सुनकर मुझे हैरानी हुई। सनातन यहाँ पड़ा हुआ है मगर उसमें जरा भी कृतज्ञता नहीं! सनातन आदमी है या जानवर!

हो सकता है, नियम यही हो। कौन जाने! सनातन अपने जीवन में एक ही नीति का पालन करता हुआ चला आ रहा है और वह है स्वार्थ की नीति। स्वार्थ के लिए वह अब तक सभी तरह का अनाचार करता

आ रहा है। इसके बाद वह अगर जीवन में उन्नति करता है, अगर वह इस स्थिति से अलग हटकर ऊपर की ओर बढ़ता है तो फिर वह जो चाहेगा, वही हो जायेगा। हो सकता है वह प्रात:स्मरणीय पुरुष हो जाये। लेकिन हम ? हम जैसे हैं वैसे ही रह जायेंगे।

उन दिनों सनातन का दर्शन मेरी समझ में ठीक से नहीं आता था।

सड़क पर उतरने के बाद मुझे आगे छोड़ने के उद्देश्य से सनातन मेरे साथ-साथ चलने लगा।

मैंने कहा, "तुम्हारी पत्नी ने मुझे अपना बनारस का पता दिया था, यह बात तुम्हें मालूम है ?"

"मेरी पत्नी ? फिर कह रहे हो मेरी पत्नी ? मैं क्या उतना बेवकूफ हूँ कि किसी लड़की से शादी करने जाऊँ ? यह जो आज तुमने पटोल को देखा तो फिर वह भी मेरी पत्नी है ? तुम क्या बक जाते हो, इसका कोई ठीक नहीं। देख रहा हूँ, तुम्हारा दिमाग गड़बड़ा गया है।"

इस बात का मैं क्या उत्तर दूँ ! आहिस्ता-आहिस्ता अपनी मंजिल की ओर जाने लगा।

सनातन ने कहा, "समझे भाई, किसी से यह सब बात मत कहना। यह सब कहना उचित नहीं है। तुम चूंकि पुराने दोस्त हो, इसीलिए तुमसे मन की सारी बातें बताता हूँ, वरना मेरा खयाल ही कुछ और है। यदि किसी दिन सफ़ल होता हूँ तो इस दुनिया को देख लूंगा। उसके पहले किसी से कुछ मत कहना।"

मैंने कहा, "ठीक है, अब तुम लौट जाओ।"

सनातन ने कहा, "जब तुम्हें जरूरत महसूस हो, मेरे यहाँ चले आना, समझे ? तुम्हारे लिए भय की कोई बात नहीं। यहाँ के सभी गुंडे मेरे ०।५ में हैं। तुम्हें कुछ करे तो मेरे पास खबर भेज देना। मैं सालों को ठंडा कर दूँगा। अच्छा, चलूँ।"

यह कहकर सनातन चला गया और मैं भी अपनी मंजिल की ओर बढ़ने लगा।

उसके बाद सब कुछ उलट-पुलट कर एकाकार हो गया। शायद ऐसा ही होता है। लड़ाई तब तेज गति से हिन्दुस्तान की ओर बढ़ती हुई आ

रही थी। किसी भी क्षण जापानी लोग गरदन पर सवार हो सकते हैं। एक बार कलकत्ते के आदमी बम गिरने के डर से कलकत्ते का घर-द्वार छोड़कर भाग खड़े हुए थे। वे लोग फिर लौट आये हैं।

लेकिन दहशत किसी के मन से दूर नहीं हुई है। चीजों की कीमत आस-पास छूती जा रही है। जान के लिए आदमी बेजान होकर बैठे हैं। ब्लैक आउट बदस्तूर चल रहा है। तीसरा पहर होते न होते सभी अपने-अपने कोटर के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं, शाम के समय कोई घर से निकलने का नाम नहीं लेता है।

ऐसे समय में मुझे कई बार दिल्ली, बनारस और राजस्थान जाना पड़ा। ऑफिस का काम-धाम भी इन कई बरसों के दरमियान हजारों दाँत निकाल कर मुझे जैसे अपना आहार बनाने के लिए आगे बढ़ता आ रहा था। अँग्रेजी में जिसे 'क्राइसिस' कहते हैं, देश के लोगों का जीवन तब इसी के दौर से गुजर रहा था। तरह-तरह के व्यक्तिगत कारणों से तब मेरी भी हालत बदतर हो गयी थी।

तभी युद्ध बन्द हो गया।

और न केवल युद्ध ही बन्द हो गया बल्कि हिन्दुस्तान को भी आजादी मिल गयी। देश की शक्ल देखते-देखते बदल गयी। जो लोग अब तक छिपे हुए थे वे बाहर निकल कर हुङ्कार भरने लगे। जो लोग पहले कांग्रेस में अपना नाम लिखाने से डरते थे, वे कमर कस कर कांग्रेस के खाते में लिखाने लगे। कांग्रेस के इतने भक्त कहाँ थे, इसके पहले इस बात का कोई पता न था।

ऐसे समय में जब एक सभा में पहुँचा तो वहाँ सनातन को भाषण देते हुए देखा। पहले मैं पहचान नहीं सका कि यह सनातन है। क्योंकि उसके चेहरे में आमूल परिवर्त्तन आ गया था। पहले उसकेमूँछें नहीं थीं लेकिन अब मूँछें रखे हुए हैं। बदन पर खादी का लम्बा कुरता है, उसके नीचे धोती। कन्धे पर तह की हुई खादी की चादर।

शुरू में मुझे सन्देह ही हुआ था। क्योंकि सनातन को अन्ततः इस वेश-भूषा में देखूंगा, मैंने कल्पना नहीं की थी।

बगल के एक आदमी से पूछा, "आप कौन हैं?"

भले आदमी को मेरी अज्ञता पर कष्ट महसूस हुई। तत्काल पूछ बैठे, "आप क्या कलकत्ते में नहीं रहते?"

मैंने स्वीकार किया कि हाल में मेरा दिल्ली से यहाँ तबादला हुआ है।

भले आदमी ने कहा, "आप मुकुल राय हैं।"

मुकुल राय! मेरा कलेजा धड़क उठा। सनातन तो फिर सक्सेसफुल हो गया!

मगर मुकुल राय को किस चीज के कारण इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, यह बात मेरी समझ में नहीं आयी।

भले आदमी ने मुझे समझाया, "आप एजुकेशनिस्ट हैं, यानी शिक्षा-विद्। आपका बालीगंज में स्कूल चल रहा है—

द मोर्डन स्कूल।

मैंने पूछा, "बहुत बड़ा स्कूल है?"

भले आदमी ने कहा, "आपने उसका नाम नहीं सुना? नये स्कूलों के बीच अभी सबसे नामी स्कूल है। वहाँ दाखिल कराने में कठिनाई होती है।"

मैं चुप हो गया। उस समय सनातन का भाषण चल रहा था। भाषण का विषय था—शिक्षा। शिक्षा ही समाज की रीढ़ की हड्डी है, सनातन तब यही बात समझा रहा था। रोमन साम्राज्य से शुरू कर भारतवर्ष की गुरुकुल पद्धति-शिक्षा तथा वर्त्तमान कालीन विज्ञान पर आधारित शिक्षा-पद्धति का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए सनातन सिद्ध करना चाहता था कि आदर्श शिक्षा वही है जो भौतिकवाद और आध्यात्मवाद में समन्वय की स्थापना कर सके। उसके बाद भाषण समाप्त करने के पहले उसने कहा: 'यह भारतवर्ष ही एक दिन समस्त पृथ्वी को प्रकाश दिखाते हुए सही रास्ते पर लायेगा। वह शुभ दिन शीघ्र ही आने वाला है.....'

मैं सनातन की भाषण-क्षमता और पांडित्य देखकर मुग्ध हो गया। यह सब बात सनातन ने कहाँ सीखी? यह कैसे संभव हुआ? ननमैट्रिक सनातन राय, जाली सर्टिफिकेट लाने वाला मुकुल राय फिर केदार सरकार और सबसे अन्त में शिक्षाविद् मुकुल राय—इनमें उसकी असली पहचान कौन-सी है?

एक विशाल हॉल के अन्दर सभा हो रही थी। उससे मिलने के लिए मैं जल्दी-जल्दी नेपथ्यशाला के अन्दर चला गया।

अन्दर जाने पर जब खोज-पड़ताल की तो पता चला, वह अभी-अभी यहां से रवाना हो चुका है।

मैंने अब देर न की। दौड़ता हुआ बाहर सड़क पर आया। सड़क पर बहुत-सी गाड़ियाँ खड़ी थीं।

गाड़ियों के अन्दर खोजता हुआ जब एक जगह पहुँचा तो देखा, एक बड़ी गाड़ी थर्ड गियर में आवाज करती हुई तेजी से निकल गयी मैंने ध्यान से देखा, अन्दर सनातन पीठ टेके बैठा था।

उस समय मैं उसे जोर से भी पुकारता तो मेरी आवाज उसके कानों में नहीं पहुँचती। मैं निराश होकर लौट आया। हॉल के अन्दर तब रवीन्द्र संगीत शुरू हो गया था। कार्यक्रम में बहुत से आकर्षक तथ्यों का उल्लेख था। जिस व्यक्ति को सभा का उद्घाटन करना था, वे उद्घाटन कर जा चुके थे। क्योंकि वे काम-काजी आदमी हैं। उनके पास इतना वक्त नहीं है कि बैठकर संगीत सुनें। उनके सिर पर बहुत सारी जिम्मेदारियाँ हैं।

सोचते-सोचते मेरा माथा गरम हो गया।

अब मैं अन्दर रहने में अपने आपको असमर्थ पाने लगा। मैं बाहर निकल आया। मुझे महसूस हुआ कि मैं 'बैक डेटेड' हो चुका हूँ। सचमुच ही मैं पुराना पड़ गया हूँ। अब भी मैं उस प्राचीन युग में वास कर रहा हूँ जिसमें ईमानदारी और सत्यवादिता को ही आदर्श के रूप में स्वीकारा जाता था। मेरे लिए अब भी विद्या ही विनय है। मेरे लिए अब भी मनुष्यता ही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है। मैं ईश्वर पर विश्वास करता हूँ। दया, माया, त्याग और संयम को ही अब भी महान् गुण के रूप में स्वीकार करता हूँ। मैं सचमुच ही इस युग में अचल हो गया हूँ। मेरी तनख्वाह में अवश्य ही वृद्धि हुई है। धीरे-धीरे वृद्धि हुई है। नियम के अनुसार की वृद्धि हुई है। बैंक में कुछ पैसा भी जमा कर लिया है। नियम का पालन करता हुआ दफ्तर का काम करता हूँ। काम में धोखा नहीं देता, क्योंकि काम में धोखेबाजी का सहारा लेना मेरी दृष्टि में अन्याय है। बच्चों का लालन-पालन कर उन्हें आदमी बनाया है, लड़की की शादी की है, फिर भी इस कलकत्ता शहर में एक छोटा-सा मकान भी नहीं बनवा सका हूँ। मकान-मालिकों का अत्याचार मुँह पर ताला बन्द कर भले आदमी की तरह बरदाश्त किया है। और गाड़ी ? न तो मैंने कभी गाड़ी का सपना देखा है और न गाड़ी खरीद ही सका हूँ।

लेकिन मेरे मन में इस वात का सदैव अहंकार रहा कि मैं सत्पथ पर चल रहा हूँ। किसी का कभी कोई अनिष्ट नहीं किया है, यहाँ तक कि अनिष्ट करने के वारे में सोचा भी नहीं है। हमेशा यही धारणा मेरे मन में जड़ जमाकर वैठी थी कि मेरा रास्ता ही सही रास्ता है। महाजनो येन गतः स पंथा। मैंने विश्वास रखा है कि महाजन का पथ ही एक मात्र आदर्श पथ है। सनातन से अकसर तरह-तरह के कारणों से मेरी भेंट हुई है। उसकी वातें भी मैंने ध्यान से सुनी हैं जरूर, मगर कभी उन्हें अपने जीवन में स्वीकारा नहीं है—अनुसरण या अनुकरण करना तो दूर की वात।

लेकिन उस दिन उसके इस वदलाव पर मुझे वहुत ही वेचैनी महसूस होती रही। मन से बार-बार पूछता रहा—यह क्या ठीक है? उद्देश्य सिद्धि तो वड़ी वात कभी नहीं हो सकती, उद्देश्य सिद्धि का तरीका ही बड़ी वात होता है। 'मैं क्या हो गया' इसके वदले 'कैसे हुआ' यह वात विवेचनीय है। असत् उपाय से महान् वनने की चेष्टा करना भी अपराध है, शुरू से यही सुनता आ रहा हूँ। फिर क्या युग के साथ-साथ प्राचीन शब्दों की संज्ञा भी रातों-रात वदल गयी?

सचमुच कई दिन मैंने वेहद वेचैनी के साथ गुजारे।

अन्ततः अपने आपको संयत नहीं रख सका। एक दिन द मोर्डन स्कूल का पता लगाकर वहाँ पहुँचा। स्कूल की शक्ल देखकर मैं दंग रह गया।

सचमुच जैसा सुना था वैसा ही है।

कई दिनों से कलकत्ते के वहुतेरे व्यक्तियों से पूछता रहा था, "द मोडर्न स्कूल के नाम से परिचित हैं?"

सभी ने कहा था, "हाँ। आप मुकुल राय के स्कूल के बारे में पूछ रहे हैं न? मुकुल राय से आपकी जान-पहचान है?"

"क्यों?" मैंने पूछा।

उन लोगों ने कहा, "फिर कह-सुनकर हमारे लड़के को दाखिल करा दीजिए न।"

उन लोगों की वात सुनकर मुझे अवाक् हो जाना पड़ा था। सनातन ने क्या सचमुच ही इतना दुर्लभ स्कूल खोला है?

वहुतों ने मुझसे वताया है, "वहाँ की पढ़ाई बहुत ही अच्छी है। फीस अलवत्ता कुछ ज्यादा देनी पड़ती है मगर वहाँ पढ़ने से लड़के का भविष्य वन जाता है।"

स्कूल की इमारत की ओर देखकर मुझे यही सब बात याद आ रही थी। फाटक के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है—द मोडर्न स्कूल।

सामने दरबान एक तिपाई पर बैठा था।

मैंने जाकर पूछा, "स्कूल के सेक्रेटरी साहब हैं ?"

मैं जानता था कि ब्रिटिश राज्य के चले जाने के बाद साहबों की संख्या में वृद्धि हो गयी है। इसीलिए सेक्रेटरी के बाद मैंने सम्मानसूचक शब्द 'साहब' का प्रयोग किया।

दरबान ने मुझे ऑफिस के अन्दर जाने को कहा उसके आदेशानुसार मैं उसी ओर चला गया।

ऑफिस के अन्दर उस समय एक महिला टाइपिस्ट कोई चिट्ठी टाइप कर रही थी। दूसरी ओर एक वृद्ध व्यक्ति अपने काम में मशगूल था।

मैंने उससे जाकर पूछा, "आपके सेक्रेटरी साहब हैं ?"

उस आदमी ने कहा, "आपको क्या जरूरत है ? एडमिशन कराना चाहते हैं ?"

मैंने कहा, "नहीं, उनसे सिर्फ मिलना चाहता हूँ !"

उसने कहा, "बिना आवश्यकता बताये मिलने का नियम नहीं है। स्ट्रिक्ट ऑर्डर है। अभी वे बहुत ज्यादा व्यस्त हैं।"

मैंने कहा, "उनके पास मेरा नाम भेज दें। उसके बाद यदि वे मिलना चाहेंगे तो मिलेंगे और न मिलना चाहेंगे तो कोई बात नहीं।"

उस आदमी ने मेरी ओर एक छपा हुआ फार्म बढ़ा दिया। नाम पता, और मिलने का उद्देश्य लिखने के लिए जगह खाली है।

मैंने उसमें अपना नाम, पता और उद्देश्य लिख दिया। प्यून उसे लेकर अन्दर चला गया और मैं उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर के बाद प्यून लौटकर आया और बोला, "मेरे साथ आइए।"

यह नहीं सोचा था कि मुझे अन्दर महल में बुलाया जाएगा। प्यून मुझे स्कूल से संलग्न एक दोमंजिले मकान में ले गया। कीमती संगमर-मर का बना फर्श है। चारों तरफ तड़क-भड़क। दीवारों में रङ्गों की नक्काशी देखने योग्य है। चारों ओर का वातावरण देखकर मुझे बेहद खुशी हुई।

उसके बाद प्यून मुझे एक कमरे के अन्दर ले जाकर बिठा गया। कमरा ठंडा है यानी जिसे वातानुकूलित कहते हैं कमरे के अन्दर भी

आराम की जो अतिशयता है, वह देखने योग्य है। वहाँ एक बार बैठने से उठने की इच्छा हो ही नहीं सकती।

प्यून मुझे वहाँ बिठाकर अन्दर चला गया। मैं वहाँ चुपचाप बैठा रहा। सुना है, दस चक्र के बाद भगवान को भी भूत बनना पड़ता है। लेकिन मनुष्य क्या इस युग में भगवान की आँखों में भी धूल झोंकना चाहता है ? नहीं तो सनातन में शुरू से लेकर अंत तक ऐसा परिवर्त्तन क्यों आता ? एक बार महसूस हुआ कि गलत देख रहा हूँ, उसके बाद महसूस हुआ, मैं तो यहाँ सशरीर वर्त्तमान हूँ। कमरे में समस्त विख्यात पुरुषों की तसवीरें हैं। कोई महात्मा गाँधी की तो कोई रामकृष्ण परमहंस देव की, कोई विद्यासागर की तो कोई विवेकानन्द की।

एकाएक अन्दर की तरफ का दरवाजा निःशब्द खुल गया और एक महिला ने कमरे के अन्दर प्रवेश किया।

शुरू में मैं उन्हें पहचान नहीं सका। लेकिन जब पहचाना तो ऐसा महसूस हुआ जैसे मैं आसमान से धरती पर गिर गया हूँ। माया ! माया देवी ?

मैंने कहा, "यह क्या ? आप ?"

मिसेज राय को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ।

बोलीं, "आपका स्लिप देखते ही आपको बुलाने भेज दिया। आपका हालचाल ?"

मैंने प्रश्न के बदले प्रश्न ही किया, "आप कैसी हैं ?"

मिसेज राय बोलीं, "आपको कैसी लग रही हूँ ?"

अब मैंने मिसेज राय की ओर ध्यान से देखा।

"आप तो अच्छी ही दीख रही हैं। मगर मैंने उम्मीद नहीं की थी कि आपको यहाँ देखूँगा। दिल्ली में ही आपसे आखिरी मुलाकात हुई थी, दिल्ली स्टेशन के प्लेटफार्म पर।"

मिसेज राय बोलीं, "हाँ, उसके बाद मैं बहुत दिनों तक बनारस में थी।"

मैंने कहा, "यह स्कूल कब खोला गया है ? कैसे खोला ? मैं कलकत्ते से तबादला होकर कई बरसों के लिए दिल्ली चला गया था, मुझे मालूम नहीं था कि मुकुल ने यहाँ स्कूल खोला है।"

मिसेज राय बोलीं, "हाँ, मुझे भी मालूम नहीं था। शुरू में देखकर मैं भी हैरत में आ गयी थी।"

"मुकुल का आपको कैसे पता चला ?"

मिसेज राय हँसती हुई बोलीं, "यहाँ आने के लिए पत्र लिखा था।"

"मुकुल ने ही आपके पास पत्र भेजा ?"

"हाँ।"

"वह कहाँ था, आपको छोड़कर भाग क्यों गया था, आपने यह सब उससे नहीं पूछा ?"

मिसेज राय बोलीं, "पूछा था। आपको तो बता ही चुकी हूँ उसमें गुण ही गुण है। बस, एक ही दोष है और वह यह कि वह बहुत बड़ा आदमी होना चाहता है। रुपया बनाने के फेर में ही वह जहाँ-तहाँ का चक्कर काट रहा था। जाली सर्टिफ़िकेट की जो बात सुनी थी, वह बिलकुल झूठी है। असल में दुश्मनी के कारण लोगों ने ऐसा किया। खैर, अपने सारे दुश्मनों का खात्मा हो गया है और यही हमारे लिए भाग्य की बात है।"

मैंने मिसेज राय की आँखों की ओर फिर ध्यान से देखा। सनातन ने इन्हीं के बारे में बताया था। इनका ही इस्तेमाल कर सनातन समाज के ऊँचे तबके में पहुँचना चाहता था, इनको ही किराये पर लगाकर सनातन ने अपना कैरियर बनाना चाहा था। अबकी वह जो इन्हें बुला लाया है वह क्या इसलिए कि वह समाज का सिरमौर बनना चाहता है ? अपना कैरियर बनाने के लिए ?

मैंने पूछा, "मुकुल ने इतना बड़ा स्कूल कैसे बनवाया ? यह तो कोई कम पैसे की चीज नहीं है।"

मिसेज राय बोलीं, "सब ईश्वर की दया है।"

"कैसे ?" मैंने पूछा।

मिसेज राय बोलीं, "सरकार ने काफी सहायता की है। चीफ मिनिस्टर डॉक्टर राय इसका उद्घाटन करने आये थे। वह रही डॉक्टर बी० सी० राय की तसवीर।"

एक बहुत बड़ी तसवीर में डॉक्टर विधान चंद्र राय को द मोडर्न स्कूल का उद्घाटन करते हुए देखा।

"इसके अलावा शिक्षा-मंत्री भी व्यक्तिगत अभिरुचि ले रहे हैं। सरकार की ओर से पहले वर्ष तीस हजार रुपया दिया गया था।"

मैंने कहा, "तीस हजार में विद्यालय की इतनी बड़ी इमारत कहीं हो सकती है ?"

मिसेज राय बोलीं, "तीस हजार में क्या होगा ? कुछ भी नहीं होगा ? एक बड़ा-सा कमरा भी नहीं बन सकता है।"

"फिर बाकी पैसे का कहाँ से इन्तजाम किया ?"

मिसेज राय बोलीं, "कॉरपोरेशन ने मुफ्त में जमीन दे दी थी। इस जमीन की कीमत ही लगभग एक लाख रुपया होगा। उसके बाद चैरिटी में काफी पैसा मिला। इस स्कूल को बनवाने के समय एक चीज का सही-सही प्रमाण मिला…।"

बात कहते-कहते मिसेज राय एकाएक रुक गयीं। उसके बाद बोलीं, "छिः छिः बातों में मशगूल रहने के कारण भूल ही गयी थी। आप क्या खाइएगा ? सैंडविच मँगाऊँ ? थोड़ी देर पहले ही बनाया है।"

मैंने कहा, "घबराइए मत, यह कोई खाना खाने का वक्त नहीं है। हाँ, मुकुल कहां गया है ? कब लौटेगा ?"

मिसेज राय बोलीं, "थोड़ी देर और बैठ जाइए, आप चले जाइएगा तो वे मुझ पर बिगड़ेंगे। मैं आपके लिए चिकेन सैंडविच ला रही हूँ।"

यह कहकर मेरी आपत्ति पर ध्यान दिये बगैर उठकर अन्दर चली गयीं।

मैं मन ही मन सारी बातों का लेखा-जोखा करने लगा। जिस स्कूल का मुख्य मंत्री ने उद्घाटन किया है और कॉरपोरेशन ने जिसे एक लाख रुपये की जमीन दी है, वह कैसा स्कूल हो सकता है ? वह कितना बड़ा स्कूल हो सकता है !

लेकिन असली बात यह नहीं है असली बात यही है कि दुनिया के तमाम आदमी क्या सनातन के सिद्धान्त में आस्था रखते हैं ? फिर हम कौन हैं ? हम लोग यानी जो अतीत की परंपरा का पालन करते हुए दुनिया में जीवन जी रहे हैं। फिर क्या हम इस दुनिया के लिए बेकार हो गये ? इस बीसवीं सदी के विद्यासागर, बंकिम चन्द्र, रामकृष्ण परमहंस देव और विवेकानन्द के कलकत्ते में यदि ऐसा कांड घटित होता है तो हम जैसे साधारण व्यक्तियों को फिर कहाँ विदा होकर जाना पड़ेगा ? हम किसके भरोसे जीवन जियेंगे ? कौन हमें जिन्दा रखेगा ? किसके पास हम आश्रय की भीख माँगेंगे ?

तभी सनातन ने कमरे के अन्दर प्रवेश किया।

"अरे, तुम !"

"तुमसे ही मिलने आया हूँ ।" मैंने कहा ।

सनातन ने कहा, "तुम अकेले क्यों बैठे हो ? मिसेज तुमसे मिलीं नहीं ? कब आये हो ?"

मैंने कहा, "यह सब तुम्हें सोचना नहीं है । मिसेज राय अब तक मेरे स्वागत-सत्कार में व्यस्त थीं । थोड़ी देर पहले मेरे लिए सैंडविच लाने गयी हैं ।"

"सिर्फ सैंडविच ? कुवेला में कोई भला सैंडविच खाता है ? वह तो तीसरे पहर खाने की चीज है । इससे तो अच्छा है कि थोड़ा-सा बीयर लो । बीयर मँगाऊँ ?"

बात खत्म होते न होते मिसेज राय खाद्य पदार्थ लिए पहुँच गयीं ।

सनातन ने कहा, "तुम सैंडविच ले आयीं ?"

मिसेज राय बोलीं, "हाँ, चिकेन सैंडविच है ।"

"फिर वही चिकेन सैंडविच ? उस दिन का चिकेन खराब जो था ।"

मिसेज राय बोलीं, "यह छक्कू की दुकान का चिकेन है । रहीम की दुकान से चिकेन लाना बन्द करा दिया है । यह खराब नहीं हो सकता । लीजिए, खाइए ।"

यह कहकर उन्होंने प्लेट मेरी ओर बढ़ा दी ।

अन्ततः मुझे खाना पड़ा । छक्कू की दुकान के चिकेन और रहीम की दुकान के चिकेन में क्या फर्क है, मेरी जीभ इसका अनुमान नहीं कर सकी । तब मैं सनातन से बातचीत करने के लिए बेताब था । मुझे सिर्फ यही जानने की इच्छा हो रही थी कि ऐसा कैसे हुआ । हम लोग यदि कलकत्ते में एक छोटा-सा भी मकान बनवा लेते हैं तो गौरव का अनुभव करते हैं । हमारे एक मित्र ने ऐसा स्कूल और भवन कैसे बनवा लिया, यह जानने का आग्रह स्वाभाविक ही है । खासकर तब जबकि सनातन युनिवर्सिटी की चौखट भी लाँघ नहीं सका है । फिर क्या युद्ध के साथ-साथ अच्छे-बुरे और पाप-पुण्य के मूल्य में इतना बड़ा परिवर्त्तन आ गया ? फिर क्या इतने दिनों से हम जो जानते, सुनते और देखते आये हैं, वह सब क्या असत्य करार कर दिया गया ?

एकाएक मिसेज राय ने कहा, "अच्छा, मैं चलूँ, मेरा टेलीफोन कॉल आया है ।"

सनातन ने कहा, "हाँ, जाओ। कोई मुझे टेलीफोन करे तो कह देना कि घर पर नहीं हैं।"

उस समय हम दो जने ही रह गये। सनातन ने सामनेवाले दरवाजे को वन्द कर दिया जिससे कि कोई कहीं से अन्दर न आ सके।

उसके वाद आकर मेरे पास बैठ गया और बोला, "मैं जरा बीयर पीता हूँ। तुम तो यह सब पसन्द करते ही नहीं।"

मैंने कहा, "मेरी समझ में यह सब वात कतई नहीं आ रही है, भाई सनातन। रातों-रात तुमने यह सब कैसे कर लिया ?"

सनातन हँसने लगा, फिर बोला, "क्यों ? पटोल को तुम भूल गये ? पटोलरानी को ? मेरी जन्मपत्री में लिखा था कि मुझे औरत की जायदाद मिलेगी। जानते तो होगे ही कि लड़ाई के दिनों में सभी स्थावर संपत्ति का मूल्य दस गुना वढ़ गया। पटोलरानी के मकान की भी कीमत दस गुना ज्यादा हो गयी। और वह औरत थी शराब का पीपा। उन हरामजादियों का जो हश्र होता है, वही हुआ। पेट में घाव हो गया और टें बोल गयी। मैं भी उसे भरपूर माल पिलाता था ताकि उसके पेट में जखम हो जाये। अरे, मेरे हर काम में एक 'लाँग टर्म व्यू' रहता है। एक दिन पटोलरानो टें बोल जायेगी, उसका मकान मैं हथिया लूंगा, यह सब मेरी योजना थी।"

"उसके वाद ?" मैंने पूछा।

"उसके वाद और क्या ? उसके बाद उन्हीं रुपयों से यह सब किया।"

मैंने कहा, "मगर तुम्हारी घरनी ने वताया कि चीफ मिनिस्टर डॉक्टर राय ने पैसा दिया था और कलकत्ता कॉरपोरेशन ने जमीन दी थी।"

"अरे, वह तो दिया है, मगर कितना रुपया, मेरा घरेलू खर्च ही तीन हजार रुपये महीना है। उससे क्या इतना बड़ा स्कूल चलाया जा सकता है ? यह सब लाखों रुपये का मामला है। उन दोनों मकान को वेचने पर सिर्फ तीन ही लाख रुपया मिला। फिर भी खर्च पूरा नहीं हुआ। जितनी बड़ी हँड़िया होगी, ढक्कन भी उतना ही बड़ा चाहिए। आज स्कूल में छुट्टी है, इसलिए तुम्हें ले जाकर सब कुछ नहीं दिखा सकता हूँ। देखोगे कि कितना वड़ा काम किया है। अँग्रेजी पढ़ाने के लिए चार-चार मेमें रख छोड़ी हैं। उन्हें क्या कम तनख्वाह देनी पड़ती है ?"

"इतने-इतने तरह के कारोबार रहने के बावजूद स्कूल खोलने की बात तुम्हारे दिमाग में क्यों आयी ?" मैंने कहा।

सनातन ने कहा, "बात यह है कि मैंने इस पर बहुत-कुछ सोचा-विचारा, हिसाब-किताब करके भी देखा। दुनिया में जितने भी कारोबार हैं उनमें लाभ के साथ-साथ घाटे की भी संभावना है। लेकिन दो कारोबार ऐसे हैं जिनमें घाटा नहीं उठाना पड़ता।"

"कौन-कौन हैं।"

सनातन ने कहा, "नंबर एक मंदिर का कारोबार, नंबर दो स्कूल।"

"मंदिर के कारोबार का मतलब ?"

सनातन ने कहा, "मठ-मिशन वगैरह, जहाँ मजहब की खरीद-बिक्री चलती है। यह एक खासा-अच्छा कारोबार है। इसमें हन्ड्रेड परसेंट प्रॉफिट होता है। बढ़िया-बढ़िया चीजें खाने को मिलती हैं। दही, रबड़ी, घी, दूध, मछली, मांस सब कुछ फ्री। उसके बाद कार और हवाई जहाज से देश-विदेश का भ्रमण। मैंने बहुतेरे गेरुआधारी संन्यासियों को नंगे पाँव प्लेन पर चढ़ते देखा है। सब कुछ पराये के पैसे से। मगर मुझे वह कारोबार पसन्द नहीं आया।"

"क्यों ?"

सनातन ने कहा, "मैंने सोच-विचार कर देखा, मुझसे यह सब हो नहीं सकेगा। क्योंकि उसमें माथा मुँड़वाना पड़ता है, खड़ाऊँ पहन कर या फिर नंगे पाँवों चलना-फिरना पड़ता है। यह काम मुझसे इस उम्र में नहीं हो सकेगा। लेकिन स्कूल के कारोबार में यह सब बला नहीं है, भाई। इस काम में जितना भी अधिक साहबीपन दिखाओगे, उतना ही ज्यादा प्रॉफिट होगा।"

"फिर तुम खादी क्यों पहनते हो ?" मैंने कहा।

सनातन ने कहा, "इसे पहचानना ही पड़ेगा भाई, सरकार से रुपया वसूलने के लिए ढोंग रचना जरूरी है। मेरे यहाँ के खर्चे का ज्यादातर हिस्सा सरकार ही पूरा करती है। और सबसे मजे की बात जानते हो ? हिन्दुस्तान के सिर्फ इन दो कारोबार में कोई इनकम टैक्स, सेल्स टैक्स या वेल्थ टैक्स नहीं देना पड़ता है। एक मात्र म्युनिसिपल टैक्स देना पड़ता है। उसे भी रिश्वत देकर कम करा लिया है। कम से कम जितना देना पडता है, उतना ही करा लिया है। असल में इस बिजनेस में जितना प्रेस्टिज है उतना ही प्रॉफिट।"

मैं उठ कर खड़ा हो गया।

सनातन भी मेरे साथ उठ कर खड़ा हुआ। बोला, "फिर किसी दिन आना, तुम्हें स्कूल का अन्दरूनी हिस्सा ले जाकर दिखाऊँगा।"

मगर असली वात उस वक्त भी पूछने में मुझे संकोच हो रहा था। वाहर निकलने पर उसकी चर्चा की।

"माया से तुम्हारी फिर कैसे मुलाकात हुई ?" मैंने पूछा।

सनातन ने कहा, "माया ने तुमसे क्या कहा ? माया ने इसकी वावत कुछ भी नहीं वताया ?"

मैंने कहा, "माया ने मुझसे कहा कि तुम उसे बनारस से लिवा लाये। तो फिर उससे तुमने शादी कर ली क्या ?"

सनातन ने कहा, "शादी करने से ही क्या होगा ? दरअसल उसने तुमसे सच ही कहा है। मैंने जब यह स्कूल खोला तो सोचा, एक होस्टेस का रहना जरूरी है। इसीलिए उसे समझा-बुझाकर ले आया। पहले भी उसे किराये पर लगाता था और अव भी किराये पर लगाता हूँ।"

मैंने कहा, "अव मिसेज राय आपत्ति क्यों नहीं करती हैं ?"

सनातन ने कहा, "आपत्ति क्यों करेगी ? आपत्ति करने से ऐसा आराम मिलेगा ? इतना वड़ा मकान, वातानुकूलित यह कमरा, नौकर-चाकर, आया-वावर्ची-खानसामा, ड्रिंक्स, गाड़ी और उस पर इतना सम्मान—यह सब उसे कौन देता है ? मुझे भी इससे सुविधा हासिल हो रही है। माया की खूबसूरती से लुभाकर मैं गवर्नमेंट की बड़ी-बड़ी रोहू-कतला मछलियों के कलेजे को जखमी बना रहा हूँ।"

यह कह कर उसने एक कहकहा लगाया।

मगर मैं उसकी वात पर हँस नहीं सका। मुझे सब कुछ वहुत बुरा जैसा लगा। जल्दी-जल्दी वहाँ से विदा होकर चला आया।

इसी तरह का सिलसिला चल रहा था। मगर इसके वाद ही एक दिन सनातन की मृत्यु की खवर मिली। अखवारों में उसकी मृत्यु का समाचार विस्तार के साथ छापा गया था। वहुत वड़ी तसवीर के नीचे उसके कृतित्व, महानता, दानशीलता, विद्यानुरागिता इत्यादि गुणों का विशद विवरण प्रस्तुत किया गया था।

यह सब पढ़कर किसमें क्या प्रतिक्रिया हुई थी, मालूम नहीं। लेकिन मैं मन ही मन खूब हँसा था।

मगर आज इस माइक्रोफोन के सामने खड़े होकर मैंने जब वहाँ गण्यमान व्यक्तियों की उपस्थिति देखी तो मन में आया, सनातन का असली रूप प्रकट कर क्यों मैं सभी का अप्रिय पात्र बनूं। हो सकता है, किसी दिन मुकुल राय की जीवनी छप कर प्रकाशित हो। उस जीवनी को लड़के-बच्चे अपनी पाठ्य पुस्तकों के साथ पढ़ेंगे और मुखस्थ करेंगे। मैं उसमें अड़चन क्यों डालने जाऊँ? अड़चन डालने से भी मैं क्या उन्हें छल पाऊँगा? यह एक ऐसा युग आ गया है जिसमें झूठ का ही जयजय-कार होता है। मैं अकेले सच बोलकर हास्यास्पद और विडंबना का पात्र क्यों बनूं?

इसलिए माइक्रोफोन पकड़ कर मैं भी कहने लगा: बचपन में मैं मुकुल राय के साथ एक ही स्कूल और एक ही क्लास में पढ़ता था। उसी समय मुझे पता चल गया था कि आगे चलकर वह एक प्रतिभा-शाली व्यक्ति होगा। प्रत्येक नागरिक के लिए उचित है कि वह उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा, आदर्श चरित्र, त्याग और महानता को इस युग में एक मिसाल के तौर पर याद करता रहे। किसी दिन इसी धरती पर चैतन्य देव, रामकृष्ण परमहंस देव, विद्यासागर, विवेकानन्द और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने जन्म लिया था, आज उन लोगों के साथ एक और जुड़ गया है और वह है मुकुल राय का नाम। आज बङ्गाली जाति के इस पतनकाल में हम यदि मुकुल राय के आदर्श का पालन करें तो यह बङ्गाली जाति दुनिया में फिर से मस्तक ऊँचा कर खड़ी हो सकती है। तभी बङ्गाली सबसे स्नेह, श्रद्धा और सम्मान पाने के भागीदार बन सकेंगे। शुभाय भवतु।

बस, इतनी ही है यह कहानी। इन कहानियों का मैंने अन्त नहीं देखा है—यों कह सकते हैं कि अन्त शायद होता ही नहीं। या यह भी हो सकता है कि अन्त हुआ हो, परन्तु मैं देख नहीं सका। यह [illegible], यह [illegible] दत्त, यह मुकुल राय—इस विराट् विश्व-ब्रह्मांड के क्षुद्र-क्षुद्र अंश हैं। इनमें जिस तरह सृष्टि है, उसी तरह स्थिति और ध्वंस है। [illegible]

किसी को कोई विरोध नहीं, लेकिन सभी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। कोई किसी को छोड़ नहीं सकता और साथ ही साथ बरदाश्त भी नहीं कर पाता। यह यही हुआ कि रह कर भी जैसे न रहना, जुड़े रहने के बावजूद एक-दूसरे से अलग रहना। यही आदमी का समाज है। इसी समाज को केन्द्र मानकर लेखक अनादिकाल से कहानी लिखते आ रहे हैं। उसमें कहीं कोई घृणा नहीं है, तिरस्कार नहीं, विरोध नहीं। यह जैसे एक ही प्यार की शृङ्खला में जुड़कर अलग हो जाना और जीवन जीना है। हम मनुष्य संप्रदाय का यही समाज है और यही है हम मनुष्यों की धरती। इसी मनुष्य को मैं सदा से प्यार करता आ रहा हूँ और मृत्युकाल तक इसी मनुष्य समाज को प्यार करता रहूँगा। आदमी से मुझे चाहे कितनी ही घृणा, कितना ही तिरस्कार, कितनी ही चोटें क्यों न मिले, इस प्यार के पथ से कोई मुझे विचलित नहीं कर सकता है। क्योंकि साहित्य का अन्तिम शब्द ही है मनुष्य।